पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा पाण्डे
निदेशक ,समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 आर0 पी0 द्विवेदी
महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी

डा0 आर0 के0 सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डा0 नीरजा सिंह
सहायक प्राध्यापक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

प्रो0 अरविन्द जोशी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

डा0 संदीप कुमार
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

डा0 ए0 के0 भारती
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

डा0 सुषमा मिश्रा
डी0 ए0 वी0 कालेज
वाराणसी

डा0 नीरजा सिंह
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

कॉपीराइट : @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविदयालय

ISBN No.-978-93-84432-92-5

प्रकाशक : कुलसचिव

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविदयालय, हल्द्वानी 263139(**नैनीताल**)

mail : studies@uou.ac.in

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविदयालय,हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफ चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है ।

मुद्रक : उत्तरायण प्रकाशन ,हल्द्वानी,नैनीताल

सामाजिक मनोविज्ञान,संचार एवं समाजकार्य

(Social Psychology, Communication and Social Work)

MSW-05

खण्ड – 1

इकाई 1	सामाजिक मनोविज्ञान एक परिचय **Social Psychology : an Introduction**	पृष्ठ – 1–11
इकाई 2	आधारभूत सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ **Basic Socio-psychological Processes**	पृष्ठ – 12–35
इकाई 3	व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार **Personality and Human Behaviour**	पृष्ठ – 36–49

खण्ड – 2

इकाई 4	मन का प्रत्यय एवं मनोविज्ञान **Concept of Mann and Psychology**	पृष्ठ –50–60
इकाई 5	समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान का महत्व एवं मनोरचनायें **Importance of Psychology in Social Work Practice and Defence Mechanism**	पृष्ठ – 61–73
इकाई 6	अभिवृत्ति **Attitude**	पृष्ठ – 74–89

खण्ड – 3

इकाई 7	प्रेरणा **Motivation**	पृष्ठ – 90–104
इकाई 8	वंशानुक्रम तथा पर्यावरण **Heredity & Environment**	पृष्ठ – 105–120

इकाई 9	नेतृत्व **Leadership**	पृष्ठ – 121–139

खण्ड – 4

इकाई 10	संचार : एक परिचय **Communication : an Introduction**	पृष्ठ – 140–155
इकाई 11	संचार की अभिरचना एवं प्रकार **Design and Types of Communication**	पृष्ठ – 156–165
इकाई 12	संचार निर्देशन **Directions of Communication**	पृष्ठ – 166–178
इकाई 13	संचार के अवरोधक या बाधाएं **Barriers of Communication and Crises Management**	पृष्ठ –179–195

इकाई– 1

सामाजिक मनोविज्ञान : एक परिचय
Social Psychology : an Introduction

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 परिचय
1.2 सामाजिक मनोविज्ञान
1.3 सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति
1.4 सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र
1.5 सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व
1.6 सार संक्षेप
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा कि–

- सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ एवं प्रकृति को बताना।
- सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र का वर्णन करना।
- सामाजिक मनोविज्ञान के उद्देश्यों एवं महत्व का वर्णन करना।

1.1 परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपनी विविध आवश्यकताओं के लिए मनुष्य दूसरे व्यक्तियों से, समूहों से, समुदायों से अन्तःक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। व्यक्ति के व्यवहार एवं समाज में गहरा सम्बन्ध होता है। सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्ध उनके परस्पर व्यवहार पर निर्भर करते हैं। मनुष्य के विचारों, व्यवहारों एवं क्रियाओं का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है। व्यक्ति का व्यवहार सर्वदा एक समान नही होता है। एक ही व्यक्ति कई रूपों में व्यवहार करता हुआ पाया जाता है। उसके विचार, भाव तथा व्यवहार विविध परिस्थितियों में प्रभावित भी होते रहते हैं। स्पष्ट है कि मानव व्यवहार के विविध पक्ष होते हैं। मनुष्य दूसरों के बारे में अलग–अलग तरह से सोचता तथा प्रभावित होता है। सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है। ऐतिहासिक रूप से इसके विकास में समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों का ही योगदान है।

प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ, परिभाषाओं, प्रकृति, विषय क्षेत्र, उद्देश्यों एवं महत्व को विश्लेषित करेंगे।

1.2 सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सामाजिक मनोविज्ञान में हम जीवन के सामाजिक पक्षों से सम्बन्धित अनेकानेक प्रश्नों के उत्तरों को खोजने का प्रयास करते हैं। इसीलिए सामाजिक मनोविज्ञान को

परिभाषित करना सामान्य कार्य नही है। **राबर्ट ए. बैरन** तथा **जॉन बायर्न** (2004:5) ने ठीक ही लिखा है कि, 'सामाजिक मनोविज्ञान में यह कठिनाई दो कारणों से बढ़ जाती है : विषय क्षेत्र की व्यापकता एवं इसमें तेजी से बदलाव।' सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार और विचार के स्वरूप व कारणों का अध्ययन करता है।'' ऐसा ही कुछ **किम्बॉल यंग** (1962:1) का भी मानना है। उन्होनें सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक अन्तक्रियाओं का अध्ययन करता है, और इस सन्दर्भ में कि इन अन्तःक्रियाओं का व्यक्ति विशेष के विचारों, भावनाओं संवेगो और आदतों पर क्या प्रभाव पड़ता है।''

शेरिफ और शेरिफ (1969 : 8) के अनुसार, ''सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक उत्तेजना–परिस्थिति के सन्दर्भ में व्यक्ति के अनुभव तथा व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।'' मैकडूगल ने सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जो समूहों के मानसिक जीवन का और व्यक्ति के विकास तथा क्रियाओं पर समूह के प्रभावों का वर्णन करता और उसका विवरण प्रस्तुत करता है।'' **विलियम मैकडूगल**, (1919 :2) **ओटो क्लाइनबर्ग** (1957 :3) का कहना है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान को दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित व्यक्ति की क्रियाओं को वैज्ञानिक अध्ययन कहकर परिभाषित किया जा सकता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं को देखते हुए हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि सामाजिक मनोवैज्ञानिक यह जानने का प्रयास करते हैं कि व्यक्ति एक दूसरे के बारे में कैसे सोचते हैं तथा कैसे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

1.3 सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। जब हम किसी भी विषय को वैज्ञानिक कहते हैं, तो उसकी कुछ विशेषताएँ (मूल्य) होती हैं, और उन विशेषताओं के साथ ही साथ उस विषय के अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न विधियाँ होती हैं, जिनका प्रयोग सम्बन्धित विषयों के अध्ययन में किया जाता है रौबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न (2004 : 6) ने इन विशेषताओं या विजकोष मूल्यों को इस प्रकार बताया है, किसी भी विषय के वैज्ञानिक होने के लिए वे आवश्यक हैं–

(1) यथार्थता
(2) विषयपरकता
(3) संशयवादिता और
(4) तटस्थता।

इन चारों को स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि –

यथार्थता से अभिप्राय दुनिया (जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवहार व विचार आता है) के बारे में यथासम्भव सावधानीपूर्वक, स्पष्ट व त्रुटिरहित तरीके से जानकारी हासिल करने एवं मूल्यॉंकन करने के प्रति वचनबद्धता से है।

विषयपरकता से तात्पर्य यथासम्भव पूर्वाग्रहरहित जानकारी प्राप्त करने एवं मूल्यांकन करने के प्रति वचनबद्धता से है।

संशयवादिता से तात्पर्य तथ्यों का सही रूप में स्वीकार करने के प्रति वचनबद्धता ताकि उसे बार–बार सत्यापित किया जा सके, से है ।

तटस्थता का अभिप्राय अपने दृष्टिकोण, चाहे वो कितना भी दृढ़ हो, को बदलने के प्रति वचनबद्धता से है, यदि मौजूदा साक्ष्य यह बताता है कि ये दृष्टिकोण गलत है।

सामाजिक मनोविज्ञान एक विषय के रूप में उपरोक्त मूल्यों से गहन रूप से सम्बद्ध है। विविध विषयों से सम्बन्धित अध्ययनों के लिए इसमें वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाता है।

हमने शुरू में सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषाएँ दी हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि यह विज्ञान समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों ही की विशेषताओं से युक्त है। वास्तव में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करने वाला यह एक महत्वपूर्ण विज्ञान है। इस सन्दर्भ में क्रच और क्रचफील्ड (1948 : 7) के अनुसार, ''समाज का अध्ययन करने वाले विज्ञानों में केवल सामाजिक मनोविज्ञान ही मुख्यतया सम्पूर्ण व्यक्ति का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों की अध्ययन वस्तु सामाजिक संगठन की संरचना एवं प्रकार्य तथा सीमित एवं विशिष्ट प्रकार की संस्थाओं के अन्तर्गत लोगों द्वारा प्रदर्शित संस्थागत व्यवहार ही है। दूसरी ओर सामाजिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध समाज में व्यक्ति के व्यवहार के प्रत्येक पक्ष से है। अतः मोटे तौर पर सामाजिक मनोविज्ञान को समाज में व्यक्ति के व्यवहार का विज्ञान कहकर परिभाषित किया जा सकता है।'' इसकी वास्तविक प्रकृति और वैज्ञानिकता की पुष्टि शेरिफ और शेरिफ (1956 : 5) के इस कथन से होती है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान केवल विभिन्न प्रकार की अवधारणाओं को अपना लेने के कारण ही 'सामाजिक' नही हो गया है, अपितु वास्तविकता तो यह है कि सामान्य मनोविज्ञान की प्रामाणिक अवधारणाओं को सामाजिक क्षेत्र में विस्तृत करके या उपयोग में लाकर ही सामाजिक मनोविज्ञान 'सामाजिक' विज्ञान बन पाया है।''

वास्तव में देखा जाये तो सामाजिक मनोविज्ञान में विज्ञान की सभी अवधारणाएँ, शर्ते या विशेषताएँ पायी जाती है, जैसे इसमें विषय वस्तु का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तरीके से वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाता है। आवश्यकतानुसार प्रयोशाला अध्ययन, क्षेत्रीय अध्ययन या क्षेत्रीय प्रयोग किया जाता है। इसमें कार्य–कारण सम्बन्धों की खोज की जाती है। वस्तुगतता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया जाता है। सम्बन्धित उपकल्पनाओं को निर्मित किया जाता है तथा उसकी सत्यता की जाँच प्राप्त तथ्यों के आधार पर की जाती है तथा उसी के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है तथा उसका प्रमाणीकरण भी होता है।

इस तरह से स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक प्रकृति है, क्योंकि यह विज्ञान के अन्य विषयों की तरह ही मूल्यों एवं विधियों को अपनाता हैं। यह एक आनुभविक विज्ञान है। सामाजिक मनोविज्ञान शोध के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं (टेलर तथा अन्य 2006 : 15) (1) कारक (2) कार्य–कारण विश्लेषण (3) सिद्धान्त निर्माण, और (4) उपयोग (एप्लीकेशन)।

1.4 सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र

सामाजिक मनोविज्ञान का विषय–क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें हम न केवल वैज्ञानिक व्यवहार, अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार अपितु समूह व्यवहार का भी अध्ययन करते हैं।

एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक व्यवहार के सभी पक्षों के साथ–साथ उससे सम्बन्धित समस्याओं का भी अध्ययन करता है।

लैपियर और फार्न्सवर्थ (1949 : 7) का कहना है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञानों के सामान्य क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेषीकृत विज्ञान है, और उसके विषय–क्षेत्र को सुनिश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है; क्योंकि ज्ञान में वृद्धि होने के साथ–साथ उसमें भी परिवर्तन होगा ही। एक समय विशेष में जिन समस्याओं का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान करता है, उन्हीं के आधार पर इसके अध्ययन के सामान्य क्षेत्र को सम्भवतः सबसे अच्छी तरह उजागर किया जा सकता है।''

वर्ष 1908 में **मैकडूगल** ने '**सोशल साइकोलॉजी**' नामक पुस्तक लिखी थी, तभी से यह माना जाता है कि इसका इतिहास प्रारम्भ हुआ है। स्पष्ट है कि इसका एक विज्ञान के रूप में इतिहास ज्यादा पुराना नही हैं, फिर भी यह देखा गया है कि इसके क्षेत्र में न केवल तीव्र वृद्धि हुई है अपितु विविध बदलाव भी आए हैं। इसके क्षेत्र के अन्तर्गत मनोविज्ञान की दूसरी विशिष्ट शाखाओं जैसे विकासात्मक मनोविज्ञान, असमान्य मनोविज्ञान, तुलनात्मक मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इत्यादि की भी बहुत सी सामगियाँ समाहित हैं। साथ ही, अन्य सामाजिक विज्ञानों विशेषकर समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र और अर्थशास्त्र इत्यादि की भी कुछ सामग्रियाँ इसमें सम्बन्धित हैं। ओटो क्लाइनबर्ग (1957 : 15–16) ने सामाजिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों के अध्ययन को सम्मिलित किया है।

(1) सामान्य मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान की व्याख्या

इसके अन्तर्गत अभिप्रेरणा, उद्वेगात्मक व्यवहार, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण शक्ति इत्यादि पर सामाजिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने के साथ ही साथ अनुकरण, सुझाव, पक्षपात इत्यादि परम्परागत सामाजिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के प्रभाव की भी अध्ययन करने की काशिश की जाती है।

(2) बच्चे का सामाजीकरण, संस्कृति एवं व्यक्तित्व

एक जैवकीय प्राणी किस प्रकार सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक प्राणी बनता है, यह इसके अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। संस्कृति और व्यक्तित्व के सम्बन्धों को भी ज्ञात किया जाता है। व्यक्तित्व के विकास में सामाजीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सामाजीकरण के विविध पक्षों एवं स्वरूपों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

(3) वैयक्तिक एवं समूह भेद

दो मनुष्य एक समान नहीं होते वैसे ही समूह में भी भेद पाया जाता है। वैयक्तिक भिन्नता तथा समूह भिन्नता के सामाजिक–मनोवैज्ञानिक कारणों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान का एक विषय क्षेत्र है।

(4) मनोवृत्ति तथा मत, सम्प्रेषण शोध, अन्तर्वस्तु विश्लेषण एवं प्रचार

मनोवृत्ति या अभिवृत्ति का निर्माण, मनोवृत्ति बनाम क्रिया, कैसे मनोवृत्ति व्यवहार को प्रभावित करती है? कब मनोवृत्तियाँ व्यवहार को प्रभावित करती है? इत्यादि के साथ साथ जनमत निर्माण, विचारों के आदान–प्रदान के माध्यमों, सम्प्रेषण अनुसंधानों, अन्तर्वस्तु विश्लेषण तथा प्रचार के विविध स्वरूपों एवं प्रभावों इत्यादि को इसके अन्तर्गत सम्मिलित

किया जाता है। समाज मनोविज्ञान सम्प्रेषण के विविध साधनों तरीकों, एवं प्रभावों का अध्ययन करता है।

(5) सामाजिक अन्तर्क्रिया, समूह गत्यात्मकता और नेतृत्व

सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र सामाजिक अन्तर्क्रिया, समूह गत्यात्मकता तथा नेतृत्व के विविध पक्षों एवं प्रकारों को भी अपने में सम्मिलित करता है।

(6) सामाजिक व्याधिकी– समाज है तो समााजिक समस्याओं का होना भी स्वाभाविक है। सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत सामाजिक व्याधिकी के विविध पक्षों एवं स्वरूपों का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया जाता है, जैसे बाल अपराधी, मानसिक असामान्यता, सामान्य अपराधी, औद्योगिक संघर्ष, आत्महत्या इत्यादि इत्यादि।

(6) घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

सामाजिक मनोविज्ञान में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक व्यवहारों का भी विशद अध्ययन किया जाने लगा है।

समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत अनेकानेक क्षेत्र आते हैं। समय के साथ–साथ नये–नये क्षेत्र इसमें समाहित होते जा रहे हैं। नेता अनुयायी सम्बन्धों की गत्यात्मकता, सामाजिक प्रत्यक्षीकरण, समूह निर्माण तथा विकास का अध्ययन, पारिवारिक समायोजन की गत्यात्मकता का अध्ययन, अध्यापन सीख प्रक्रिया की गत्यात्मकता इत्यादि, विविध क्षेत्र इसके अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत वह सब कुछ आता है, जिसका कि कोई न कोई सामाजिक–मनोवैज्ञानिक आधार हैं। रॉस (1925 : 7) का कहना है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान उन मानसिक अवस्थाओं एवं प्रवाहों का अध्ययन करता है जो मनुष्यों में उनके पारस्परिक सम्पर्क के कारण उत्पन्न होते हैं। यह विज्ञान मनुष्यों की उन भावनाओं, विश्वासों और कार्यों में पाये जाने वाले उन समानताओं को समझने और वर्णन करने का प्रयत्न करता है जिनके मूल में मनुष्यों के अन्दर होने वाली अन्तःक्रियाएं अर्थात् सामाजिक कारण रहते हैं।''

1.5 सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व

सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व वैश्वीकरण के इस दौर में निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण ने जो सामाजिक आर्थिक प्रभाव उत्पन्न किए हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो हम यह पाते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान उस समस्त परिस्थितियों, घटनाओं एवं समस्याओं का अध्ययन करता है, जो इनके कारण उत्पन्न हुई है।

सामाजिक मनोविज्ञान के महत्व को उसकी अध्ययन वस्तु के आधार पर अलग–अलग रूप से प्रस्तुत करके स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) व्यक्ति को समझने में सहायक

सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के सम्बन्ध में वास्तविक और वैज्ञानिक ज्ञान करवाता है। सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा ही संस्कृति और व्यक्तित्व में सम्बन्ध, सामाजीकरण, सीखने की प्रक्रिया, सामाजिक व्यवहार, वैयक्तिक विभिन्नताएँ, उद्वेगात्मक व्यवहार, स्मरण शक्ति, प्रत्यक्षीकरण, नेतृत्व क्षमता इत्यादि से सम्बन्धित वास्तविक जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति से सम्बन्धित अनेकों भ्रान्त धारणाएँ इसके द्वारा समाप्त हो गई। समाज और व्यक्ति के अन्तर्सम्बन्धों तथा अन्तर्निर्भरता को उजागर करके सामाजिक मनोविज्ञान ने यह प्रमाणित

कर दिया कि दोनों की पारस्परिक अन्तर्क्रियाओं के आधार पर ही व्यक्ति के व्यवहारों का निर्धारण होता है। समाज विरोधी व्यवहार के सामाजिक तथा मानसिक कारणों को उजागर करके उन व्यक्तियों के उपचार को सामाजिक मनोविज्ञान ने सम्भव बनाया है। वैयक्तिक विघटन से सम्बन्धित विविध पक्षों की जानकारी भी इसके द्वारा प्राप्त होती है। इतना ही नहीं उपयुक्त सामाजीकरण तथा व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के महत्व को भी सामाजिक मनोविज्ञान ने अभिव्यक्त करके योगदान किया है। सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तित्व के अलग–अलग प्रकारों तथा व्यक्ति विशेष के व्यवहार को समझने में योगदान करता है। अच्छे व्यक्तित्व का विकास कैसे हो, सकारात्मक सोच कैसे आये, जीवन में आयी निराशा तथा कुण्ठा कैसे दूर हो और इन सभी परिस्थितियों के क्या कारण हैं, को सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है और परिवर्तित किया जा सकता है। तनाव से बचाने में भी इसका योगदान है।

(2) माता–पिता की दृष्टि से महत्व

माता–पिता का संसार ही बच्चे होते हैं। प्रत्येक माता–पिता अपने बच्चों को संस्कारवान तथा स्वस्थ व्यक्तित्व वाला बनाना चाहता है। बच्चों के पालन–पोषण में, समाजीकरण में तथा व्यक्तित्व के विकास में किस प्रकार की परिस्थितियाँ ज्यादा उपयुक्त होंगी और इनके तरीके क्या हैं, कि वैज्ञानिक जानकारी सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा होती हैं। इसका यथेष्ट ज्ञान बच्चों को बाल अपराधी, कुसंग, मादक द्रव्य व्यसन, अवसाद इत्यादि से बचा सकता है।

(3) शिक्षकों के लिए महत्व

सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों को समझने तथा उनको पढ़ाने के उचित तरीकों को जानने में मदद मिलती है। सामाजिक–मनोवैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग द्वारा शिक्षक छात्रों में शिक्षा के प्रति रूचि पैदा कर सकता है। वही सामाजिक–मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति ही सक्षम शिक्षक की भूमिका में खरा उतर सकता है। परिवार सामाजिकरण की प्रथम पाठशाला है, वही विद्यालय द्वैतीयक सामाजीकरण की भूमिका अदा करता है। आज मानव विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकार विविध प्रावधानों के द्वारा व्यापक प्रयास कर रही है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम द्वारा अधिक से अधिक बच्चों को विद्यालयी शिक्षा प्रदान करने की कोशिश की जा रही है। शिक्षकों से अधिकांश छात्रों के पंजीकरण, उनसे समुचित व्यवहार, उचित अध्यापन इत्यादि अपेक्षाएँ हैं। सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं तथा उनके निदान के उपायों की व्यापक जानकारी प्राप्त होती है।

(4) समाज सुधारकों एवं प्रशासकों के लिए

सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा समाज सुधारकों को तो लाभ प्राप्त होता ही है, यह प्रशासकों को भी विविध तरह से लाभ पहुँचाता है। समाज में व्याप्त विविध कुरीतियों, बुराईयों, विचलित व्यवहारों एवं आपराधिक गतिविधियों, समस्याओं, सामाजिक तनावों, साम्प्रदायिक दंगों, जातिगत दंगो, वर्ग संघर्षों इत्यादि के कारणों तथा उनको रोकने के उपायों की जानकारी सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा समाज सुधारकों तथा

प्रशासकों को होती है, जिसके द्वारा उन्हें इन समस्याओं को दूर करने में सहायता मिलती है।

अक्सर अफवाहों के चलते न केवल सामाजिक तनाव फैल जाता है अपितु कानून और व्यवस्था की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है। सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन अफवाहों को समझने तथा उसके कारगर उपायों को अपनाने का ज्ञान प्रदान करता है।

(5) विज्ञापन एवं प्रचार की दृष्टि से महत्व

आज धन का महत्व बढ़ता ही चला जा रहा है। उद्योगपति अपने उत्पादों को जनसंचार के माध्यमों से विज्ञापनों द्वारा अधिक से अधिक प्रचारित प्रसारित कर रहे हैं। लोगों के मनोविज्ञान को समझकर न केवल उपभोक्तावाद को बढ़ावा दे रहे हैं अपितु उपभोक्ताओं पर मनोवैज्ञानिक दबाव भी डाल रहे हैं ताकि उनका उत्पाद अधिकाधिक बिके।

जनमत के महत्व को समझकर सरकार एवं राजनीतिज्ञ सक्रिय हैं। हाल ही में जनमत के चलते कई शासकों को सत्ता से बेदखल होना पड़ा है।

सामाजिक मनोविज्ञान का ज्ञान विविध सरकारी योजनाओं की जानकारी जन–जन तक पहुंचाने में सम्भव हो रहा है। प्रचार के महत्व को आज हम सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक जीवन के सभी पक्षों में महसूस कर रहे हैं।

(6) सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से महत्व

सामाजिक मनोविज्ञान का सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से भी खासा महत्व है। वैयक्तिक विघटन से लेकर युद्ध एवं क्रान्ति जैसी स्थितियाँ किसी भी राष्ट्र के लिए चिन्ताजनक हो सकती हैं। सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन न केवल व्यक्ति को अपितु समूह एवं समाज को तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को खतरा करने वाली विविध स्थितियों एवं कारकों का ज्ञान कराता है और उनके परिणामों के सन्दर्भ में सचेत करता है। सामाजिक मनोविज्ञान के अनुसन्धानों द्वारा व्यापक नीति–निर्माण में मदद मिलती है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच विभेदों, कटुता एवं कलुषता को दूर करने में सहायता मिलती है, वहीं युद्ध, क्रान्ति, पक्षपात, अफवाह एवं विविध प्रकार के तनाव को रोकने में भी मदद मिलती है। सम्पूर्ण राष्ट्र की भलाई की दृष्टि से सामाजिक मनोविज्ञान के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

आज उद्योगों में भी सामाजिक मनोविज्ञान के विविध पक्षों के जानकारों को रखा जा रहा है ताकि औद्योगिक सम्बन्ध शान्त तथा सौहार्द्रपूर्ण बना रहें श्रमिकों तथा कर्मचारियों की समस्याओं का भी सामाजिक–मनोवैज्ञानिक तरीकों से समाधान किया जा रहा है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक तकनीकों एवं प्रविधियों के प्रयोग द्वारा औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने में सफलता प्राप्त की जा रही है। नौकरशाहों में, प्रबन्धकों में तथा नेताओं में नेतृत्व की क्षमता वृद्धि के लिए भी इसका विशेष महत्व स्वीकार किया जा रहा है। यह कहना कदापि अनुचित न होगा कि मानवीय क्रियाकलापों की पहेली को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुलझाना आज की अनिवार्यता है।

1.6 सार संक्षेप

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है। इसके विकास में समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों का ही पर्याप्त योगदान है।

सामाजिक मनोविज्ञान का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति–व्यवहार है। संक्षेप में, यदि रौबर्ट ए. बैरन और डॉन बायर्न (2004 : 12) के शब्दों में कहा जाये तो हम कह सकते हैं कि; सामाजिक मनोविज्ञान मुख्य रूप से सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक विचार के कारणों, सामाजिक परिस्थितियों में हमारी भावनाओं, व्यवहार एवं विचार को निर्धारित करने वाले तत्वों की पहचान करने पर जोर देता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता है और इस बात का ध्यान रखता है कि सामाजिक व्यवहार एवं विचार पर विभिन्न सामाजिक, संज्ञानात्मक, वातावरणात्मक, सांस्कृतिक और जैविक तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है, जो कि यथार्थता, विषयपरकता, संशयवादिता तथा तटस्थता से युक्त है। सामाजिक मनोविज्ञान में विविध विधियों के द्वारा प्रामाणिक अध्ययन किया जाता है। सामाजिक–मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं– व्याख्या, कार्य–कारण विश्लेषण, सिद्धान्त निर्माण और उसका उपयोग विविध नीति निर्माण या समस्या समाधान हेतु।

सामाजिक मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मनोविज्ञान की अन्य विशिष्ट शाखाओं की भी बहुत सी सामग्रियाँ इसमें समाहित हैं। व्यक्ति व्यवहार–संगठित अथवा असंगठित, सामाजीकरण की प्रक्रिया, समूह तथा समूह व्यवहार, नेतृत्व तथा उसके पक्ष, मनोवृत्ति, रूढ़ियाँ, एवं पूर्वाग्रह, भीड़ व्यवहार, अभिप्रेरणा, संज्ञान, प्रत्यक्षीकरण, प्रचार, जनमत, अफवाह, भाषा तथा सम्प्रेषण, सामाजिक व्याधियाँ, आक्रमणशीलता, उग्र व्यवहार, साम्प्रदायिक एवं जातीय दंगे, भूमिका संघर्ष, फैशन इत्यादि–इत्यादि अनेकों विषयों का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है।

वैश्वीकरण के इस दौर में सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व जीवन के विविध क्षेत्रों में अत्यधिक बढ़ गया है। वैयक्तिक जीवन हो या सम्पूर्ण राष्ट्र का हित हो, सभी को यह प्रभावित करता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ को समझाइये ?
2. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति का वर्णन कीजिए ?
3. सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का वर्णन कीजिए ?
4. सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से सामाजिक मनोविज्ञान के महत्व का वर्णन कीजिए ?
5. सामाजिक मनोविज्ञान के उद्देश्यों एवं महत्व का वर्णन कीजिये?

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

Social Work Practice	समाज कार्य अभ्यास	Projection	प्रक्षेपण
Mental Mechanism	मनोरचनायें	Introjection	अन्तःक्षेपण
Repression	छमन	Transference	स्थानान्तरण
Suppression	शमन	Displacement	विस्थापन
Inhibition	अन्तर्बाधा	Compensation	क्षतिपूर्ति
Regression	प्रतिगमन	Over compensation	अतिपूर्ति
Conversion	रूपान्तरण	Withdrawal	प्रत्याहार

Sublimation	डदातीकरण	Phantancy	कल्पना–तरंग
Rationalization	युक्तिकरण	Evation	प्लायन
Reaction formation	प्रतिक्रिया निर्माण	Negative	नकारात्मकता
Identification	आत्मीकरण	Experiment	प्रयोग

सन्दर्भ ग्रन्थ

- रॉबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न, सामाजिक मनोविज्ञान, 2004, नवम् संस्करण, प्रथम हिन्दी अनुवाद, पीयरसन एजुकेशन, पृ. 5।
- Kimball Young, A Handbook of Social Psychology, Routledge and Kegan Paul Ltd., London, 1962, p. 1.
- La Piere and Farnsworth, Social Psychology, Mc Graw-Hill Book Co., New York, 1949, p.7.
- Otto Klineberg, Social Psychology, revised edition, Henery Halt and Co. New York, 1957, p. 3.
- Ross, E.A. Social Psychology, Macmillan and Co., New York, 1925, p.7.
- Sharif M & C.W. Sharif, Social Psychology, a Harper International Edition, Jointly Published by Harper & Row, New York, Euanston & London and John Weatherhill, Inc. Tokyo, 1969, p. 8.
- William Mc Dougall, The Group Mind, Methuen, 1919, p. 2.Jackon, J.M. (1993) Social Psychology : Past and Present, Hills dale, NJ : Erlbaum.
- Semin, G. & Fiedler K. (1996) Applied Social Psychology, Thousand Oaks, CA : Sage.
- Taylor, Shelley E at el, Social Psychology, 2006, Pearson Education, Printed in India, Sheel Print N Pack, Delhi.

इकाई– 2

आधारभूत सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ
Basic Socio-Psychological Processes

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 परिचय
2.2 प्रत्यक्षीकरण
2.3 गुणारोपण
2.4 सीखना
2.5 सामाजीकरण
2.6 अभिप्रेरणा
2.7. अभिवृत्ति
2.8 पूर्वाग्रह
2.9 रूढ़ियुक्तियाँ
2.10 सार संक्षेप
2.11 अभ्यास प्रश्न
2.12 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए सम्भव होगा –

- प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को समझना एवं उसके प्रकारों के बारे में बताना।
- गुणारोपण की प्रक्रिया को समझना।
- संज्ञानात्मक प्रतिक्रियात्मक व्यवस्था– सीखना एवं विविध पक्षों से अवगत होना तथा इसके कारकों को बताना।
- सामाजीकरण की प्रक्रिया को समझना तथा इसके विविध अभिकरणों एवं सिद्धान्तों को बताना।
- अभिप्रेरणा की अवधारणा, उसके पहलुओं एवं प्रकारों को समझना तथा जैविक एवं सामाजिक प्रेरकों में अन्तर को स्पष्ट करना।
- अभिवृत्ति के अर्थ एवं उसके निर्माण तथा परिवर्तन को समझना।
- पूर्वाग्रह के अर्थ को समझना एवं उसकी विशेषताओं एवं कारकों को स्पष्ट करना।
- रूढ़ियुक्तियों के अर्थ को समझना एवं उसकी विशेषताओं को बताना।

2.1 परिचय

प्रस्तुत अध्याय में प्रत्यक्षीकरण, गुणारोपण, सीखना, सामाजीकरण, अभिप्रेरणा, अभिवृत्ति, पूर्वाग्रह और रूढियुक्तियों को विश्लेषित किया गया है।

प्रत्यक्षीकरण के अर्थ को लेकर विद्वानों ने विविध विचार व्यक्त किए हैं। प्रत्यक्षीकरण संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है, वहीं अनेकों समाज मनोवैज्ञानिक इसे हस्तक्षेपीय या मध्यस्थ चर अथवा परिवर्त्य के रूप में देखते हैं। चैपलिन (1975) की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि, ''प्रत्यक्षीकरण एक मध्यवर्ती चर है, जिसका अनुमान उत्तेजनाओं के बीच प्राणी द्वारा विभेदीकरण की क्षमता से होता है।'' प्रत्यक्षीकरण में कई विशेषताएँ होती हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण और व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण को समान अर्थों में ही प्रयोग किया गया है। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व, शील–गुणों इत्यादि के आधार पर उसके प्रति बनायी जाने वाली धारणा या निर्णय को व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। इस धारणा या निर्णय निर्माण के कई कारक होते हैं।

गुणारोपण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा किये गए व्यवहार के कारकों को खोजने का प्रयास करता है। यह एक द्विआयामी प्रक्रिया है, इसमें अन्य प्रत्यक्षीकरण के साथ ही साथ स्व–मूल्यांकन या प्रत्यक्षीकरण भी होता है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में हम अन्य व्यक्तियों को समझने का प्रयास करते हैं।

जन्म के समय शिशु एक जैवकीय प्राणी मात्र होता है। धीरे–धीरे समय के साथ–साथ वह विविध पारिवारिक लोगों एवं अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है। सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के द्वारा वह अपने व्यवहार को परिवर्तित करता है। व्यवहार में दूसरे के व्यवहार द्वारा परिवर्तन ही 'सीखना' है। इस दृष्टि से यह एक संज्ञानात्मक–प्रतिक्रिया व्यवस्था है। उल्लेखनीय है कि मनुष्य की प्रतिक्रियाओं में होने वाले सभी परिवर्तनों को सीखना नहीं कहते हैं, इनमें से कई परिवर्तन मूलतः एवं प्रमुखतः जैवकीय होते हैं। सीखने के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं भौतिक कारक होते हैं। मनुष्य कैसे सीखता है, सीखने के पीछे कौन–कौन से तत्त्व या कारक प्रभावी हैं, इसको विविध विद्वानों यथा थार्नडाईक, इवान पावलव और हॉल इत्यादि ने अपने–अपने सिद्धान्तों द्वारा स्पष्ट किया है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक अनुकूलन और व्यक्तित्व का विकास सामाजीकरण का प्रमुख प्रकार्य है। एक जैवकीय प्राणी जिस प्रक्रिया द्वारा सामाजिक प्राणी में परिवर्तित होता है, उसे सामाजीकरण कहा जाता है। परिवार, विद्यालय, पड़ोस, मित्र–समूह, समुदाय, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाएँ इत्यादि सामाजीकरण के अभिकरण हैं। विविध विद्वानों ने जैसे कूले, मीड एवं फ्रायड ने सामाजीकरण को अपने –अपने सिद्धान्तों के द्वारा समझाने का प्रयास किया है।

अभिप्रेरणा किसी क्रिया को करने की उत्तेजनात्मक अवस्था है जो प्राणी को क्रिया की ओर उन्मुख करती हैं। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया हैं जिसमें एक व्यक्ति विशेष दिशा में अपनी क्रिया हेतु पहल करता है तथा तब तक क्रियाशील रहता है जब तक कि उद्देश्य प्राप्ति न हो जाये। यह जैविक (बायोजैनिक) या सामाजिक (सोशियोजैनिक) दोनों ही प्रकार की हो सकती है। फ्रायड, लेविन, आलपोर्ट, टालमैन, स्पेन्स इत्यादि विविध विद्वानों ने अभिप्रेरणा की सैद्धान्तिक व्याख्या की है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणाओं को मापने की कुछ प्रविधियों को भी विकसित किया है।

सामाजिक विश्व के किसी भी पक्ष का मूल्यांकन अभिवृत्ति होती है। ये जन्मजात नही होती अपितु सामाजिक सीख के द्वारा ग्रहण की जाती है। अभिवृत्ति के निर्माण में

सामाजिक तुलना की प्रमुख भूमिका होती है। अभिवृत्तियों पर कुछ हद तक अनुवांशिक तत्त्वों के प्रभाव का वैज्ञानिक प्रमाण मिला है। अभिवृत्तियाँ बहुधा स्थायी प्रकृति की होती हैं, किन्तु विविध कारकों से परिवर्तित भी होती हैं। अभिवृत्ति और व्यवहार में भी अन्तर होता है। लॉ पियरे (1934) का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि लोगों की अभिवृत्तियाँ हमेशा उनके बाहरी व्यवहार में परिलक्षित नहीं होती हैं। अभिवृत्ति के अनुरूप व्यवहार न हो पाना स्पष्ट करता है कि दोनों में अन्तर होता है।

पूर्वाग्रह किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति विशेष प्रकार की मनोवृत्ति (बहुधा नकारात्मक) को कहते हैं। पूर्वाग्रह के अनेकों दुष्परिणाम होते हैं। इसके बने रहने के कई कारण होते हैं। पूर्वाग्रह और विभेदीकरण में अन्तर होता है। विभेदीकरण के अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति पूर्वाग्रह पर आधारित नकारात्मक क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि पूर्वाग्रह अपरिहार्य नहीं है, इसे अनेक तरीकों से कम किया जा सकता है। पूर्वाग्रह सामाजिक–आर्थिक विकास में बाधक का काम करता है। पूर्वाग्रह को मापने की कई विधियाँ हैं।

रूढ़ियुक्तियाँ एक धारणा है। अक्सर रूढ़ियुक्तियों एवं मनोवृत्ति में भ्रम की स्थिति होती है कि क्या वे दोनों एक ही हैं। रूढ़ियुक्तियों के आधार पर व्यक्तियों को एक निश्चित वर्ग या श्रेणी में विभाजित कर दिया जाता है। उस समूह से कुछ विश्वासों को सम्बद्ध कर दिया जाता है, और उन विश्वासों को आरोपित करने के प्रति सहमति होती है। यह समूह–स्वीकृत छवि या विचार है। एक समूह की दूसरे समूह के प्रति सम्मत धारणा रूढ़ियुक्तियाँ होती हैं। बहुधा रूढ़ियुक्तियाँ पूर्णत गलत या झूठी होती हैं। विविध कारकों के प्रभाव से रूढ़ियुक्तियाँ अर्जित की जाती हैं। सामाजिक जीवन में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि इनका सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव व्यक्ति और समाज पर पड़ता है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण के उपरान्त हम प्रत्येक प्रक्रिया को यहाँ अलग–अलग विश्लेषित करके स्पष्ट करेंगे।

2.2 प्रत्यक्षीकरण

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण एक प्रक्रिया है जिससे हम अन्य लोगों को समझने का प्रयास करते हैं। हमारे दैनिक जीवन में इसका विशेष स्थान है। समाज मनोविज्ञान में प्रत्यक्षीकरण पर गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं।

प्रत्यक्षीकरण एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है। समकालीन मनोवैज्ञानिक इसे मध्यस्थ (इण्टरविनिंग) चर या परिवर्त्य मानते हैं, क्योंकि यह संवेदी उत्तेजना तथा अनुभव (परिणामी संवेदना) के मध्य घटित होता है। चैपलिन (1975) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''प्रत्यक्षीकरण एक मध्यस्थ चर है जिसका अनुमान उत्तेजनाओं के बीच मनुष्य द्वारा विभेदीकरण की क्षमता से होता है।''

अन्य लोग हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसलिए हम उन्हें समझने का बहुधा प्रयास करते हैं। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम अन्य व्यक्तियों को जानने एवं समझने का प्रयास करते हैं सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के नाम से जानी जाती है।

प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को हम एक छोटे बच्चे के उदाहरण से आसानी से समझ सकते हैं। नवजात शिशु धीरे–धीरे अपने आसपास के लोगों, वस्तुओं और घटनाओं को देखने और समझने लगता है। माता–पिता, भाई–बहन को देखना (प्रेक्षण) और उन्हें

पहचानना (तादात्मीकरण) शुरू कर देता है। प्रारम्भिक प्रत्यक्षबोध इन्द्रियानुभूतियुक्त होता है, धीरे–धीरे सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में दूसरे व्यक्तियों को जानने के प्रयास की प्रक्रिया आती है। प्रत्यक्षीकरण से चूँकि हम दूसरे व्यक्तियों को जानने एवं समझने का प्रयास करते हैं इसलिए यह सामाजिक व्यवहार में मुख्य भूमिका निभाता है।

हम या तो वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं या मनुष्य का। जो प्रत्यक्षीकरण वस्तु से सम्बन्धित होता है उसे हम गैर–सामाजिक प्रत्यक्षीकरण कहते हैं और जो मनुष्यों से सम्बन्धित होता हैं उसे सामाजिक प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और सामाजिक प्रत्यक्षीकरण अलग–अलग हैं या दोनों एक ही हैं? वास्तविकता यह है कि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत दो प्रकार के प्रत्यक्षीकरण आते हैं– (i) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और (ii) स्व प्रत्यक्षीकरण।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य दूसरे व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण से है। हीडर (1958) का कहना है कि, 'व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य दूसरे व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण से है।' स्पष्ट है कि व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई छाप बनाता है या निर्णय करता है। इस प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति की विशेषताओं का आँकलन किया जाता है। चूँकि व्यक्ति की विशेषताएँ जैसे शीलगुण, प्रेरणा, अभिवृत्ति, बुद्धि इत्यादि अमूर्त विशेषताएँ होती हैं, इसलिए व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का सम्बन्ध भी अमूर्त विशेषताओं से होता है। अमूर्त विशेषताओं को व्यक्ति के व्यवहारों से अनुमानित किया जाता है, इसलिए व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में अशुद्धियों एवं पक्षपातों के घटित होने की संभावना रहती है। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में हम व्यक्ति के व्यवहार, शील गुण, बुद्धि इत्यादि के साथ–साथ उसमें अन्तर्निहित इरादे तथा प्रेरकों को भी समझने का प्रयास करते हैं, इसलिए यह एक जटिल प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया में निर्णय, गुणारोपण तथा सामाजिक संज्ञान जैसे प्रक्रियाएँ एक दूसरे को आच्छादित करती हैं।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के कई कारक या निर्धारक होते हैं। इन कारकों के या निर्धारकों के कारण ही लोग एक दूसरे के प्रति कोई धारणा बनाते या निर्णय करते हैं हम प्रत्यक्षीकरण के समस्त कारकों या निर्धारकों को निम्नांकित भागों में रख सकते हैं–

(i) उत्तेजना–कारक
(ii) प्रत्यक्षीकरणकर्त्ता निर्धारक
(iii) संज्ञानात्मक संरचना
(iv) सामाजिक संदर्भ।

उत्तेजना कारकों के अन्तर्गत शारीरिक संरचना एवं बनावट, शरीर के हाव–भाव एवं मुद्रा, आवाज एवं बोलने की गति, उच्चता, उतार–चढ़ाव, उच्चारण, वाणी दोष, मौखिक संकेत, मुखाकृति, पहनावा तथा प्रस्तुत होना आते हैं। किसी भी व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण करते समय हम उसकी शारीरिक रचना एवं बनावट के आधार पर एक राय या धारणा बनाते हैं। इसी तरह शारीरिक सम्पर्क, निकटता, उठने–बैठने के तरीके, सुन्दरता इत्यादि का भी प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है। काली मोटी चमड़ी वालों को आक्रामक, गँवार एवं असंवेदनशील समझा जाता है। पहनावा तथा प्रस्तुत होने के तरीके के आधार पर भी विविध तरह का प्रत्यक्षीकरण होता है जैसे विशिष्ट तरह के पहनावे से व्यक्ति की धार्मिक

सदस्यता का बोध होता है, वर्दी से ज्ञात होता है कि व्यक्ति फौज का है, पुलिस है, डॉक्टर है, स्कूली छात्र है या अन्य कुछ है।

प्रत्यक्षीकरणकर्ता निर्धारकों के अन्तर्गत संज्ञानात्मक क्षमता, स्टाईल एवं जटिलता, पूर्वाग्रह, दकियानूसी एवं उदारवाद, सत्तावादी शीलगुण, यौन विभिन्नता, उम्र इत्यादि कारक या निर्धारक आते हैं, जिनका प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है। संज्ञानात्मक क्षमता प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। बौद्धिक योग्यता व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का एक निर्धारक होती है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि संज्ञानात्मक जटिलता अधिक होने पर व्यक्ति दूसरों का प्रत्यक्षीकरण विशिष्ट ढंग से करता है और यदि यह कम होती है तो व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण भी सामान्य ही होता है। इस अर्थ में संज्ञानात्मक जटिलता और प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप में सहसम्बन्ध होता है। आधुनिक लोगों के प्रत्यक्षीकरण और परम्परावादी और दकियानूसी लोगों के प्रत्यक्षीकरण में पर्याप्त असमानता देखी जा सकती है। जिस किसी व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण करना हो और उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह हो (जैसे रूढ़िवादी ब्राह्मण द्वारा किसी दलित का प्रत्यक्षीकरण, घोर परम्परावादी हिन्दू द्वारा मुसलमान का प्रत्यक्षीकरण, नीग्रो के प्रति संकुचित विचार वाले गोरों का प्रत्यक्षीकरण इत्यादि) तो निश्चित रूप से प्रत्यक्षीकरण एक विशेष प्रकार (नकारात्मक धारणा या निर्णय) का होगा। इसी तरह से व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यक्षीकरण करने वाले की उम्र, लिंग इत्यादि का भी प्रभाव होता है और जिसका प्रत्यक्षीकरण किया जा रहा है उसकी उम्र, लिंग के आधार पर भी प्रत्यक्षीकरण प्रभावित हो सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण के अनेकानेक निर्धारक होते हैं।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण, छाप या धारणा निर्माण अथवा प्रत्यक्षीकरणकर्ता पर प्रभाव रूढ़ियुक्तियों, परिवेशगत प्रभाव की प्रवृत्तियों, विपरीत और समानता अशुद्धियों इत्यादि का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार के सभी निर्धारक संज्ञानात्मक संरचना का अंग होते हैं। जैसी व्यक्ति की संज्ञानात्मक संरचना होगी वैसा ही वह प्रत्यक्षीकरण करेगा। व्यक्ति के निर्णयों और प्रत्यक्षीकरण पर रूढ़ियुक्तियों का व्यापक प्रभाव पाया गया है। चैपलिन (1975) ने डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी में परिवेशगत प्रभाव (Halo effect) का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव को स्पष्ट किया है। उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, परिवेशगत प्रभाव वह प्रवृत्ति होती है जो व्यक्ति को किसी विशिष्ट शीलगुण के आधार पर अति उच्च या अति निम्न निर्धारित/मूल्यांकित करती है। इसी तरह से कुछ लोग जिस प्रकार से अपना मूल्यांकन करते हैं वैसे ही दूसरों का भी मूल्यांकन करते हैं और इसके विपरीत कुछ लोग जिस प्रकार अपना मूल्यांकन करते हैं, उसके विपरीत वे दूसरों का मूल्यांकन करते हैं। प्रत्यक्षीकरण के इन दोनों प्रकारों को समानता एवं विपरीत अशुद्धियों वाला प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।

सामाजिक सन्दर्भ (सोशल कानटेक्स्ट) जैसे जाति, धर्म, सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति, धर्म, भूमिका श्रेणी इत्यादि का भी व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पाया गया है।

इसके अतिरिक्त भी कई अन्य कारक हैं जिनका प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है। लेवाइन और अन्य (1942) तथा मैकलेलैण्ड और एटकिन्सन (1948) ने जर्नल ऑफ सायकोलॉजी में अपने अनुसंधान के आधार पर यह प्रदर्शित किया है कि भोजन से वंचित होने का भी प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है।

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 31) के अनुसार, "वैयक्तिक प्रत्यक्षबोध तीन प्रकार के कारकों पर आधारित होता है, यथा (i) उद्दीपन सूचना : उस व्यक्ति का शारीरिक रूप–रंग,

उसकी अभिव्यंजना और चाल–ढाल तथा वाणी, (ii) हमारे पिछले अनुभव और विचार तथा (iii) उस व्यक्ति के बारे में हमें दूसरों से प्राप्त सूचना का अनुस्मरण (re-call)।'' ऐसा प्रतीत होता है कि, 'दूसरे व्यक्तियों का शुद्ध मूल्यांकन करने के तीन पहलू हैं, यथा (i) जिस व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण किया जा रहा है (ii) वह स्थिति जिसमें उसका परीक्षण किया जा रहा है, और (iii) परीक्षणकर्ता का अपना कौशल। सम्भवतः एक कुशल निर्णायक वह है जो लोगों के व्यवहार के प्रेक्षण के आधार पर उनके बारे में निष्कर्ष निकाल सके और इन प्रेक्षणों को सामान्य सिद्धान्तों और धारणाओं के आधार पर औचित्य देख सकें।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के उपरोक्त समस्त विश्लेषण और विशेषकर उस पर पड़ने वाले प्रभावों के अनेकों कारकों को देखते हुए यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की यथार्थता नहीं होती तथा ये अकसर गलत होते होंगे। विविध विद्वानों यथा जेब्रोविट्ज व कॉलिन्स (1997), बेरी (1991), गिफ्फार्ड (1994), केनी व अन्य (1994), मैडॉन व अन्य (1998) इत्यादि ने अपने–अपने अध्ययनों से यह प्रमाणित किया है कि, सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की यथार्थता हमारे अनुमान से ज्यादा होती है यानि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण अक्सर सही होते हैं।

स्व प्रत्यक्षीकरण से तात्पर्य व्यक्ति का अपने प्रत्यक्षीकरण से है। व्यक्ति न केवल दूसरों का ही प्रत्यक्षीकरण करता है अपितु अपना भी करता है। वह अपने बारे में भी कुछ धारणाएँ बनाता है। स्व मूल्यांकन न केवल महत्वपूर्ण है अपितु अत्यन्त जटिल भी है। स्व मूल्यांकन की सकारात्मकता समायोजन को आसान बनाती है जबकि विपरीत स्थिति परेशानी पैदा कर सकती है। स्व–प्रत्यक्षीकरण को समझने में फेस्टिंगर (1954) का सामाजिक तुलना सिद्धान्त तथा बेम (1972) का अवलोकनात्मक सिद्धान्त सहायक है। सामाजिक तुलना सिद्धान्त का कहना है कि, भौतिक वास्तविकता और सामाजिक वास्तविकता के आधार पर व्यक्ति, तुलना करते हुए अपना मूल्यांकन करता है और स्व–प्रत्यक्षीकरण करता है। व्यक्ति अपने स्व (सेल्फ) का मूल्यांकन दूसरों से तुलना करके करता है। वहीं अवलोकनात्मक सिद्धान्त मानता है कि दूसरों के केस की तरह ही व्यक्ति अपने व्यवहारों का भी मूल्यांकन करते हुए एक धारणा (परोपकारी, उदार, चरित्रवान, कठोर, क्रोधी इत्यादि) बनाता है और स्व–प्रत्यक्षीकरण करता है।

2.3 गुणारोपण

गुणारोपण से तात्पर्य दूसरों के व्यवहार के कारणों को जानना है। बैरन एवं बायर्न (2004 : 45) ने लिखा है कि, ''दूसरों की मौजूद मनःस्थिति या भावनाओं का सही ज्ञान अनेक प्रकार से उपयोगी हो सकता है। जहाँ तक सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का सवाल है, यह ज्ञान केवल पहला चरण है। इसके साथ, हम साधारणतया दूसरों के टिकाऊ लक्षणों एवं उनके व्यवहार के पीछे के कारणों को, और जानना चाहते हैं।'' विगत कई दशकों से सामाजिक मनोवैज्ञानिक गुणारोपण पर शोधकार्य कर रहे हैं। उनके शोधों से विषय की गहनतम जानकारी उपलब्ध हो पायी है।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का एक मूलभूत प्रश्न यह है कि व्यक्ति ने एक खास तरह का व्यवहार 'क्यों' किया? उसके विशिष्ट या सामान्य व्यवहार का कारण क्या है? उसका स्थायी लक्षण और स्वभाव कैसा है? इन प्रश्नों की जानकारी प्रदान करने वाली प्रक्रिया गुणारोपण कहलाती है। बैरन एवं बायर्न (2004 : 45) इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''हम सिर्फ इतना ही नहीं जानना चाहते हैं कि दूसरा कैसे व्यवहार करता है, बल्कि

हम यह भी जानना चाहते हैं कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। वैसी प्रक्रिया जिसके द्वारा हमें यह जानकारी मिलती है गुणारोपण कहलाती है। औपचारिक रूप से, गुणारोपण का अर्थ दूसरों के व्यवहार, एवं कभी–कभी अपने व्यवहार के पीछे निहित कारणों के बारे में जानने के हमारे प्रयास से है।'' इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि गुणारोपण के दो पक्ष हैं

(i) दूसरों के व्यवहार के कारणों को समझने का प्रयास, और

(ii) अपने व्यवहार के कारणों को जानने का प्रयास।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि गुणारोपण द्वि आयामी प्रक्रिया है–

(i) अन्य प्रत्यक्षीकरण

(ii) स्व–प्रत्यक्षीकरण।

मानवीय व्यवहार के 'क्यों' पक्ष से सम्बन्धित इस संज्ञानात्मक प्रक्रिया में व्यवहार के कारणों की खोज आन्तरिक या बाह्य कारकों के आधार पर की जाती है।

बैरॉन एवं बिर्ने ने अपनी पुस्तक 'सोशल सायकोलॉजी : अण्डरस्टैडिंग ह्युमन इण्ट्रैक्शन' (1991) में गुणारोपण प्रक्रिया में अनेकों त्रुटियों एवं पक्षपातों का उल्लेख किया है, जिससे उसकी वस्तुनिष्ठता प्रभावित होती है।

गुणारोपण के अनेकों सिद्धान्त हैं। यहाँ हम गुणारोपण के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

(1) जॉन्स व डैविस (1965) का सादृश्य अनुमान सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के अनुसार, हम दूसरों के व्यवहार के कुछ पहलुओं का अवलोकन करके उनके लक्षणों का अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं। इसमें दो निश्चित प्रकार की क्रियाओं पर ध्यान देते हैं– (i) हम केवल उस व्यवहार पर विचार करते हैं, जो स्वतन्त्र रूप से चुना गया हो। (ii) हम उन क्रियाओं पर सावधानीपूर्वक ध्यान देते हैं जो खास कारणों से (असमापवर्तक प्रभाव) उत्पन्न होती हैं। जॉन्स व डैविस का मानना है कि हमें दूसरों के बारे में अधिक जानकारी उनकी क्रियाओं, जिनमें असमापवर्तक प्रभाव दिखते हैं, से मिलती है। असमापवर्तक प्रभाव से तात्पर्य वैसे प्रभाव से है, जो एक खास कारण से न कि अन्य कारणों से उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त दो सूचनाप्रदाता क्रियाओं के अतिरिक्त एक और प्रकार की क्रिया पर ध्यान देने की बात जॉन्स व डैविस करते हैं। उनका कहना है कि हम दूसरों की उन क्रियाओं पर भी अधिक ध्यान देते हैं जो सामाजिक वांछनीयता में कम होती है। निम्न सामाजिक वांछनीयता वाला व्यवहार उस व्यक्ति के लक्षणों के बारे में एक महत्वपूर्ण गाईड होता है। अपेक्षित व्यवहार से विचलित व्यवहार की तरफ ध्यान जाना स्वाभाविक है, इसलिए यदि कोई जैसा कि उससे अपेक्षित है से अलग तरह का व्यवहार करता है तो हम उसके शीलगुणों के आधार पर गुणारोपण पर अधिक ध्यान देते हैं।

(2) केली (1972) का कारणात्मक गुणारोपण सिद्धान्त : केली के सिद्धान्त के अनुसार, 'हम दूसरे के व्यवहार के लिए अधिकांशतः आन्तरिक कारणों को उत्तरदायी ठहराते हैं जिसमें सामंजस्य एवं विभेदीकरण कम होता है लेकिन संगतता अधिक होती है। इसके विपरीत हम दूसरे के व्यवहार के लिए अधिकतर बाह्य कारणों, जिनमें तीनों– सामंजस्य, संगतता, विभेदीकरण– उच्च होते हैं, को जिम्मेदार ठहराते हैं। अन्त में, हम अक्सर दूसरे के व्यवहार के लिए आंतरिक एवं बाह्य कारणों के सम्मिश्रण जिसमें सामंजस्य कम लेकिन संगतता एवं विभेदीकरण अधिक होता है, को भी उत्तरदायी ठहराते हैं।

केली का सिद्धान्त गुणारोपण की प्रकृति के बारे में गहन अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है क्योंकि इसमें मूलभूत अवधारणाओं की पुष्टि विविध सामाजिक परिस्थितियों में की गयी है। उसने किसी के व्यवहार को समझने के लिए सूचना के तीनों स्रोतों सहमति , संगति तथा विशिष्टता से सम्बन्धित जानकारी पर जोर दिया है।

केली ने व्यवहार के 'क्यों' पक्ष की व्याख्या तीन कारकों–

- आंतरिक,
- बाह्य एवं
- दोनों कारकों का संयोग,

के आधार पर करते हुए उस परिस्थिति को भी स्पष्ट किया है जिसमें हम आंतरिक या बाह्य या दोनों ही कारकों का प्रयोग करते हैं। उसके अनुसार जब निम्न सहमति, उच्च संगति एवं निम्न विशिष्टता होती है, तो हम व्यवहार के आंतरिक कारकों (व्यक्तिगत शीलगुण, प्रेरणा, इरादा इत्यादि) का सहारा लेते हैं। जब उच्च सहमति, उच्च संगति तथा उच्च विशिष्टता युक्त व्यवहार होता है तो हम बाह्य कारणों (सामाजिक या भौतिक पर्यावरण के विविध पक्ष) पर बल देते हैं और जब निम्न सहमति, उच्च संगति तथा उच्च विशिष्टतायुक्त व्यवहार होता है तो व्यवहार की व्याख्या आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही (व्यक्तिगत शीलगुण तथा सामाजिक–भौतिक पर्यावरण के पक्ष) आधारों पर की जाती है।

बैरन और बिर्ने (1991) ने केली के सिद्धान्त की व्यापक प्रशंसा की है। उनका मानना है कि उक्त सिद्धान्त में पर्याप्त तार्किकता है तथा यह सभी परिस्थितियों में व्यवहार के 'क्यों' पक्ष की समुचित व्याख्या करने में सक्षम है। तथापि उनका यह भी मानना है कि यह सिद्धान्त विविध जटिल प्रक्रियाओं युक्त है, अतः उसको संशोधित करने की जरूरत है।

उपरोक्त दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के अतिरिक्त भी गुणारोपण के कई सिद्धान्त हैं जैसे शेवर (1975) का गुणारोपण सिद्धान्त, हिडर (1958) का सहज आरोपण सिद्धान्त, वेइनर (1993, 1995) का सिद्धान्त इत्यादि–इत्यादि।

गुणारोपण सिद्धान्त का अनेकानेक व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में प्रयोग किया जाता है। इससे यह तात्पर्य नहीं लगाया जाना चाहिए कि इसमें त्रुटियों की संभावना नहीं है। इसमें त्रुटियों के तीन स्रोत हैं– 1. सादृश्य अभिनति, 2. कर्त्ता– निरीक्षक प्रभाव और 3. स्वयं–सेवी अभिनति।

परिस्थितिजन्य कारणों से उत्पन्न क्रियाओं को आंतरिक स्वभाव से उत्पन्न मानना सादृश्य अभिनति कहलाती है। ऐसा करने की भूल अक्सर व्यक्ति से होती है।

अपने व्यवहार के लिए परिस्थितिजन्य (बाह्य) कारणों को जिम्मेदार ठहराना तथा दूसरे के व्यवहार के लिए आन्तरिक कारणों को जिम्मेदार ठहराने की प्रवृत्ति कर्त्ता–निरीक्षक प्रभाव सम्बन्धित त्रुटि का स्रोत है।

इसी तरह से अपने सकारात्मक परिणामों के लिए अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं, क्षमता एवं प्रयास (आंतरिक कारणों) और नकारात्मक परिणाम के लिए बाह्य परिस्थितिजन्य कारकों को जिम्मेदार ठहराना स्वयं–सेवी अभिनति के अन्तर्गत आता है।

उपरोक्त तीनों ही त्रुटियों के स्रोत को हम आसानी से अक्सर अपने व्यवहार की स्वयं करने वाली व्याख्या से समझ सकते हैं।

2.4 सीखना

सीखने की प्रक्रिया जन्म से ही शुरू हो जाती है। एक नवजात शिशु अपनी सहज प्रेरणा के आधार पर व्यवहार करता है, शनैः शनैः विविध, सामाजिक व्यवहारों को अपनाने लगता है। सामाजिक व्यवहार के गुण उसमें सीखने की प्रक्रिया के द्वारा ही आते हैं। विविध व्यवहारों का अर्जन (प्राप्त करना, अपनाना) सीखने की प्रक्रिया द्वारा ही होता है।

विविध विद्वानों ने सीखने को परिभाषित करते हुए उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। किम्बाल यंग (1957 : 34) ने लिखा है कि ''सामाजिक सीखना कुशलताओं, तथ्यों और मूल्यों को अर्जित करने की और संकेत करता है, और यह कार्य दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहकर अभ्यास के द्वारा किया जाता है।'' अन्यत्र वे लिखते हैं (किम्बाल यंग 1957 : 70) कि, सीखने को प्रत्युत्तर व्यवस्था (रिसपॉन्स सिस्टम') में होने वाले परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो जानबूझकर या अचेतन जुड़ाव अथवा सम्बन्ध के कारण नई उत्तेजनाओं के फलस्वरूप होता है। सीखने का सम्बन्ध व्यक्ति की उत्तेजन–प्रत्युत्तर व्यवस्थाओं में होने वाले कतिपय परिवर्तनों से है। इसमें जैसा हम पहले करते थे से अलग करना आता है। सीखना व्यक्ति की समायोजन व्यवस्था में होने वाला वह परिवर्तन है, जो पर्यावरण में उत्पन्न होने वाली उत्तेजनाओं पर निर्भर है।''

किम्बॉल यंग की परिभाषा तथा व्याख्या से स्पष्ट है कि मनुष्य के प्रत्युत्तरों या प्रतिक्रियाओं में होने वाले सभी परिवर्तनों को सीखना नही कहते हैं। शारीरिक परिपक्वता या शारीरिक क्षीणता के कारण शरीर की एक खास प्रकार की क्रियात्मक प्रक्रिया सीखने के अन्तर्गत नहीं आती है। इसी तरह से बीमारी के कारण व्यवहार में परिवर्तन या नशे के कारण व्यवहार में परिवर्तन या दुर्घटना के कारण व्यवहार में परिवर्तन 'सीखना' के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

गिलफोर्ड (1965 : 343) ने सीखने की अत्यन्त संक्षिप्त एवं सटीक परिभाषा दी है। उनके अनुसार, 'सीखना व्यवहार के कारण व्यवहार में होने वाला कोई भी परिवर्तन है।'

सीखने की प्रक्रिया में नई क्रियाएँ आती हैं, और उन्हें पुनर्बलित किया जाता है। वुडवर्थ (1949 : 522) कहते हैं कि, 'सीखने के अन्तर्गत कुछ नया करना आता है, जैसे मनो–शारीरिक, भौतिक एवं सामाजिक।'

मनो–शारीरिक कारकों का तात्पर्य मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक कारकों से है। इसके अन्तर्गत हम सहज प्रेरणा, संकेत, प्रत्युत्तर, पुनर्बलन, प्रत्याशा, सामान्यीकरण, विभेदीकरण अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ, केन्द्रीय स्नायुमण्डल, रोग एवं स्वास्थ्य, लिंग भेद इत्यादि को विश्लेषित करते हैं।

सीखने की प्रक्रिया भौतिक कारणों से भी प्रभावित होती है। जलवायु, तापक्रम, प्रकाश की मात्रा इत्यादि के प्रभावों को सीखने की प्रक्रिया से जोड़कर देखा जाता है। जिस प्रकार मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक कुशलता विपरीत मौसम, तापक्रम एवं अन्य भौगोलिक एवं भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं, वैसे ही यह माना जाता है कि इनका प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर भी पड़ता हैं।

जहाँ तक सीखने के सामाजिक कारकों का प्रश्न हैं, इसके अन्तर्गत प्रशंसा, निन्दा, सामाजिक प्रोत्साहन माता–पिता एवं अन्यों के व्यवहार का अनुकरण, सहयोग, प्रतिस्पर्धा एवं सुझाव इत्यादि आते हैं। सामाजिक कारकों का महत्व होता है। सीखने की प्रक्रिया में हम यह पाते हैं कि एक जैवकीय शिशु सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होता चला जाता है। सीखने की एक अन्य प्रक्रिया जिसे हम सामाजीकरण के नाम से जानते हैं कि चर्चा हम आगे करेंगे।

2.5 सामाजीकरण

सामाजीकरण जैवकीय प्राणी को सामाजिक प्राणी में बदलने की एक प्रक्रिया है। यह सामाजिक जीवन के ढंग को या व्यवहार करने के तरीकों को सिखाता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया बच्चे के जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है और आजीवन चलती रहती है। इस तरह एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है।

जॉनसन (1961) कहते हैं कि, ''सामाजीकरण एक प्रकार का सीखना है, जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य करने के योग्य बनाता है।'' मेटा स्पेन्सर (1979) का कहना है कि, ''किसी दिए हुए सामाजिक समूह में व्यवहार के नियमों को सीखना एवं समुचित तरीके से पालन करने की प्रेरणा को अधिग्रहित करना सामाजीकरण की प्रक्रिया है। लेकिन सामाजीकरण के द्वारा लोग न केवल सांस्कृतिक निर्धारित आवश्यकताओं और प्रेरणाओं को अधिग्रहण करते हैं अपितु साथ ही व्यक्तित्व के अन्य बहुत से पक्षों को। वे भाषा, ज्ञान और कौशल, विशिष्ट आदर्शों एवं मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता और विविध भूमिका सम्बन्धों में कार्य करने की सक्षमता को अधिग्रहित करते हैं।'' इससे मिलते जुलते विचार किम्बॉल यंग (1957) के भी है। उन्होंने लिखा है कि, ''सामाजीकरण . . . . व्यक्ति का सामाजिक और सांस्कृतिक विश्व से परिचय कराने, उसे समाज तथा उसके विभिन्न समूहों में एक सहभागी सदस्य बनाने तथा उस समाज के आदर्श नियमों तथा मूल्यों को स्वीकार करने को प्रेरित करने वाली प्रक्रिया है। . . . . निश्चित रूप से यह एक प्रकार का सीखना है और न कि जैवकीय विरासत। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जनरीतियों, रूढ़ियों, कानूनों तथा अपनी संस्कृति की अन्य विशेषताओं को, साथ ही साथ कौशल व अन्य आवश्यक आदतों को सीखता है, जो उसे समाज का एक क्रियाशील सदस्य बनने में सहायता करती है। इसी तरह वह विविध बाह्य समूहों के प्रति अपने समूह की प्रतिस्पर्धा एवं संचालनात्मक प्रत्युत्तरों को विकसित करता है। संक्षेप में सामाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया अन्तर्क्रिया या सामाजिक क्रिया के क्षेत्र के अन्तर्गत आती है।'' उपरोक्त विस्तृत एवं गहन परिभाषा से सामाजीकरण के सभी पक्षों पर प्रकाश पड़ता है।

गेराल्ड आर. लेस्ली और अन्य (1994) ने सामाजीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग सीखते हैं कि सामाजिक व्यवस्था (सोशल आर्डर) से कैसे सामना किया जाये। इसके लिए उन्हें पर्यावरण से सम्बन्ध या व्यवहार करने के लिए उपयुक्त आदर्शों, मूल्यों, विश्वासों और ज्ञान को सीखना एवं स्वीकार करना पड़ता है। उन्हें समस्या समाधान के आधारभूत साधनों को सीखने की जरूरत पड़ती है जैसे अनुरूपता, संघर्ष, और समायोजन ।

सामाजीकरण को कभी–कभी व्यक्तित्व विकास से जोड़ा जाता है, लेकिन वास्तव में दोनों अलग–अलग अवधारणाएँ हैं। आलपोर्ट (1937 : 29-47) का कहना है कि व्यक्तित्व शब्द समाजशास्त्रीय के बजाय ज्यादा मनोवैज्ञानिक है, जिसमें प्रत्यक्षीकरण, सीखना, स्मरण–शक्ति और चिन्हीकरण जैसी चीजें सम्मिलित हैं। समाजशास्त्री व्यक्तित्व के उस भाग के विकास पर ज्यादा दृष्टिपात करते हैं जिसे ''सामाजिक स्व'' (social self) कहा जाता है। (गेराल्ड आर. लेस्ली व अन्य 1994 : 144)।

मानव समाजों में सामाजीकरण निर्णायक होता है। शिशु को सामाजिक प्राणी बनाना इसका उद्देश्य होता है। इसकी प्रक्रिया शिशु के जन्म के बाद से ही शुरू हो जाती है। बच्चा पारिवारिक सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए अपने 'स्व' का विकास करता है।

'स्व' या 'आत्म' को विकसित करते हुए एक बच्चा अपने अस्तित्व को समझता हुआ दूसरों से अन्तर्क्रिया करने लगता है। यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है और दीर्घकालीन प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के कई अभिकरण या साधन होते हैं यानि विविध संस्थाओं एवं समूहों के द्वारा व्यक्ति का सामाजीकरण होता है। इन समस्त अभिकरणों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं–

(i) प्राथमिक समूह, और

(ii) द्वैतीयक समूह।

परिवार, उम्र–समूह, पड़ोस, नातेदारी समूह, विद्यालय, मित्र मण्डली, इत्यादि **प्राथमिक समूह** हैं, जिनका व्यक्ति के सामाजीकरण में महत्वपूर्ण स्थान है।

सामाजीकरण **द्वैतीयक समूहों** द्वारा भी होता है। इसके अन्तर्गत जाति, वर्ग, राजनैतिक दल, धार्मिक समूह, भाषा समूह, सांस्कृतिक समूह एवं व्यावसायिक समूह इत्यादि आते हैं।

सामान्यतः **प्रारम्भिक सामाजीकरण परिवार में** होता है। शोधकर्ताओं ने यह पाया है कि परिवार की संरचना का बच्चे के सामाजीकरण में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए बड़े परिवारों में उत्पन्न बच्चे और बाद में पैदा हुए बच्चे उन बच्चों की अपेक्षा जो छोटे परिवारों में और पहले पैदा हुए होते हैं, वे अपने माँ बाप द्वारा कम ध्यान पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उपलब्धि, भाषा विकास और सामान्यतः समायोजन उन बच्चों में कम सन्तोषजनक होता है जो बाद वाले होते हैं। बच्चे माता–पिता से निकट सम्पर्क स्थापित करते हैं और उनकी भावनात्मक सुरक्षा इस निकटता पर निर्भर करती है।

माता–पिता के स्नेह पूर्ण व्यवहार से उन्हें बहुत सी सीख मिलती है। इसी प्रकार के असामान्य व्यवहार करने वाले माता–पिता का बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। सामाजिक जीवन की बहुत सी बातों को बच्चे परस्पर खेल कर और अनुकरण कर सीख लेते हैं। परिवार में ही बच्चा प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, उदारता, साहस और धैर्य का पाठ सीखता है। ऐसे गुणों को सीखने के लिए परिवार का सकारात्मक माहौल मुख्यतः प्रभावी होता है। दूसरी तरफ घृणा, आत्म–ग्लानि, आत्महीनता, विद्रोह एवं झगड़ालू प्रवृत्ति इत्यादि तब उत्पन्न हो जाती है जब परिवार का माहौल नकारात्मक हो जैसा माता–पिता के सम्बन्ध कटु हों, पारिवारिक सदस्य असंयमी एवं झगड़ालू हों इत्यादि।

सामाजीकरण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है परिवार इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है, जिसका प्रभाव बच्चे पर जीवन पर्यन्त पड़ता रहता है। व्यक्ति के विचारों, दृष्टिकोणों, स्वभाव, आदर्शों–मूल्यों एवं आदतों पर परिवार के प्रभाव को देखा जा सकता है। बच्चा परिवार में ही खाना–खाने के तरीकों को सीखता है, परस्पर व्यवहार के तरीकों को सीखता है, कपड़ा पहनने से लेकर पारिवारिक प्रथा, परम्पराओं, रीति–रिवाजों इत्यादि सभी को सीखता और अनुकरण करता है।

थोड़ा बड़ा होने पर बच्चा अपने समकक्ष अन्य बच्चों के सम्पर्क में खेलने–कूदने के दौरान आता है। अलग–अलग पारिवारिक एवं सामाजिक– सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले बच्चों के साथ खेलते हुए वह समायोजन और अनुकूलन के गुणों को विभाजित करता है।

कुछ वर्षों के उपरान्त बच्चा विद्यालय जाना शुरू करता है फिर महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है। इस समय तक उसकी मानसिक क्षमताओं का विकास हो

चुका होता है। उसका सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्ध विस्तृत होता है। व्यक्तित्व विकास में शिक्षकों और सहयोगी छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अनेकानेक अनुभवों से उसे गुजरना पड़ता है। विविध आवश्यक गुणों को वो अर्जित करता है।

कालान्तर में वह विविध व्यावसायिक समूहों, आर्थिक समूहों, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संस्थाओं के भी सम्पर्क में आता है। इन सभी संस्थाओं द्वारा भी उसका सामाजीकरण होता चलता है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती अवश्य है किन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में होता है और वह प्रमुखतः परिवार द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजीकरण में परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। सुझाव, अनुकरण, सहानुभूति, पुरस्कार और दण्ड, सहमति–असहमति तथा मजाक उड़ाना, इन सबका सामाजीकरण में योगदान होता है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने विविध सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। हम यहाँ सामाजीकरण से सम्बन्धित तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

चार्ल्स कूले का **'आत्मदर्पण का सिद्धान्त'** ('लुकिंग–ग्लास सेल्फ') सामाजीकरण से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। कूले की रूचि इस बात को जानने में थी कि कैसे एक जैवकीय प्राणी सामाजिक मनुष्य बनता है। उसने यह महसूस किया कि इसमें सामाजीकरण की प्रक्रिया सम्मिलित है। जैवकीय प्राणी को संशोधित किया जाता है। यहाँ तक कि उसकी भूख और सेक्स की इच्छा को भी समाज द्वारा निर्धारित तरीके से परिवर्तित किया जाता है। जैवकीय प्राणी को माता–पिता या अन्य सामाजीकरण के अभिकरणों के द्वारा इन पाठों को पढ़ाया जाता है। कूले ने व्यक्ति के 'मूल व्यवहार' को सामाजिक व्यक्ति में रूपान्तरित करने का विश्लेषण किया है जिसका अपने सदस्यता समूह के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं होता।

बच्चों में इस प्रकार की अवधारणा नहीं होती कि संसार उनसे अलग है; यह समझ भाषा सीखने से जुड़ी हुई है। बच्चे का पहली बार 'मेरा' कहना यह प्रदर्शित करता है कि उसमें अपने बारे में यह जागरूकता हो गयी है कि वह दूसरों से अलग हैं। 'मैं' और 'मुझे' उससे कुछ ऊपर की स्थिति होती है, जो यह प्रदर्शित करती है कि अब वह पूरी तरह से व्यक्ति के रूप में स्व–जागरूक हो गया है।

सामाजिक दर्पण समूह या समाज है जिसमें व्यक्ति यह कल्पना करता है कि कैसे उसे दूसरे देखते हैं। यह ऐसे है जैसे लोग किसी दर्पण (शीशे) के आगे खड़े हैं– सामाजिक दर्पण और उस दर्पण में दूसरे लोगों के उनके बारे में अनुमान को देख रहे हैं। दर्पण में देखने का परिणाम आत्म–दर्पण की अवधारणा है। कूले (1902 : 184) ने अपने आत्मदर्पण के सिद्धान्त में आत्म–विचार के तीन सैद्धान्तिक तत्वों का उल्लेख किया है– (i) अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रस्तुति की कल्पना; (ii) उस प्रस्तुति पर उसके निर्णय की कल्पना; और (iii) किसी प्रकार की स्व–अनुभूति, जैसे घमण्ड या अवमानना।

इस दृष्टि को बच्चों के उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। बच्चे अपने माता–पिता को देखते हुए यह सीखते हैं कि वे आकर्षक या घरेलू, पुरुषत्व गुणों वाले या स्त्री सरीखे, बुद्धिमान या बेवकूफ ताकतवर या कमजोर, स्वस्थ या बीमार इत्यादि–इत्यादि हैं। इस प्रत्यक्षीकरण के द्वारा बच्चे अपने बारे में छवि विकसित करते हैं। यदि माँ–बाप यह संकेत देते हैं कि वे आकर्षक, स्मार्ट और अच्छे हैं तो बच्चा संतुलित, आत्मविश्वासी और

दृढ़ बनता है और यदि इसके विपरीत होता है, तो बच्चा व्याकुल या अकेला स्वीकृति के तरीकों को विकसित करता है।

जार्ज मीड ने **'सामान्यीकृत अन्य'** की अवधारणा विकसित करके सामाजीकरण का महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत किया। मीड ने सामाजिक–स्व के विकास के दो भागों को बताया है। पहले भाग का 'स्व' दूसरों की अभिवृत्तियों को स्वीकार कर विकसित होता है। दूसरा भाग मूल होता है और अप्रत्याशित भी होता है। पहले को उसने 'मुझे' (me) और बाद वाले को 'मैं' (I) कहा।

'मुझे' और 'मैं', ये दो जो सामाजिक स्व के अंग हैं, निरन्तर अन्तर्क्रिया करते रहते हैं। 'मुझे' स्व का अभिसामयिक हिस्सा है, यानि दूसरों की प्रत्याशाओं का व्यक्ति की भविष्यवाची प्रतिक्रिया'। दूसरे शब्दों में स्व का 'मुझे' हिस्सा, एक विषय है, जिसे दूसरे लोग प्रतिक्रिया करते और निर्णय करते हैं। अगर 'मुझे' स्व का समरूप, निष्क्रिय हिस्सा है तो 'मैं' क्रियाशील, सृजनात्मक हिस्सा। 'मैं' की शक्ति विशेष गुणों को प्रदर्शित करती है, 'मैं' व्यक्तित्व का विशिष्ट अंग होता है।

सिगमण्ड फ्रायड ने भी **'इद', 'अहम्'** और **'पराहम'** (इड, ईगो और सुपर ईगो) के आधार पर अपना सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कूले की अपेक्षा मीड के विचारों से फ्रायड की निकटता देखी जा सकती है। मीड की तरह ही, उसने 'स्व' को विविध अंगों में विभाजित किया। उसने यह देखा कि 'स्व' के सक्रिय हिस्से समाज के आदर्शों को स्वीकार करने वाले समनुरूप हिस्से से संघर्ष में रहते हैं।

'स्व' को तीन हिस्सों– **इद, ईगो** और **सुपर ईगो** (इद, अहम और पराहम) में बाँटते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इद पूर्णतः अचेतन होता है और स्व का अति प्रारम्भिक पहलू है। यह हमारी ऐन्द्रिक इच्छाओं, विशेषकर आक्रामकता और सेक्स के क्षेत्र में, को प्रतिनिधित्व करता है। इद से अलग अहम (ईगो) विकसित होता है जिसका मुख्य प्रकार्य इद को नियंत्रित करना होता है। प्रतीकात्मक–अन्तर्क्रियात्मक शब्दावली में 'अहम' वस्तुगत स्व है। 'पराहम' (सुपर ईगो) ज्यादातर अचेतन रूप से विकसित होता है जब व्यक्ति समाज के मूल्यों और आदर्शों को व्यक्तित्व में उतारता है। स्व का यह पक्ष जब चेतनात्मक स्तर पर संचालित होता है तो अन्तःकरण कहलाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रिया अहम् तथा पराहम का विकास करती है। आत्मीकरण के आधार पर इड तथा अहम और पराहम का विभेदीकरण सम्भव होता है। मानव का मौलिक स्वभाव 'इड' है, जो ऐन्द्रिक इच्छाओं और तात्कालिक इच्छाओं का द्योतक है। वह पशुवत है। नैतिकता–अनैतिकता, सामाजिकता–असामाजिकता की चेतना को सामाजीकरण की प्रक्रिया जाग्रत करती है, अहम् और पराहम के विकास साथ भौतिक जगत की चेतना, वास्तविकता और व्यावहारिकता का ज्ञान तथा समाजानुरूप अन्य चेतनाओं का विकास सम्भव होता है।

उपरोक्त सभी सिद्धान्त सामाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में अपना–अपना योगदान करते हैं।

2.6 अभिप्रेरणा

किसी कार्य को करने के लिए बाह्य या आन्तरिक उत्तेजकों को अभिप्रेरणा कहा जाता है। पारसन्स ने भी सामाजिक क्रिया की अपनी अवधारणा में अभिप्रेरणा का उल्लेख

किया है। उनके अनुसार किसी भी सामाजिक क्रिया के तीन पक्ष होते हैं– (i) कर्त्ता (ii) परिस्थिति और (iii) अभिप्रेरणा।

क्या अभिप्रेरणा मनः शारीरिक दशा है? क्या यह एक उत्तेजक है? क्या यह कोई आन्तरिक स्थिति है? इत्यादि। ऐसे विविध प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। हम इन प्रश्नों का उत्तर विविध विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर खोजने का प्रयास करेंगे।

गिलफोर्ड (1956) का कहना है कि 'अभिप्रेरणा कोई विशिष्ट आन्तरिक कारक या दशा है जो क्रिया की पहल करती है तथा उसे बनाए रखती है।' रेबर (1987) अभिप्रेरणा को उत्तेजन की एक अवस्था मानते हैं। डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी (1968) में ड्रीवर लिखते हैं कि, 'अभिप्रेरणा एक भावात्मक–क्रियात्मक कारक है, जो चेतन अथवा अचेतन रूप से व्यक्ति के व्यवहार को किसी उद्देश्य या लक्ष्य की ओर निर्धारित करने का कार्य करती है।'

हिलगार्ड (1979) ने अभिप्रेरणा के तीन प्रमुख पक्षों– आवश्यकता, प्रणोदन तथा प्रोत्साहन के आधार पर इसे विश्लेषित करते हुए, इनके बीच के गहरे सम्बन्ध को उजागर किया है। उन्होंने अभिप्रेरणात्मक चक्र को एक अन्तर्सम्बन्धित सूत्र–आवश्यकता–प्रणोदन–प्रोत्साहन सूत्र ('नीड–ड्राईव–इनसेन्टिव फार्मूला') द्वारा स्पष्ट किया है।

व्यक्ति की अभिप्रेरणाएं या तो जैविक प्रेरकों से अथवा सामाजिक–अर्जित प्रेरकों से सक्रिय होती हैं। शेरीफ एवं शेरीफ (1956 : 367) ने भी ऐसे विभाजन द्वारा अभिप्रेरणा को स्पष्ट किया है। मनुष्य में सफलता प्राप्त करने या असफलता से बचने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसे उपलब्धि प्रेरकों के अन्तर्गत विश्लेषित किया जाता है, इसका प्रभाव मानव व्यवहार एवं क्रिया पर पड़ता है। सभी मनुष्यों में उपलब्धि प्रेरक एक समान नहीं होते, इनके विकास पर विविध कारकों का यथा पालन–पोषण, मानसिक क्षमता इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। किसी समाज के विकास में उस समाज के लोगों में उपलब्धि प्रेरकों की प्रबलता सकारात्मक प्रभाव डालती है।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति की अभिप्रेरणाओं को मापने के लिए कई प्रविधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त की है। अभिप्रेरणाओं की माप या तो व्यक्ति की क्रियाओं के आधार पर की जा सकती है या परिस्थितिजन्य परीक्षणों के आधार पर की जा सकती है। प्रश्नावली प्रविधि और प्रक्षेपी तकनीकों का भी अभिप्रेरणा मापन में प्रयोग किया जाता है। यह अलग बात है कि इनकी शत–प्रतिशत वैधता पर प्रश्नचिन्ह लगता रहा है।

अभिप्रेरणा से सम्बन्धित कई सिद्धान्त है। इनमें से– मनोविश्लेषण सिद्धान्त (फ्रायड), क्षेत्र सिद्धान्त या गेस्टाल्ट सिद्धान्त (कर्ट लेविन), प्रकार्यात्मक–स्वायतता सिद्धान्त (जॉन डीवी, ऑलपोर्ट), तथा आत्म–कार्यान्वयन सिद्धान्त (मैस्लो) विशेष महत्वपूर्ण हैं।

2.7 अभिवृत्ति

सामाजिक विश्व के किसी भी पक्ष का मूल्यांकन अभिवृत्ति होती है। सामाजिक सीख के द्वारा मनुष्य अभिवृत्तियों को ग्रहण करता है। स्पष्ट है कि ये जन्मजात नहीं होती हैं। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि विद्वानों ने अपने अध्ययनों द्वारा यह प्रमाणित किया है कि अभिवृत्ति पर आनुवंशिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। अभिवृत्ति निर्माण सामाजिक सीख एवं सामाजिक तुलना के द्वारा होता है और बहुधा इनकी प्रकृति स्थायी होती है। किन्हीं कारकों के परिणामस्वरूप इनमें परिवर्तन भी परिलक्षित होते हैं जैसे सोच और अनुभव में असंगति।

हमारी अधिकांश अभिवृत्तियाँ उस समूह से विकसित होती हैं, जिनसे हम सम्बद्ध होते हैं। बाल्यावस्था से ही हम विविध लोगों के सम्पर्क में आने लगते हैं और व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर अभिवृत्ति निर्मित करते चले जाते हैं। इसे और भी स्पष्ट करते हुए बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 110) ने लिखा है कि, ''हमारी अभिवृत्तियाँ प्राथमिक रूप से सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न होती है। जन्म से ही मानव प्राणी ऐसी सामाजिक संस्थाओं के जाल में उलझ जाता है, जो भौतिक जगत के रूप में उसके परिवेश का निर्माण करती हैं। प्रथम सामाजिक इकाई के रूप में घर का किसी व्यक्ति के अभिवृत्ति निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि बाद में प्राप्त होने वाले अनुभव आसानी से हम अभिवृत्तियों में बदल नहीं सकते क्योंकि अभिवृत्तियाँ व्यक्तियों, समूहों और अन्य सामाजिक वस्तुओं के प्रति हमारी अनुक्रियाओं को एक संगति प्रदान करती है, इसका भी यही कारण है।

रिचर्ड टी ला पियरे ने अपने अध्ययन से प्रमाणित किया कि अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर होता है। अभिवृत्ति अनेक तन्त्रों से मानव व्यवहार को प्रभावित करती है। अभिवृत्ति की तीव्रता सभी व्यक्तियों में एक समान नहीं होती है।

अभिवृत्ति से सम्बन्धित विस्तृत विवरण ब्लॉक 2 की इकाई पाँच में दिया गया है।

2.8 पूर्वाग्रह

पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति है, जिसमें किसी समूह या उसके सदस्य के प्रति नकारात्मक भाव होता है। एक खास धर्म के लोगों के प्रति हमारी विशिष्ट सोच, महिलाओं के प्रति हमारा नजरिया, एक जाति विशेष के प्रति हमारा नकारात्मक दृष्टिकोण पूर्वाग्रह का ही उदाहरण। पूर्वाग्रह में साधारणतया नकारात्मक मनोवृत्ति ही देखी जाती है किन्तु कुछ विद्वानों ने इसकी सकारात्मक मनोवृत्ति को भी महत्व दिया है। दैनिक बोलचाल की भाषा में हम 'पूर्वाग्रह' और विभेदीकरण को समानार्थक शब्दों के रूप में प्रयोग करते हैं। वास्तविकता यह है कि इन दोनों में अन्तर है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'पूर्वाग्रह का अर्थ किसी खास समूह के सदस्यों के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति– साधारणतया नकारात्मक होती है। इसके विपरीत विभेदीकरण का अर्थ उन व्यक्तियों के प्रति नकारात्मक क्रियाएँ– मनोवृत्ति का व्यवहार में रूपान्तर होना है।' (बैरन एवं बायर्न 2004 : 185)। स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह एक नकारात्मक अभिवृत्ति/मनोवृत्ति है, जबकि विभेदीकरण नकारात्मक व्यवहार।

कुप्पुस्वामी (1975 : 150) के अनुसार, 'पूर्वाग्रह को एक सामाजिक रूप से सुनिश्चित समूह के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।' आगबर्न (1922 : 17) ने इसे जल्दबाजी में किया गया निर्णय माना है, जो उपयुक्त परीक्षण के बगैर अस्तित्व में आ जाता है। शेरीफ और शेरीफ (1956 : 648) ने भी इसकी नकारात्मक मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला है।

किसी समूह के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति व्यक्ति के स्थापित आदर्शों का प्रतिफल होती है। उन्हीं स्थापित आदर्शों के आधार पर वह किसी के प्रति पूर्व निर्णय कर देता है। स्वाभाविक है कि पूर्वाग्रह में न केवल जल्दबाजी होती है अपितु वे अतार्किक भी होते हैं। पूर्वाग्रह निर्माण पर प्रकाश डालते हुए किम्बॉल यंग (1948 : 258) ने लिखा है कि, 'पूर्वाग्रह रूढ़ियुक्तियों, लोक गाथाओं एवं पौराणिक कथाओं के संगठन से बनता है, जिसमें एक

व्यक्ति या समग्र रूप में एक समूह का वर्गीकरण करने, उसकी विशेषता स्थापित करने तथा परिभाषित करने के लिए समूह–संज्ञा या प्रतीक का प्रयोग किया जाता है।'

पूर्वाग्रह का आधार बुरी उन्मुखता होता है, इसीलिए सामान्यतः ये नकारात्मक, कठोर, अ–लचीले, अतार्किक होते हैं। यह बगैर तथ्यों पर आधारित विशिष्ट मत या विश्वास होता है। पूर्वाग्रह को स्वाभाविक बैर भाव माना जाता रहा है, अब इसकी अर्जित प्रवृत्ति को मनोवैज्ञानिकों ने उजागर किया है। पूर्वाग्रह की उत्पत्ति के विरोधास्पद परिप्रेक्ष्य को अत्यन्त स्पष्ट रूप से बैरन और बायर्न (2004 : 215–216) ने प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि, पूर्वाग्रह विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होता है। इनमें एक है प्रत्यक्ष अन्तर्समूह संघर्ष– वैसी स्थितियाँ जिनमें सामाजिक समूह एक ही अल्प संसाधनों को पाने के लिए प्रतियोगिता करते हैं। पूर्वाग्रह का दूसरा आधार है पूर्व अनुभव, जो प्रायः बच्चों को विभिन्न समूहों से घृणा करने के लिए प्रशिक्षित करता है। पूर्वाग्रह विश्व को ''हमारे'' व ''उनके'' में बाँटने एवं अपने समूह को विभिन्न बाह्य समूहों की तुलना में अधिक सकारात्मक रूप से देखने की हमारी प्रवृत्ति से भी पैदा होता है। पूर्वाग्रह कभी–कभी सामाजिक संज्ञान के मूलभूत पहलू से पैदा होता है।

पूर्वाग्रह में स्थिरता और दृढ़ता पायी जाती है किन्तु इनमें परिवर्तन सम्भावित है। लोगों को विशिष्ट रूप के लिए अभिप्रेरित करके, संज्ञानात्मक प्रविधियों का प्रयोग करके, पुनवर्गीकरण करके या अन्य विविध तरीकों के प्रयोग द्वारा पूर्वाग्रह में बदलाव लाया जा सकता है। बेटलहाइम (1964) का कहना है कि, आर्थिक और सामाजिक प्रणालियों के कष्टप्रद पहलुओं में सुधार होने से भी पूर्वाग्रह के सक्रिय कारण को दूर किया जा सकता है। लक्षण सम्बन्धी सिद्धान्तकारों की यह मान्यता है कि मनश्चिकित्सा, अन्तर्दृष्टि का प्रशिक्षण, शिशु पालन सम्बन्धी तरीकों में परिवर्तन और व्यक्तित्व के आन्तरिक द्वन्दों को कम करने वाली प्रविधियों के प्रयोग द्वारा 'पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है। पूर्वाग्रह के सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रचार एवं शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है, जिससे पूर्वाग्रह को कम करने में मदद मिलती है।

29. रूढ़ियुक्तियाँ

सामाजिक मनोविज्ञान में **'रूढ़ियुक्ति'** का **सर्वप्रथम प्रयोग वाल्टर लिपमैन ने** वर्ष 1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक '**पब्लिक ओपीनियन**' में किया था। उन्होंने इसको 'हमारे मस्तिष्क के चित्रों' के रूप में अभिव्यक्त किया था।

रूढ़ियुक्ति और पूर्वाग्रह में अन्तर है। पूर्वाग्रह कभी–कभी सामाजिक संज्ञान के मूलभूत पहलू से पैदा होता है। रूढ़ियुक्तियाँ संज्ञानात्मक ढाँचे होती हैं। आधुनिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि रूढ़ियुक्तियाँ पूर्वाग्रह से अत्यधिक जुड़ी होती है। बच्चे पूर्वाग्रह और रूढ़ियुक्तियों के साथ पैदा नहीं होते वे उसे परिवार, दोस्तों, जनसंचार और आसपास के समाज से सीखते हैं।

किम्बॉल यंग (1957 : 189) के अनुसार 'रूढ़ियुक्ति एक मिथ्या वर्गीकरण करने वाली अवधारणा है, जिसके प्रति रूचि या अरूचि, स्वीकृति या अस्वीकृति की तीव्र संवेगात्मक अनुभूति जुड़ी रहती है।' समूह के द्वारा स्वीकृत इसकी अभिव्यक्ति प्रायः मौखिक रूप से होती है। जूड़, रयान व पार्क (1991) ने रूढ़ियुक्तियों को वैसे संज्ञानात्मक ढाँचे के रूप में माना है जिनमें विशेष सामाजिक समूहों के बारे में जानकारी व विश्वास एवं इन

समूहों से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों के विशिष्ट लक्षण शामिल हैं। दूसरे शब्दों में इसे स्पष्ट करते हुए बैरन एवं बायर्न (2004 : 197) ने लिखा है कि, 'रूढ़ियुक्तियों (स्थिराकृति) से पता चलता है कि सामाजिक समूह से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोगों में निश्चित लक्षण कुछ न कुछ अवश्य होता है। एक बार स्थिरकृति (रूढ़ियुक्ति) क्रियाशील हो जाने पर ये लक्षण दिमाग में अपने आप आ जाते हैं।' हम विविध समूहों जैसे चीनी, जापानी, हिप्पी, बेघर, समलैंगिक इत्यादि के लक्षणों को रूढ़ियुक्तियों के आधार पर ही बता पाते हैं, भले ही हमारा इनके साथ सीमित सम्बन्ध हो या कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध न हो। पूर्वाग्रह में रूढ़ियुक्तियों की भूमिका होती है। हम किस प्रकार सामाजिक सूचना की प्रक्रिया करते हैं, पर रूढ़ियुक्तियाँ गहरा प्रभाव डालती हैं। कावाकामी, डियोन व डोविडियो (1998) ने अपने अध्ययन से यह सिद्ध किया कि रूढ़ियुक्तियाँ पूर्वाग्रह से सम्बन्धित होती हैं।

एक बार रूढ़ियुक्ति निर्मित हो जाने पर हमारी उनसे सम्बन्धित जानकारी की प्रक्रिया का तरीका प्रभावित होता है। जब हम वैसी सूचना पाते हैं जो रूढ़ियुक्ति से असंगत हो, तो हम ऐसा अनुमान लगाते हैं जिससे सूचना रूढ़ियुक्ति से मेल खाये।

बैरन एवं बायर्न (2004 : 198) ने अपने इस कथन को निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है–

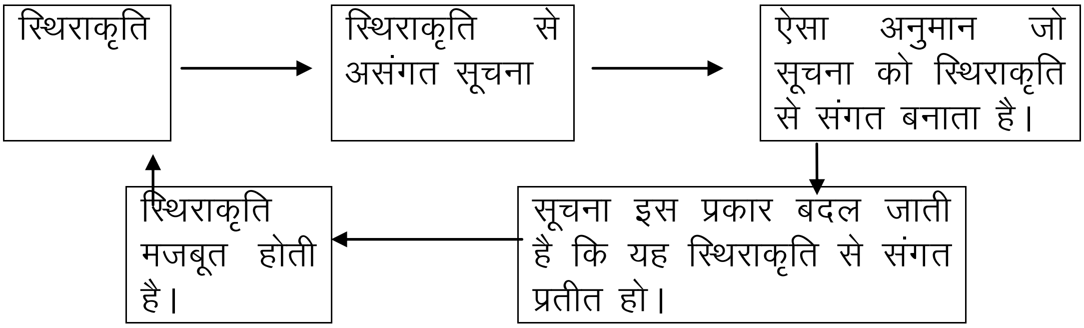

रूढ़ियुक्तियाँ मानस पर बनी धारणा या चित्र हैं जो किसी समूह के प्रति विशिष्ट शीलगुणों या विशेषताओं का निर्धारण कर लेती हैं। इस अतिरंजित धारणा में परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध पाया जाता है और ये सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही हो सकती हैं। विद्वानों का ऐसा मानना है कि इनसे पूर्ण सत्यता का बोध नहीं होता, ये घोर अतिरंजित होती हैं। नवीनतम शोधों से ज्ञात होता है कि इनका पूर्वाग्रह से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। अत्यधिक पूर्वाग्रही व्यक्ति निम्न पूर्वाग्रहियों की तुलना में रूढ़ियुक्ति सम्बन्धित शब्दों के प्रति तीव्र अनुक्रिया करते हैं।

भारतीय समाज में महिलाओं के साथ पूर्वाग्रह देखा जा सकता है। जें'ण्डर' रूढ़ियुक्तियाँ पुरुषों एवं महिलाओं के अन्तर को बढ़ाती हैं। महिलाओं के कम वांछनीय गुणों की चर्चा 'जेण्डर' रूढ़ियुक्तियों का परिणाम हैं, जिसका महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

विविध तरीकों (जैसे नजर अन्दाज करके) से रूढ़ियुक्तियों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। विद्वानों का कहना है कि सकारात्मक प्रत्यक्षीकरण के लिए ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए ताकि पूर्व धारित विश्वासों को कम किया जा सके और व्यक्तियों के सन्दर्भ में हमारे निर्णय पक्षपात रहित हों।

2.10 सार संक्षेप

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से हमें आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की गहन जानकारी प्राप्त होती है। उपरोक्त पृष्ठों में आपने सामाजिक प्रत्यक्षीकरण जैसी संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया को समझा होगा जिससे हम अन्य व्यक्तियों को जानने एवं समझने का प्रयास करते हैं। आपको स्पष्ट हुआ होगा कि हम सामाजिक प्रत्यक्षीकरण (मनुष्यों का) के साथ–साथ गैर सामाजिक (वस्तुओं का) प्रत्यक्षीकरण भी करते हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में हम व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और प्रत्यक्षीकरण को विश्लेषित करते हैं।

हमने सीखने की प्रक्रिया को भी समझने का प्रयास किया है, जिससे ज्ञात होता है कि इस संज्ञानात्मक–प्रतिक्रिया में दूसरे के व्यवहार से अपने व्यवहार में परिवर्तन होता है। शिशु में सीखने की प्रक्रिया दूसरों के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए होती है। सीखना किसी भी प्रकार का हो सकता है लेकिन जब यह सीखना पारिवारिक एवं सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप हो और व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और सामाजिक अनुकूलन के गुण से युक्त हो तो सामाजीकरण कहलाता है। जीवन पर्यन्त चलने वाली यह प्रक्रिया एक जैवकीय प्राणी (शिशु) को सामाजिक प्राणी बनाती है।

हमने अभिप्रेरणा और अभिवृत्ति को भी समझने का प्रयास किया है। अभिप्रेरणा बहुआयामी प्रक्रिया होती है जो व्यक्ति को क्रियान्मुख करती है। सामाजिक सीख से ग्रहण की जाने वाली अभिवृत्ति का जन्म सामाजिक तुलना से होता है। इनमें और व्यवहार में अन्तर होता है। मूल्यांकन से सम्बन्धित होने के बावजूद ये हमेशा ही बाह्य व्यवहार में परिलक्षित नहीं होती है।

हमने पूर्वाग्रह और रूढ़ियुक्तियों के विश्लेषण द्वारा यह जाना कि किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति एक विशेष प्रकार की (बहुधा नकारात्मक) मनोवृत्ति पूर्वाग्रह होती है। इसकी तीव्रता व्यक्तियों में कम या अधिक मात्रा में पायी जाती है। इसके अनेकों दुष्परिणाम होते हैं, यद्यपि विविध तरीकों से इसमें परिवर्तन लाया जा सकता है। पूर्वाग्रह और विभेदीकरण में अन्तर होता है। पूर्वाग्रह में रूढ़ियुक्तियों की भूमिका होती है। बच्चे पूर्वाग्रह और रूढ़ियुक्तियों को परिवार, मित्रों और समाज से सीखते हैं। इस दृष्टि से स्पष्ट है कि ये दोनों जन्मजात नहीं होती। रूढ़ियुक्ति और पूर्वाग्रह में अन्तर से यह अर्थ नही निकालना चाहिए कि वे आपस में जुड़ी नहीं होती हैं। जेन्डर रूढ़ियुक्तियों के प्रभाव को महिलाओं के साथ पूर्वाग्रह के रूप में देखा जा सकता है।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को समझाइये ?
2. प्रत्यक्षीकरण के प्रकारों के बारे में बताइये ?
3. प्रत्यक्षीकरण में गुणारोपण की प्रक्रिया को समझाइये ?
4. प्रत्यक्षीकरण में संज्ञानात्मक प्रतिक्रियात्मक व्यवस्था का वर्णन कीजिये ?
5. सीखना के विविध पक्षों एवं इसके कारकों की व्याख्या कीजिये ?
6. सामाजीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिये ?
7. सामाजीकरण के विविध अभिकरणों एवं सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये ?
8. अभिप्रेरणा की अवधारणा की व्याख्या कीजिये ?

9. अभिप्रेरणा के पहलुओं एवं प्रकारों को समझाइये ?
10. जैविक एवं सामाजिक प्रेरकों में अन्तर को स्पष्ट कीजिये ?
11. अभिवृत्ति के अर्थ को स्पष्ट कीजिये ?
12. अभिवृत्ति में निर्माण तथा परिवर्तन की व्याख्या कीजिये ?
13. पूर्वाग्रह के अर्थ को समझाइये ?
14. पूर्वाग्रह की विशेषताओं एवं कारकों को स्पष्ट कीजिये ?
15. रूढ़ियुक्तियों के अर्थ का वर्णन कीजिये ?

2.12 पारिभाषिक शब्दावली

Social Work Practice	समाज कार्य अभ्यास	Projection	प्रक्षेपण
Mental Mechanism	मनोरचनायें	Introjection	अन्तःक्षेपण
Repression	छमन	Transference	स्थानान्तरण
Suppression	शमन	Displacement	विस्थापन
Inhibition	अन्तर्बाधा	Compensation	क्षतिपूर्ति
Regression	प्रतिगमन	Over compensation	अतिपूर्ति
Conversion	रूपान्तरण	Withdrawl	प्रत्याहार
Sublimation	डदातीकरण	Phantancy	कल्पना–तरंग
Rationalization	युक्तिकरण	Evation	पलायन
Reaction formation	प्रतिक्रिया निर्माण	Negative	नकारात्मकता
Identification	आत्मीकरण	Experiment	प्रयोग

सन्दर्भ ग्रन्थ

- Allport, F.H. (1924) Social Psychology, Boston : Riverside Editions,
- Allport, G.W. (1937) Personality : A Psychological Interpretation, New York : Holt, pp. 29-47.
- Allport, G.W. (1954) Nature of Prejudice, Garden City, N.Y. : Double day.
- Berry, D.S. (1991) Accuracy in Social Perception : Contributions of Facial and Social Information, Journal of Personality and Social Psychology, 68, 291-307.
- Bettelheim, B. Social Change and Prejudice, Free Press, N.Y., 1964
- Cooley, C.H. Human Nature and the Social Order, New York : Schocken
- Festinger, L. (1954) A Theory of Social Comparison Process, Human Relations, 7, 117-140.
- Gerald, R. Leslie, R.F. Larson, B.L. Gorman, 'Introductory Sociology : Order and Change in Society', Third Edition, Oxford University Press, Bombay 1994, p. 144
- Gifford, R. (1994) A Lens-mapping Framework for Understanding the Encoding and Decoding of Interpersonal Dispositions in Non-verbal Behaviour. Journal of Personality and Social Psychology, 66, 398-412.

- Heider, F. (1958) The Psychology of Interpersonal Relations. New York : Wiley.
- Johnson, H.M. (1961) Sociology : A Systematic Introduction, p. 110
- Judd, C.M., Ryan, C.S., Parke, B. (1991) Accuracy in the judgement of in-group and out group variability, Journal of Personality and Social Psychology, 61, 366-379
- Kenney, D.A., Albright, L., Malloy, T.E. and Kashy, D.A. (1994) Consensus in Interpersonal Perception : Acquaintance and the Big Five, Journal of Personality and Social Psychology, 116, 245-58.
- Kimball Young, (1957) Handbook of Social Psychology Routledge and Kegan Paul Ltd., London, p. 89.
- La Piere, RT, "Attitude vs. Actions", Reproduced in Bickman and Henely, Beyond the Laboratory, McGraw-Hill, 1972.
- कुप्पुस्वामी, बी. (1975) समाज मनोवैज्ञानिक के मूल तत्त्व, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, हिन्दी अनुवादक श्रीकान्त व्यास।
- रौबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न, 'सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद), 2004, पीयरसन एजुकेशन प्रा.लि., भारतीय शाखा, दिल्ली, 2004.
- रॉबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न, सामाजिक मनोविज्ञान, प्रथम हिन्दी अनुवाद, 2004, पीयरसन एजुकेशन, नई दिल्ली।

इकाई–3

व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार

Personality and Human Behaviour

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 परिचय
3.2 अवधारणा
3.3 व्यक्तित्व अध्ययन के उपागम
3.4 व्यक्तित्व के निर्धारक
3.5 व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सोपानों की व्यवहारगत समस्यायें
3.6 व्यक्तित्व का मापन
3.7 सार संक्षेप
3.8 अभ्यास प्रश्न
3.9 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- व्यक्तित्व की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे,
- व्यक्तित्व के अध्ययन के विभिन्न उपागमों में विभेद कर सकेंगे,
- व्यक्तित्व विकास की विभिन्न व्यवहारगत समस्याओं के संदर्भ में अंतर्दृष्टि विकसित कर सकेंगे, तथा
- व्यक्तित्व–मूल्यांकन की कुछ तकनीकों का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 परिचय

व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार विषयक इस इकाई को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है संसार का हर एक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्तित्व में आपकी षारीरिक एवं संवेगात्मक; अभिवृत्तियां तथा प्रतिक्रियायें निहित होती हैं। व्यक्तित्व हर एक व्यक्ति का एक बिल्कुल ही अलग चिन्तन करने, व्यवहार करने एव अनुभव करने का तरीका होता है।

लगभग प्रतिदिन ही हम अलग–अलग लोगों से हम मिलते है, उनका वर्णन और मूल्यांकन करते है। यह करते समय हमें आभास ही नहीं होता है कि हम लगभग वही कर रहे होते हैं जो व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक किया करते है। इस अनौपचारिक आकलन में हमारा केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होता है, जबकि व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक इस आकलन को सभी लोगों पर लागू करने का प्रयास करते हैं। व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक यह देखते हैं कि विभिन्न व्यक्तित्व गुण किस प्रकार और क्यों विकसित होते है, तथा ये व्यक्तित्व गुण किस प्रकार व्यक्ति और उसके वातावरण को प्रभावित करते है एवं उससे प्रभावित होते हैं।

3.2 व्यक्तित्व की अवधारणा

व्यक्तित्व का शाब्दिक अर्थ लैटिन शब्द परसोना (personal) से लिया गया है। परसोना उस मुखौटे को कहते हैं जिसे अपनी मुख–रूपसज्जा को बदलने के लिए रोमन नाटकों में अभिनेता उपयोग में लाते थे। अभिनेता जिस मुखौटे को अपनाता है, दर्शक उससे उसी अनुरूप भूमिका की प्रत्याशा रखते हैं।

व्यक्तित्व (personality) से तात्पर्य उन विशिष्ट तरीकों से है जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों और स्थतियों के प्रति अनुक्रिया करता है। हर एक व्यक्ति बड़ी सरलता से इस बात का वर्णन कर सकते हैं कि वे किस तरीके से विभिन्न परिस्थितियों के प्रति अनुक्रिया करते हैं; जैसे – खुशमिजाज, शांत, गंभीर इत्यादि शब्दों के द्वारा प्रायः व्यक्तित्व का वर्णन किया जाता है।

3.3 व्यक्तित्व अध्ययन के उपागम

व्यक्तित्व की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए वैज्ञानिकों ने विभिन्न उपागमो का प्रतिपादन किया है। इन्हें सैद्धान्तिक उपागम भी कहते हैं। इन उपागमों मे से कुछ उपागमों का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है–

3.3.1 प्रारूप उपागम (Type Approach)

इस उपागम में व्यक्तित्व के प्रारूप (Type) समानताओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया जाता है। ग्रीक चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) ने लोगों को उनके शरीर मे उपस्थित फ्लूइड (fluid) के आधार पर चार प्ररूपों में वर्गीकृत किया है– उत्साही (पीला पित्त), श्लैष्मिक (कफ), विवादी (रक्त) तथा कोपशील (काला पित्त)। इन द्रवों की प्रधानता के आधार पर प्रत्येक प्ररूप विशिष्ट व्यवहारपरक विशेषताओं वाला होता है।

क्रेश्मर एवं शेल्डन (Kretshmer and Sheldon) ने शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया है– स्थूलकाय प्रकार (Pyknik Type), कृश्काय प्रकार (Asthenic Type), पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type) और विषालकाय प्रकार (Dysplastic Type) । स्थूलकाय प्रकार (छोटा कद,भारी एवं गोलाकार, गर्दन छोटी एवं मोटी) के व्यक्ति सामाजिक एवं खुशमिजाज होते हैं। कृष्काय प्रकार (लम्बा कद एवं दुबला पतला शरीर) के व्यक्ति चिड़चिड़े, सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रहने वाले और दिवास्वप्न देखने वाले होते हैं। पुष्टकाय प्रकार (सामान्य कद, शरीर सुडौल एवं संतुलित) के व्यक्ति न ही अधिक चंचल और न ही अधिक अवसादग्रस्त रहते हैं। ये हर परिस्थिति में आसानी से समायोजन कर लेते हैं। और विशालकाय प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं जिनको इन तीन श्रेणियों में शामिल नहीं किया जा सकता है।

शेल्डन ने 1940 में शारीरिक बनावट और स्वभाव कें आधार पर, गोलाकृतिक (endomorphic), आयताकृतिक (mesomorphic) और लंबाकृतिक (ectomorphic) तीन व्यक्तित्व प्ररूप प्रस्तावित किया। गोलाकृतिक प्ररूप वाले व्यक्ति मोटे, मृदुल और गोल होते हैं। स्वभाव से वे लोग शिथिल और सामाजिक होते हैं। आयताकृतिक प्ररूप वाले लोग स्वस्थ एवं सुगठित शरीर वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति ऊर्जस्वी एवं साहसी होते हैं।

लंबाकृतिक प्ररूप वाले दुबले–पतले, लंबे कद वाले और सुकुमार होते हैं। ऐसे व्यक्ति तीव्र बुद्धि वाले और अंतर्मुखी होते हैं।

युंग (Jung) ने 1923 मे अपनी पुस्तक 'साइकोलाजिकल टाइप्स' में व्यक्तित्व के दो प्रकार बताये हैं– बहिर्मुखी (Extravert) एवं अन्तर्मुखी (Introvert)। बहिर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो सामाजिक तथा बहिर्गामी होते हैं। लोगों के साथ में रहते हुए तथा सामाजिक कार्यों को करते हुए वे दबावों का सामना करते हैं। दूसरी तरफ अंतर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो एकांतप्रिय होते हैं, दूसरों से दूर रहते हैं, और संकोची होते हैं।

फ्रीडमैन (Friedman) एवं रोजेनमैन (Rosenman) ने टाइप 'ए' तथा टाइप 'बी', लोगों को दो प्रकार के व्यक्तित्वों में वर्गीकृत किया है। टाइप 'ए' (Type-A) व्यक्तित्व वाले व्यक्ति उच्च अभिप्रेरणा वाले, कम धैर्यवान, हमेशा समय की कमी का अनुभव करने वाले और हमेशा कार्य का बोझ अनुभव करने वाले होते हैं। टाइप 'ए' व्यक्तित्व वाले लोगों में कॉरोनरी हृदय रोग (coronary heart disease) के होने की संभावना अधिक होती है। दूसरी तरफ; टाइप 'बी' (Type-B) व्यक्तित्व के लोगों में टाइप 'ए' व्यक्तित्व की जो विशेषतायें होती हैं उनकी कमी रहती है। मॉरिस (Morris) ने टाइप 'सी' (Type-C) व्यक्तित्व को बताया है। इस प्रकार के व्यक्तित्व के लोग धैर्यवान, सहयोग करने वाले और विनयशील होते हैं। इस प्रकार के लोग अपने निषेधात्मक संवेगों ;जैसे–क्रोध का दमन करने वाले और आज्ञापालन करने वाले होते हैं। इन लोगों में कैंसर रोग के होने संभावना अधिक होती है। इस श्रेणी का नवीनतम प्रकार टाइप 'डी' (Type-D) व्यक्तित्व सुझाया गया है। इस प्रकार व्यक्तित्व के लोगों में अवसादग्रस्त होने की अधिक संभावना होती है।

3.3.2 शीलगुण उपागम (Trait Approach)

शीलगुण उपागम में व्यक्तित्व की व्याख्या व्यक्ति के शीलगुणों के आधार पर की जाती है। शीलगुण उपागम व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले मूल तत्वों की खोज करते हैं। लोगों में मनोवैज्ञानिक गुणों में भिन्नता पायी जाती है। इन्हीं भिन्नताओं को आधार मानकर ऑलपोर्ट (Allport) और कैटेल(Cattel) ने अपने–अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये। ऑलपोर्ट ने शीलगुणों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया– प्रमुख शीलगुण, केंद्रीय शीलगुण तथा गौण शीलगुण । प्रमुख शीलगुण (cardinal traits) सामान्य प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये प्रवृत्तियाँ उस लक्ष्य को दर्शाती हैं, जिसके इर्दगिर्द ही व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। जैसे–मदर टेरेसा का सेवाभाव और हिटलर का नाजीवाद इत्यादि। कम व्यापक किंतु फिर भी सामान्य प्रवृत्तियाँ केंद्रीय गुण (central traits) मानी जाती हैं। जैसे– इमानदार, मेहनती आदि। व्यक्ति के सबसे कम सामान्य गुणों के रूप में गौण शीलगुण (Secondary traits) जाने जाते हैं। जैसे–'मैं सेब पसंद करता हूँ' अथवा 'मैं अकेले घूमना पसंद करता हूँ' आदि।

कैटेल ने कारक विश्लेषण (Factor analysis) के आधार पर 16 मूल शीलगुण बताये हैं। मूल शीलगुण (source traits) स्थिर होते हैं और व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इसके अलावा अनेक सतही शीलगुण (surface traits) भी होते हैं जो मूल शीलगुणों की अंतःक्रिया के फल–स्वरूप उत्पन्न होते हैं। उन्होंने शीलगुण व्यक्तित्व मूल्यांकन के लिए एक परीक्षण विकसित किया जिसे सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (Sixteen Personality Factor Questionnaire, 16PF) कहते हैं।

3.3.3 मनोविश्लेषणात्मक उपागम (Psycho-analytic Approach)

इस उपागम का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया था। फ्रायड एक चिकित्सक थे और उन्होंने अपना सिद्धांत अपने पेशे के दौरान ही विकसित किया। उन्होंने मानव मन को चेतना के तीन स्तरों (चेतन, पूर्वचेतन और अचेतन) के रूप में विभक्त किया है। प्रथम स्तर **चेतन** (conscious) होता है जिसमें वे चिंतन, भावनाएँ और क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकरी लोगों को रहती है। द्वितीय स्तर **पूर्वचेतना** (preconscious) होता है जिसमें वे मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को तभी होती है जब वे उन पर ध्यान केंद्रित करते हैं। चेतना का तृतीय स्तर **अचेतन** (unconscious) होता है जिसमें ऐसी मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को नहीं होती है।

फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना के तीन तत्व बताये हैं– इदम् या इड (id) अहं (ego) और पराहम (superego) । इदम असमन्वित सहज प्रकृति है, जो सुख के सिद्धान्त पर आधारित होता है। अहं सुनियोजित होता है, जो वास्तविकता के सिद्धान्त पर आधारित होता है और पराहम पूर्णता को प्रदर्शित करता है, नैतिकता पर आधारित होता है।

फ्रायड ने रक्षा युक्तियों (defence mechanisms) के बारे में विस्तार से बताया है। रक्षा युक्तियाँ वास्तविकता को विकृत कर दुश्चिंता को कम करने का माध्यम हैं। रक्षा युक्तियों में सबसे महत्वपूर्ण दमन (repression) है जिसमें दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले व्यवहारों और विचारों को पूरी तरह चेतना के स्तर से विलुप्त कर देते हैं। दमन करते समय उन्हें इसका ज्ञान भी नहीं रहता है। कुछ और युक्तियाँ रक्षा प्रक्षेपण, प्रतिक्रिया निर्माण और युक्तिकरण, इत्यादि हैं।

3.3.4 नव–फ्रायडवादी उपागम (Neo-psycho-analytic Approach)

नव–फ्रायडवादीयों में युंग, हॉर्नी, एडलर, एरिक्सन आदि का नाम महत्वपूर्ण है। सबसे पहला नाम युंग का आता है। पहले युंग (Jung) ने फ्रायड के साथ ही काम किया किंतु बाद में वे फ्रायड से अलग हो गए। युंग के अनुसार मनुष्य काम–भावना और आक्रामकता स्थान पर उद्देश्यों और आकांक्षाओं से अधिक निर्देशित होते हैं। उन्होंने व्यक्तित्व का अपना एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसे विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (analytical psychology) कहते हैं।

फ्रायड के अनुयायियों में युंग के बाद दूसरा नाम हॉर्नी का आता है। हॉर्नी आशावादी दृष्टिकोण को मानने वाले थे। उनके अनुसार माता–पिता बच्चे के प्रति यदि उदासीनता, हतोत्साहित करने और अनियमिता का व्यवहार करते हैं तो बच्चे के मन में एक असुरक्षा की भावना विकसित होती है जिसे मूल दुश्चिंता (basic anxiety) कहते हैं। एकाकीपन और असुरक्षा की भावना के कारण बच्चों के स्वास्थ्य के विकास में बाधा होती है।

एडलर (Adler) ने वैयक्तिक मनोविज्ञान (individual psychology) का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके अनुसार व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्योन्मुख व्यवहार करता है। एडलर के अनुसार हर एक व्यक्ति हीनता से ग्रसित होता है। एक अच्छे व्यक्तित्व के विकास के लिए इस हीनता की भावना का समाप्त होना अति आवश्यक है। एरिक्सन (Erikson) ने व्यक्तित्व–विकास में तर्कयुक्त चिन्तन एवं सचेतन अहं पर बल दिया है।

उनके अनुसार विकास एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है और अहं अनन्यता का इस प्रक्रिया में केन्द्रीय स्थान है।

3.3.5 व्यवहारवादी उपागम

यह उपागम उद्दीपक–अनुक्रिया के आपसी तालमेल के आधार पर अधिगम और प्रबलन को महत्व देता है। व्यवहारवादियों के अनुसार पर्यावरण के प्रति व्यक्ति की अनुक्रिया के आधार पर उसके व्यक्तित्व को अचछी तरह से समझा जा सकता है। व्यवहारवार के प्रमुख सिद्धांतो में पावलव द्वारा दिया गया प्राचीन अनुबंधन, स्किनर द्वारा दिया गया नैमित्तिक अनुबंधन और बंडुरा द्वारा दिया गया सामाजिक अधिगम सिद्धांत मुख्य हैं। व्यवहारवार के इन प्रमुख सिद्धांतों का व्यक्तित्व विकास के विश्लेषण में बहुतायत से प्रयोग हुआ है। प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धांतों में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का कोई स्थान नहीं है, जबकि सामाजिक अधिगम सिद्धांत में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है।

3.3.6 मानवतावादी उपागम

मानवतावादी उपागम में रोजर्स (Rogers) और मैस्लो (Maslow) के सिद्धांत प्रमुख हैं। रोजर्स ने आत्म (Self) पर अधिक बल दिया है। जिसमें उन्होंने वास्तविक आत्म (real self) और आदर्श आत्म (ideal self) की चर्चा की है। प्रत्येक व्यक्ति का एक आदर्श आत्म होता है जिसको प्राप्त करने के लिए वह हमेशा तत्पर रहता है। आदर्श आत्म वह आत्म होता है जो कि एक व्यक्ति बनाना चाहता है। जब वास्तविक आत्म और आदर्श आत्म समान होते हैं तो व्यक्ति प्रसन्न रहता है और दोनों प्रकार के आत्म के बीच विसंगति के कारण प्रायः अप्रसन्नता और असंतोष की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में अपनी अन्तःशक्तियों को पहचानने और उसी के अनूरूप व्यवहार करने की विशेष क्षमता होती है। व्यक्तित्व विकास के लिए संतुष्टि एक अभिप्रेरक शक्ति का कार्य करती है। लोग अपनी क्षमताओं और प्रतिभाओं को उत्कृष्ट तरीके से अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

रोजर्स ने शर्तरहित स्वीकारात्मक सम्मान (unconditional positive regard) को अधिक महत्व दिया है। दूसरी तरफ मैस्लो ने व्यक्तिगत वर्धन (personal growth) और आत्म निर्देश (self direction) की क्षमता पर अधिक बल दिया है, और व्यक्तिगत अनुभूतियों को नगण्य माना है। उन्होंने अपने सिद्धांत में आशावदी दृष्टिकोण को महत्व दिया है। जिससे मानव की आन्तरिक अंतःशक्तियों को समझने में काफी सुविधा हुई है। मैस्लो ने आत्मसिद्धि (self-actualisation) की प्राप्ति कों मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ लोगों की विशेषता माना है। आत्मसिद्धि वह अवस्था होती है जिसमें लोग अपनी संपूर्ण क्षमताओं को विकसित कर लेते हैं। मैस्लो के आशावादी और सकारात्मक दृष्टिकोण के अनुसार मानव में प्रेम, हर्ष और सृजनात्मक कार्यों की क्षमता होती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मदर टेरेसा के महान व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण शीलगुण सेवाभाव था उनके इस शीलगुण को किस श्रेणी में रखा जायेगा?
(क) केन्द्रीय शीलगुण
(ख) गौण शीलगुण

(ग) सतही शीलगुण
(घ) स्रोत शीलगुण
2. प्राप्य या सुलभ स्मृति का दूसरा नाम क्या है–
(क) चेतन
(ख) अर्द्धचेतन
(ग) व्यक्तिगत अचेतन
(घ) सामुहिक अचेतन
3. एक भ्रष्ट अधिकारी के विरोध में भाषण देना रक्षा प्रक्रम का उदाहरण है?
(क) यौक्तिकीकरण
(ख) प्रतिक्रिया निर्माण
(ग) प्रतिगमन
(घ) प्रक्षेपण
4. रोजर्स के अनुसार आत्म–संप्रत्यय किसका भाग होता है?
(क) जैविक आत्म
(ख) आत्म सिद्धि
(ग) आदर्श आत्म
(घ) आत्म–पुनर्बलन
5. ....वाले व्यक्ति में प्रतिस्पर्द्धात्मकता तथा उपलब्धि अभिप्रेरक प्रबल होता है।

3.4 व्यतित्व के निर्धारक –

'निर्धारक' शब्द को 'कारक' शब्द से भी निरूपित किया जाता है। व्यक्तित्व के कारकों को दो भागों में विभक्त किया जाता है

1. जैविक कारक (biological factors) और
2. वातावरणीय कारक (environmental factors)

3.4.1 जैविक कारक (Biological factors)

जैविक कारक वस्तुतः वे कारक होते हैं जो व्यक्ति में आनुवंशिक (hereditary) या जन्मजात होते हैं। ऐसे प्रमुख कारकों में प्रथम कारक व्यक्ति की शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य है। प्रायः देखा गया है कि शारीरिक संरचना से संबंधित सभी शीलगुण वंशानुगत होते हैं। जिन बच्चों के माता–पिता लंबे कद के होते हैं उनका कद भी लंबा होता है, और जिन बच्चों के माता–पिता नाटे कद के होते हैं उनका कद भी नाटा होता है। माता पिता के सांवले और गोरे होने पर, उनके बच्चे भी सांवले और गोरे होते हैं। व्यक्ति के इन शारीरिक शीलगुणों तथा स्वास्थ्य का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर भी पड़ता है। जो लोग शारीरिक रूप से स्वस्थ और सुंदर होते है उनमें आत्मविश्वास, सामाजिकता और उत्तरदायित्व का विकास होता है। इसके विपरीत जिन लोगों में इन शीलगुणों की कमी होती है; उनके हीन–भावना से ग्रस्त होने की संभावना बढ जाती है।

बहुत अधिक सक्रिय, निष्क्रिय और अवसाद ग्रस्त होने का कारण हमारी अंतःस्रावी ग्रथियों द्वारा स्रावित हार्मोन होते हैं। अतः सबसे पहले पीयूष गंथि की चर्चा करेंगे। पीयूष ग्रंथि से स्रावित सोमैटोट्रापिन हार्मोन मुख्य है, जिसे विकास हार्मोन भी कहते हैं। बचपन में इस हार्मोन की कमी के कारण व्यक्ति नाटे कद का हो जाता है और अधिक स्राव होने पर व्यक्ति लंबे कद का हो जाता है। पीयूष ग्रंथि से स्रावित कुछ हार्मोन दूसरी अंतःस्रावी

ग्रंथियों से स्रावित होने वाले हार्मोनो के स्राव पर नियन्त्रण रखते हैं जिसके कारण पीयूष ग्रंथि को 'मास्टर ग्रंथि' भी कहा जाता है। एड्रीनल ग्रंथि से स्रावित कुछ हार्मोनो द्वारा कार्बोहाइड्रेट, लवणों तथा चयापचयी क्रियाओं का नियन्त्रण होता है। इसके सही प्रकार से कार्य न करने की स्थिति में व्यक्ति मे निष्क्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल ग्रंथि से ही स्रावित एड्रीनलीन हार्मोन द्वारा सांवेगिक स्थिति पर नियन्त्रण होता है और नारएड्रीनलीन हार्मोन आपात स्थिति से समान्य अवस्था में लाने का कार्य करता है।

थायराइड ग्रंथि से निकलने वाला थायराक्सीन नामक हार्मोन शरीर की चयापचयी क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। यह शरीर के विकास को प्रभावित करता है। इसका स्राव अधिक होने पर व्यक्ति चिड़चिड़ा एवं चिन्तित हो जाता है, और शरीर का वजन भी धीरे–धीरे कम हो जाता है। पैराथायराइड ग्रंथि से पैराथार्मोन नामक हार्मोन स्रावित होता है, जो खून मे कैल्सियम और फास्फेट की मात्रा का नियन्त्रण करता है। कैल्सियम और फास्फेट की उचित मात्रा होने पर उत्तेजनशीलता बनी रहती है और कम होने पर व्यक्ति शिथिल पड़ जाता है।

पैंक्रियाज ग्रंथि से इंसुलिन नामक हार्मोन स्रावित होता है। इसके द्वारा रक्त मे शर्करा की मात्रा नियंत्रित होती है। उचित मात्रा मे इंसुलिन के स्रावित होने पर रक्त मे उपस्थित शर्करा आक्सीकृत होती रहती है और शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती रहती है। कम होने पर मधुमेह रोग हो जाता है। यौन ग्रंथियों को महिलाओं को डिम्ब ग्रंथि और पुरूषों में अंडग्रंथि कहते हैं। डिम्ब ग्रंथि से प्रोजेस्ट्रान नामक हार्मोन तथ अंडग्रंथि से टेस्टोस्टीरोन नामक हार्मोन स्रावित होता है। खून में प्रोजेस्ट्रान की मात्रा अधिक होने पर महिलाओं में गौण यौन गुण (आवाज का पतला होना, इत्यादि) विकसित होते हैं, साथ ही साथ गर्भाशय ठीक ढंग से काम करने से भ्रूण का विकास अच्छी प्रकार से होता है और पुरूषों में इसके कारण प्राथमिक और द्वितीयक यौन गुण विकसित होते हैं।

3.4.2 वातावरणीय कारक (Environmental factors)

व्यक्तित्व विकास सिर्फ जैविक कारकों से ही नहीं प्रभावित होता है, बल्कि वातावरण से संबंधित कारक भी व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं। वातावरणीय कारको को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक।

व्यक्ति एक सामाजिक वातावरण मे निवास करता है। सामाजिक कारकों में माता–पिता, संगी–साथी इत्याइि प्रमुख हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है जरूरत से अधिक लाड़–प्यार देने पर बच्चे मे असुरक्षा की भावना का विकास हो जाता है वहीं समय की कमी के कारण उचित प्यार भी अपने बच्चों को नहीं दे पाते हैं। अधिक सख्ती से पेश आने पर बच्चे में अधीनस्थता का गुण विकसित हो जाता है, उचित प्यार न मिल पाने के कारण बच्चे सांवेगिक रूप से अस्थिर हो जाते हैं। परिवार के सदस्यों का आपसी संबंध अच्छा होने पर बच्चे भी अपने बड़ों की भांति स्वयं को ढाल लेते हैं। जिसके फलस्वरूप उनमें आत्मविश्सास, विश्वसनीयता और श्रेष्ठता की भावना विकसित हो जाती है। दूसरी तरफ वे परिवार जो झगड़ालू होते हैं उनमें पलने वाले बच्चों मे हीन भावना, सांवेगिक अस्थिरता और अन्तर्मुखता के गुण पाये जाते हैं। जन्मक्रम का भी व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है।

एडलर ने जन्मक्रम को चार भागों (प्रथम जन्मक्रम, द्वितीय जन्मक्रम, अन्तिम जन्मक्रम और इकलौता बच्चा) मे विभक्त किया है। एडलर ने अपने अध्ययनों के आधार पर

बताया कि प्रथम जन्मक्रम वाले बच्चे एकान्तप्रिय होते हैं, अन्तिम जन्मक्रम वाले बच्चों में हीनता का भाव देखा गया है और इकलौते बच्चे में दूसरे पर निर्भता तथा आत्मकेन्द्रीता के शीलगुण विकसित हो जाते हैं। मध्यक्रम वाले बच्चों में आत्म.–विश्वास तथा अहं–शक्ति अधिक होती है। स्कूल के वातावरण का भी प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। स्कूल के प्रभाव में शीलगुण का विकास और आत्म–निर्भरता इसके दो पहलू हैं। जिसमें सांवेगिक वातावरण, शिक्षकों का अनुशासन, शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। यदि शिक्षक खुद ही कुसमायोजित व्यक्तित्व के होते हैं तो उनके छात्रों में असुरक्षा की भावना विकसित हो जाती है। विकास के क्रम व्यक्तित्व पर पास पड़ोस का भी प्रभाव पड़ता है। यदि पास पड़ोस के लोग पढ़े लिखे होते हैं तो इससे बच्चों में अच्छे शीलगुणों (अनुशासन, समझदारी, आत्म सम्मान इत्यादि) का विकास होता है।

व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। हर समाज की एक संस्कृति होती है, जिसमें उसके विभिन्न रीति–रिवाज, परम्परायें, रहन सहन इत्यादि आते हैं। इस संस्कृति का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर अवश्य पड़ता है। इसके साथ–साथ आर्थिक कारकों (जैसे, निर्धनता इत्यादि) का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने की स्थिति में व्यक्तित्व के विकास तथा शीलगुणों के निर्माण पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। गरीब परिवार के बच्चों में हीनता की भावना, सांवेगिक अस्थिरता, शर्मीलापन इत्यादि कमियां पायी जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैविक कारकों तथा वातावरणीय कारकों का वर्णन तो हमने अलग–अलग किया है परन्तु वास्तविकता यह है कि व्यक्तित्व के विकास में जैविक कारकों तथा वातावरणीय कारकों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है, जो दोनो की अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

3.5 व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सोपानों की व्यवहारगत समस्यायें

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व विकास के अलग–अलग सोपान बताये हैं। इन मनोवैज्ञानिकों में फ्रायड, नवफ्रायडवादी मुख्य हैं। नवफ्रायडवादियों मे युंग तथा एडलर का नाम प्रमुख है। फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सोपान तथा उनकी व्यवहारगत समस्याओं का वर्णन आगे दिया जा रहा है। फ्रायड ने मनोलैंगिक विकास की पाँच (मुखावस्था, गुदावस्था, लंग प्रधानावस्था, अव्यक्तावस्था और जननेद्रियावस्था) अवस्थायें बतायी हैं।

मुखावस्था में अच्छा स्नेह मिलने और न मिलने के आधार पर फ्रायड ने व्यक्तित्व का दो भागों (मुखवर्ती–निष्क्रिय व्यक्तित्व और अनुवर्ती–निष्क्रिय व्यक्तित्व) में विभक्त किया है। मुखवर्ती–निष्क्रिय व्यक्तित्व वाले व्यक्ति आशावादी तथा दूसरों पर विश्वास करने वाले होते हैं और दूसरी तरफ इसके विपरीत अनुवर्ती–आक्रामक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति दूसरों पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित करते हैं और उनका शोषण करते हैं। गुदावस्था अच्छा स्नेह मिलने और न मिलने के आधार पर ने व्यक्तित्व का दो भागों (गुदा–आक्रामक व्यक्तित्व और गुदा–धारणात्मक व्यक्तित्व) में विभक्त किया है। गुदा–आक्रामक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में क्रूरता, विद्वेष, विनाशिता आदि गुण पाये जाते हैं और गुदा–धारणात्मक व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में हठ, कंजूसी, समयनिष्ठता पायी जाती है।

लिंग प्रधानावस्था में आबद्धता होने पर लड़कों में उच्चकांक्षा, उतावलापन इत्यादि तथा लड़कियों में सम्मोहकता, स्वच्छन्द संभोगिता का गुण पाया जाता है। अन्त में

जननेन्द्रियावस्था में फ्रायड ने बताया है कि प्रारम्भ में तो बच्चों में समलिंगी लोगों के प्रति आकषर्ण होता है, परन्तु बाद में वयस्क के रूप में विकसित होने पर विषमलिंगी लोगों के प्रति आकर्षण विकसित हो जाता है।

युंग ने व्यक्तित्व विकास की चार (बाल्यावस्था, यौवनास्था, मध्यावस्था और वृद्धावस्था) अवस्थायें बतायी हैं। जिसका प्रयोग हम आजकल की बोलचाल की भाषा में करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि बच्चे की उचित देखभाल न की जाय तो उसमें विभिन्न प्रकार की समस्याओं के विकसित होने की संभावना बनी रहती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बच्चों को उनके माता–पिता द्वारा उचित स्नेह, सहयोग दिया जाय, जिससे कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके और वे अपने आप का समाज में भली–भांति स्थापित कर सकें।

3.6 व्यक्तित्व का मापन

हम अक्सर ही नित नए लोगों से मिलते रहते हैं और उनको समझने का प्रयास भी करते हैं। इसके साथ–साथ ही उनसे अंतःक्रिया करने के पहले ही हम ये भविष्य कथन भी करते हैं कि वे क्या कर सकते हैं। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने पूर्वानुभवों, प्रेक्षणों, वार्तालापों और दूसरे लोगों से प्राप्त सूचनाओं पर विश्वास करते हैं। मनोविज्ञान में भी इसके लिए कुछ विधियां बतायी गयी हैं।

सामान्यतः सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली तकनीकों में मनोमितिक परीक्षण (psychometric tests), आत्म–प्रतिवेदन माप (self-report measures), प्रक्षेपी तकनीकें (projective techniques) और व्यवहारपरक विश्लेषण (behavioural analysis) आते हैं।

आत्म प्रतिवेदन के द्वारा विभन्न पूर्वनिर्मित मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे जानकरी प्राप्त की जाती है। जिससे किसी के भी व्यक्तित्व का आकलन किया जा सकता है। जैसे– मिनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेट्री (एम0एम0पी0आई0)

प्रयोगात्मक स्थितियों में भी लोग प्रायः आत्मचेतन का अनुभव करते हैं और अपनी निजी या अंतरंग भावनाओं, विचारों और अभिप्रेरणाओं को व्यक्त करने में हिचकिचाते हैं। ऐसा जब भी करते हैं वे प्रायः सामाजिक दृष्टि से वांछनीय तरीके के अनुरूप व्यवहार करने का प्रयास करते हैं। इसके लिए सबसे उपयुक्त वातारण प्रक्षेपी तकनीकों के माध्यम से तैयार हुआ, जिसका प्रयोग करके, यदि कोई व्यक्ति सामाजिक हिचकिचाहट के कारण कोई बात व्यक्त नहीं कर पाता है तो इस प्रक्षेपी वातावरण में व्यक्त कर सकता है। इसमें दो प्रमुख परीक्षण रोसौ द्वारा विकसित रोर्सा स्याही धब्बा परीक्षण और मैस्लो द्वारा विकसित थीमैटिक एपरसेप्सन टेस्ट (टी0ए0टी0) मुख्य हैं। कुछ प्रक्षेपी परीक्षणों में वाक्यपूर्ति द्वारा भी अनुक्रिया प्राप्त की जाती है।

3.7 सार संक्षेप

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तित्व एक गत्यात्मक संरचना है जिसकी व्याख्या अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने अपने मत के अनुसार अलग–अलग तरीके से की है। इन्होंने व्यक्तित्व की अलग–अलग संरचनायें और व्यक्तित्व विकास अवस्थायें भी बतायी हैं।

अच्छी प्रकार से पालन–पोषण नहीं होने पर कई विकृतियां भी उत्पन्न हो सकती हैं। व्यक्तित्व का मापन करने की कई विधियां भी बतायी गयी हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तित्व को परिभाषित करें तथा इसके स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
3. व्यक्तित्व के पर्यावरणीय निर्धारकों का वर्णन कीजिए।
4. व्यक्तित्व के मापक के रूप में प्रक्षेपण विधियों का वर्णन कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए–
   (क) आत्म प्रतिवेदन आविष्कारिका
   (ख) प्रक्षेपण विधि
6. फ्रॉयड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषणात्म सिद्धान्त की आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
7. व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

व्यक्तित्व– व्यक्तित्व हर एक व्यक्ति का एक बिल्कुल ही अलग चिन्तन करने, व्यवहार करने एव अनुभव करने का तरीका होता है।

स्थूलकाय प्रकार– स्थूलकाय प्रकार (छोटा कद,भारी एवं गोलाकार, गर्दन छोटी एवं मोटी) के व्यक्ति सामाजिक एवं खुषमिजाज होते हैं।

कृष्काय प्रकार– कृष्काय प्रकार (लम्बा कद एवं दुबला पतला शरीर) के व्यक्ति चिड़चिड़े, सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रहने वाले और दिवास्वप्न देखने वाले होते हैं।

पुष्टकाय प्रकार– पुष्टकाय प्रकार(सामान्य कद, शरीर सुडौल एवं संतुलित) के व्यक्ति न ही अधिक चंचल और न ही अधिक अवसादग्रस्त रहते हैं।

गोलाकृतिक प्ररूप– गोलाकृतिक प्ररूप वाले व्यक्ति मोटे, मृदुल और गोल होते हैं। स्वभाव से वे लोग शिथिल और सामाजिक होते हैं।

आयताकृतिक प्ररूप– आयताकृतिक प्ररूप वाले लोग स्वस्थ एवं सुगठित शरीर वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति ऊर्जस्वी एवं साहसी होते हैं।

लंबाकृतिक प्ररूप– लंबाकृतिक प्ररूप वाले दुबले–पतले, लंबे कद वाले और सुकुमार होते हैं।

बहिर्मुखी– बहिर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो सामाजिक तथा बहिर्गामी होते हैं। लोगों के साथ में रहते हुए तथा सामाजिक कार्यों को करते हुए वे दबावों का सामना करते हैं।

अंतर्मुखी– अंतर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो एकांतप्रिय होते हैं, दूसरों से दूर रहते हैं, और संकोची होते हैं।

प्रमुख शीलगुण– प्रमुख शीलगुण सामान्य प्रवृत्तियाँ होती हैं।

चेतन– चेतन में वे चिंतन, भावनाएँ और क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकरी लोगों को रहती है। **पूर्वचेतना–** पूर्वचेतना में वे मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को तभी होती है जब वे उन पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

अचेतन– अचेतन में ऐसी मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को नहीं होती है।

दमन– दमन में दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले व्यवहारों और विचारों को पूरी तरह चेतना के स्तर से विलुप्त कर देते हैं।

आदर्श आत्म– आदर्श आत्म वह आत्म होता है जो कि एक व्यक्ति बनना चाहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Baron, R. A. (2006). *Psychology* (5th Ed.). New Delhi: Pearson Education.
2. Ciccarelli, S. K., & Meyer, G. E. (2009). *Psychology*. Delhi: Pearson Education.
3. Coon, D., & Mitterer, J. O. (2007). *Introduction to Psychology: Gateway to mind and behaviour*. New Delhi: Cengage.
4. Friedman, H.S. & Schustack, M.W. (2003). *Personality: Classic theory and modern research* (2nd ed.) Singapore: Pearson Education.
5. Gerrig, R. J., & Zimbardo, P. G. (2006). *Psychology and Life* (17th Ed.). New Delhi: Pearson Education.
6. Hall, G.C., Lindzey, G., & Campbell, J.C. (1998). *Theories of personality*, (4th ed.). New York: Wiley.
7. Hjelle, L.A. & Zeigler, D.J. (1991). *Personality the ories: Basic assumptions, research and applications*. (2nd ed.) New York: McGraw Hill.
8. Morgan, C. T., King, R. A., Weisz, J. R., & Schopler, J. (1986). Introduction to psychology (7th Ed.) Bombay: Tata-McGraw Hill.
9. Zimbardo, P.G., & Weber, A. L. (1997). Psychology. New York: Harper Collins College Publisher.
10. Singh, A. K. (2009). *Uchachtar Samanya Manovigyan*. Varanasi: Motilal Banarasi Das.
11. Srivastava, R. (2008). Vyaktitava Manovigyan. Varanasi: Motilal Banarasi Das.

इकाई–4

मन का प्रत्यय एवं मनोविज्ञान
Concept of Mann and Psychology

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 परिचय
4.3 मन का तात्पर्य
4.4 मन की अवस्थाएँ
4.5 मन के आकारात्मक पक्ष
4.5.1 चेतन मन
4.5.2 अर्द्धचेतन मन
4.5.3 अचेतन मन
4.5.4 चेतन, अचेतन और अर्द्धचेतन का तुलनात्मक अध्ययन
4.6 मन के गत्यात्मक पक्ष
4.6.1 उपाहं
4.6.2 इदंम्
4.6.3 नैतिक मन
4.6.4 उपाहं, अहम, नैतिक मन में सम्बन्ध
4.7 सार संक्षेप
4.8 अभ्यास प्रश्न
4.9 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मन शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मन की अवस्थाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मन के आकारात्मक पक्ष–चेतन, अर्द्धचेतन व अचेतन के बारे में जान सकेंगे।
- मन के गत्यात्मक पक्ष– उपाहं, इद्ं, नैतिक मन के बारे में जान सकेंगे।
- उपाहं, इदमं व नैतिक के कार्य के विषय में जान सकेंगे।
- उपाहं, इदमं व नैतिक मन के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे।

4.1 परिचय

मन शब्द से हम सभी परिचित हैं। प्रायः इस शब्द का प्रयोग हम करते देखे जाते हैं। इस इकाई में हम इस शब्द के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। मन शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। जैसे– मानस, चित्त, मनोभाव तथा मत इत्यादि। लेकिन मनोविज्ञान में मन का तात्पर्य आत्मन्, स्व या व्यक्तित्व से है। यह एक अमूर्त सम्प्रत्यय है।

जिसे केवल महसूस किया जा सकता है। इसे न तो हम देख सकते हैं और न ही हम इसका स्पर्श कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में मस्तिष्क के विभिन्न अंगों की प्रक्रिया का नाम मन है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के अनुसार मन का सिद्धान्त एक प्रकार का परिकल्पनात्मक सिद्धान्त है।

फ्रायड के अनुसार– ''मन से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन कारकों से होता है जिसे हम अन्तरात्मा कहते हैं तथा जो हमारे व्यक्तित्व में संगठन पैदा करके हमारे व्यवहारों को वातावरण के साथ समायोजन करने में मदद करता है।''

4.3 मन का तात्पर्य

रेबर के अनुसार– ''मन का तात्पर्य परिकल्पिक मानसिक प्रक्रियाओं एवं क्रियाओं की सम्पूर्णता से है, जो मनोवैज्ञानिक प्रदत्त व्याख्यात्मक साधनों के रूप में काम कर सकती है। अतः मन की हम मात्र कल्पना कर सकते हैं। इसको न तो किसी ने देखा है और न ही हम इसकी कल्पना कर सकते हैं।''

4.4 मन की अवस्थाएँ

मन की अवस्थाओं से तात्पर्य इसके विभिन्न पहलुओं से है। मन आत्मा या व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं– जिन्हें आकारात्मक पक्ष और गत्यात्मक पक्ष कहते हैं–मन के आकारात्मक पक्ष से तात्पर्य जहाँ संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है मन का यह पहलू वास्तव में व्यक्तित्व के गत्यात्मक शक्तियों के बीच होने वाले संघर्षों का एक कार्यस्थल होता है।

मन के गत्यात्मक पक्ष से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा मूल–प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। यहाँ हम सबसे पहले मन के आकारात्मक पक्ष के बारे में समझेंगे।

4.5 मन के आकारात्मक पक्ष

आकारात्मक पक्ष का अध्ययन हम तीन भागों में बाँट कर करेंगे।

4.5.1 चेतन मन

मन का वह भाग जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से होता है, या जिसका सम्बन्ध वर्तमान से होता है। जैसे– कोई व्यक्ति लिख रहा है तो लिखने की चेतना है, पढ़ रहा है तो पढ़ने की चेतना है। व्यक्ति जिन शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के प्रति जागरूक रहता है वह चेतन स्तर पर घटित होती है। इस स्तर पर घटित होने वाली सभी क्रियाओं की जानकारी व्यक्ति को रहती है। यद्यपि चेतना में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु इसमें निरन्तरता होती है अर्थात् यह कभी खत्म नहीं होती है।

4.5.1.1 चेतन मन की विशेषताएँ

- यह मन का सबसे छोटा भाग है।
- चेतन मन का वाह्य जगत की वास्तविकता के साथ सीधा सम्बन्ध होता है।
- चेतन मन व्यक्तिगत, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों से भरा होता है।
- यह अचेतन और अर्द्धचेतन पर प्रतिबन्ध का कार्य करता है।
- चेतन मन में वर्तमान विचारों एवं घटनाओं के जीवित स्मृति चिह्न होते हैं।

4.5.2 अर्द्ध चेतन मन

अर्द्धचेतन का तात्पर्य वैसे मानसिक स्तर से होता है। जो वास्तव में में न तो पूरी तरह से चेतन हैं और ही पूरी तरह से अचेतन। इसमें वैसी इच्छाएँ, विचार, भाव आदि होते हैं। जो हमारे वर्तमान चेतन या अनुभव में नहीं होते हैं परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाती है। अर्थात् यह मन का वह भाग है, जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय सामग्री से है जिसे व्यक्ति इच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है। इसमें कभी–कभी व्यक्ति को किसी चीज को याद करने के लिए थोड़ा प्रयास भी करना पड़ता है। जैसे– अलमारी में रखी किताबों में से जब किसी किताब को ढूँढते हैं और कुछ समय के बाद किताब न मिलने पर परेशान हो जाते हैं। फिर कुछ सोचने पर याद आता है कि वह किताब हमने अपने मित्र को दी थी। अर्थात् अर्द्धचेतन मन चेतन व अचेतन के बीच पुल का काम करता है।

4.5.2.1 अर्द्ध चेतन मन की विशेषताएँ

- मन का वह भाग जो चेतन से बड़ा व अचेतन से छोटा होता है।
- अचेतन से चेतन में जाने वाले विचार या भाव अर्द्धचेतन से होकर गुजरते हैं।
- अर्द्धचेतन में किसी चीज को याद करने के लिए कभी–कभी थोड़ा प्रयास करना पड़ता है।

4.5.3 अचेतन मन

हमारे कुछ अनुभव इस तरह के होते हैं जो न तो हमारी चेतना में होते हैं और न ही अर्द्धचेतना में। ऐसे अनुभव अचेतन होते हैं। अर्थात् यह मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय वस्तु से होता है जिसे व्यक्ति इच्छानुसार याद करके चेतना में लाना चाहे, तो भी नहीं ला सकता है।

अचेतन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वरूप कामुक, असामाजिक, अनैतिक तथा घृणित होता है। ऐसी इच्छाओं को दिन–प्रतिदिन के जीवन में पूरा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः इन इच्छाओं को चेतना से हटाकर अचेतन में दबा दिया जाता है और वहाँ पर ऐसी इच्छाएँ समाप्त नहीं होती हैं बल्कि समय–समय पर ये इच्छाएँ चेतन स्तर पर आने का प्रयास करती रहती हैं।

फ्रायड ने इस सिद्धान्त की तुलना आइसबर्ग से की है। जिसका 9/10 भाग पानी के अन्दर और 1/10 भाग पानी के बाहर रहता है। पानी के अन्दर वाला भाग अचेतन तथा पानी के बाहर वाला भाग चेतन होता है तथा जो भाग पानी के ऊपरी सतह से स्पर्श करता हुआ होता है वह अर्द्धचेतन कहलाता है।

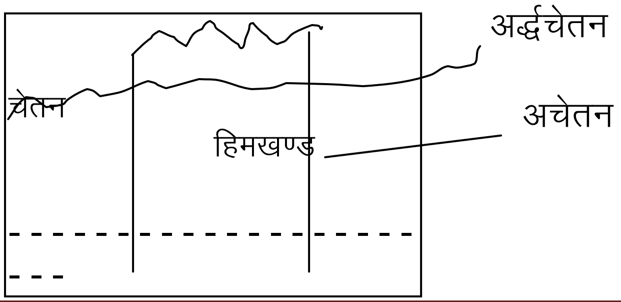

4.5.3.1 अचेतन मन की विशेषताएँ

- अचेतन मन अर्द्धचेतन व चेतन से बड़ा होता है।
- अचेतन में कामुक, अनैतिक, असामाजिक इच्छाओं की प्रधानता होती है।
- अचेतन का स्वरूप गत्यात्मक होता है। अर्थात् अचेतन मन में जाने पर इच्छाएँ समाप्त नहीं होती है। बल्कि सक्रिय होकर ये चेतन में लौट आना चाहती हैं। परन्तु चेतन मन के रोक के कारण ये चेतन में नहीं आ पाती है और रूप बदलकर स्वप्न व दैनिक जीवन की छोटी–मोटी गलतियों के रूप में व्यक्त होती है और जो अचेतन के रूप को गत्यात्मक बना देती है।
- अचेतन के बारे में व्यक्ति पूरी तरह से अनभिज्ञ रहता है क्योंकि अचेतन का सम्बन्ध वास्तविकता से नहीं होता है।
- अचेतन मन का छिपा हुआ भाग होता है। यह एक बिजली के प्रवाह की भाँति होता है। जिसे सीधे देखा नहीं जा सकता है परन्तु इसके प्रभावों के आधार पर इसको समझा जा सकता है।

स्पष्ट है कि अचेतन अनुभूतियों एवं विचारों का प्रभाव हमारे व्यवहार पर चेतन, अर्द्धचेतन अनुभूतियों एवं विचारों से अधिक होता है। इसी कारण चेतन व अर्द्धचेतन का आकार चेतन की अपेक्षा बड़ा होता है।

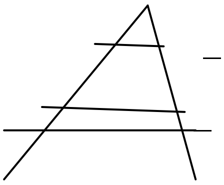

चेतन, अर्द्धचेतन व अचेतन का आकारीय चित्र

4.5.4 चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन का तुलनात्मक अध्ययन

- चेतन मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से होता है। अर्द्धचेतन मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय–सामग्री से होता है, जिसे व्यक्ति इच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है।
- चेतन मन का आकार छोटा अर्द्धचेतन मन का आकार उससे बड़ा और अचेतन मन का आकार सबसे बड़ा होता है।
- चेतन मन में केवल वर्तमान अनुभव की स्मृतियाँ रहती हैं परन्तु अचेतन का सम्बन्ध पिछले अनुभव से होता है और अर्द्धचेतन में ऐसे अनुभव से होता है जो पिछली अनुभूतियाँ (अनुभव) तो होती हैं परन्तु आवश्यकता पड़ने पर हम उनका प्रत्यावहन कर सकते हैं।
- चेतन मन का विषय व्यक्त एवं स्पष्ट होता है। अचेतन मन में विषय पूरी तरह से दमित होते हैं और अर्द्धचेतन मन में विषय आंशिक रूप से दमित होते हैं।

4.6 मन के गत्यात्मक पहलू

मन के गत्यात्मक पक्ष से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। मूल प्रवृत्तियों से तात्पर्य वैसे जन्मजात और शारीरिक उत्तेजन से होता है जिसके द्वारा व्यक्ति के सभी तरह के व्यवहार निर्धारित किये जाते हैं। मूल प्रवृत्तियाँ दो तरह की होती हैं–

- जीवन मूल प्रवृत्ति
- मृत्यु मूल प्रवृत्ति

जीवन मूल प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के रचनात्मक कार्य करता है और मृत्यु मूल्य प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के विध्वंसात्मक कार्य करता है। सामान्य व्यक्तित्व में इन दोनों तरह की मूल प्रवृत्तियों में सन्तुलन पाया जाता है और जब इन परस्पर विरोधी मूल प्रवृत्तियों में संघर्ष होता है तो व्यक्ति उनका समाधान करने की कोशिश करता है। इस तरह के समाधान के लिए मुख्य रूप से तीन प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है– उपाहं, अहम्, नैतिक मन।

4.6.1 उपाहं से तात्पर्य

जन्म के समय शरीर की संरचना में जो कुछ भी निहित होता है वह पूर्णतः उपाहं होता है। अर्थात् जन्मजात और वंशानुगत है। तात्कालिक सन्तुष्टि की इच्छाएँ और विचार ही उपाहं की प्रमुख विषय सामग्री है। वातावरण की वास्तविकता से उपाहं का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। इसका नैतिक, तार्किकता, समय, स्थान और मूल्यों आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

4.6.1.1 उपाहं के कार्य

इसका मुख्य कार्य शारीरिक इच्छाओं की सन्तुष्टि से है। यह किसी भी प्रकार के तनाव से तुरन्त छुटकारा पाना चाहता है। तुरन्त तनाव को दूर करना ही सुखवाद नियम कहा गया है। दूसरे शब्दों में उपाहं अपने उद्देश्यों की पूर्ति सुखवाद नियम के आधार पर करता है। सुख की प्राप्ति और दुःख को दूर करने के लिए उपाहं के दो मुख्य कार्य हैं–

- **सहज क्रियाएँ–** ये जन्मजात और स्वयं चलने वाली होती है। जैसे पलक झपकना, छींकना आदि। सभी व्यक्ति इन क्रियाओं को करने के बाद संतोष का अनुभव करते हैं।
- **प्राथमिक क्रियाएँ–** तनाव को दूर करने के लिए प्राथमिक क्रियाएँ व्यक्ति के सामने उस वस्तु की प्रतिभा बनाती है। जैसे– एक प्यासे व्यक्ति के सामने पानी की प्रतिमा प्रस्तुत कर उसकी प्यास की सन्तुष्टि करना। यहाँ पानी की प्रतिमा उपस्थित करना एक प्राथमिक प्रक्रिया का कार्य है।

4.6.2 अहम् से तात्पर्य

यह मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा भाग है। यह जन्म के समय बच्चे में मौजूद नहीं होता है बल्कि बाद में विकसित होता है। बालक की आयु बढ़ने के साथ–साथ वह वातावरण की वास्तविकता की ओर बढ़ने लगता है। आयु बढ़ने के साथ–साथ वह 'मेरा' और 'मुझे' जैसे शब्दों का अर्थ समझने लगता है। धीरे–धीरे वह समझने लगता है कि कौन सी वस्तु उसकी है और कौन सी वस्तु दूसरों की। यह उपाहं का एक मुख्य भाग है। जो वाह्य वातावरण के प्रभाव के कारण विकसित होता है।

4.6.2.1 अहम् के कार्य

अहमं् का मुख्य कार्य वाह्य वातावरण के खतरों से जीवन की रक्षा करना है। यह अपने लक्ष्य को वास्तविकता के नियम के आधार पर पूरा करता है। यह सुखवादी नियम का विरोधी नहीं है बल्कि उपयुक्त परिस्थिति के आते ही तात्कालिक सन्तुष्टि में सहायता करता है क्योंकि यह व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष है। अतः तुरन्त सन्तुष्टि के लिए उपयुक्त परिस्थिति को खोजने या उत्पन्न करने का कार्य भी करता है। अहमं् को व्यक्तित्व का निर्णय लेने वाला माना गया है। यह थोड़ा चेतन, थोड़ा अर्द्धचेतन और थोड़ा अचेतन होता है। इसके द्वारा इन तीनों स्तरों पर निर्णय लिया जाता है।

4.6.3 नैतिक मन से तात्पर्य

यह मन के गत्यात्मक पक्ष का सबसे अन्तिम भाग है और यह व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, वह अपना तादात्म्य माता–पिता के साथ स्थापित करने लगता है और बच्चा यह सीख लेता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, क्या नैतिक है और क्या अनैतिक। इस तरह सीखने से नैतिक मन की शुरूआत होती है। यह आदर्शवादी सिद्धान्त द्वारा निर्देशित और नियंत्रित होता है। बचपन में सामाजीकरण के दौरान बच्चा, माता–पिता द्वारा दिये गये उपदेशों को अपने अहमं् में संजोए रखता है और यही बाद में नैतिक मन का रूप ले लेता है। यहाँ विकसित होकर एक ओर उपाहं की कामुक, आक्रामक एवं अनैतिक प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है तो दूसरी ओर अहं को वास्तविक एवं यथार्थ लक्ष्यों से हटाकर नैतिक लक्ष्यों की ओर ले जाता है। नैतिक मन व्यक्ति के कामुक एवं आक्रामक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण दमन के माध्यम से करता है। जबकि नैतिक मन दमन का प्रयोग स्वयं नहीं करता है बल्कि वह अहमं् को दमन के प्रयोग का आदेश देकर ऐसी इच्छाओं पर नियंत्रण करता है और यदि अहमं् इस आदेश का पालन नहीं करता है तो व्यक्ति में अनेक दोष–भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

4.6.3.1 नैतिक मन के कार्य

यह सामाजिकता तथा नैतिकता का कार्य करता है। यह अहमं् के उन सभी कार्यो पर रोक लगाता है जो सामाजिक और नैतिक नहीं है। नैतिक मन का अहमं् के प्रति कार्य और व्यवहार वैसा ही होता है जैसा एक बच्चे के प्रति माता–पिता का व्यवहार होता है। अतः नैतिक मन के मुख्य कार्य हैं–

- उपाहं के अनैतिक, असामाजिक और कामुक संवेगों पर रोक लगाना।
- अहमं के आवेगों को नैतिक और सामाजिक लक्ष्यों की ओर ले जाने की कोशिश करना।
- पूर्ण सामाजिक और आदर्श प्राणी बनाने के लिए प्राणी बनाने के लिए प्रयास करना।

4.6.4 उपाहं, अहमं् और नैतिक मन में सम्बन्ध

उपाहं, अहमं् और नैतिक मन तीनों का ही सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व से है और ये तीनों इकाइयाँ गतिशील हैं। उपाहं आनन्द (सुख) सिद्धान्त, अहमं् वास्तविकता सिद्धान्त और नैतिक मन आदर्शवादी सिद्धान्त से नियंत्रित होता है। सामान्य व्यक्तित्व में इन तीनों ही अंगों में पर्याप्त मात्रा में मेल पाया जाता है। इन तीनों इकाइयों में जितनी ही खींचातानी होती है, व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना ही अधिक असामाजिक हो जाता है और उसके व्यक्तित्व का विघटन उतना ही अधिक होता है। जबकि सामान्य व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है कि इन तीनों में आपस में समायोजन बना रहे। जब इन तीनों में कोई एक या

दो इकाई अधिक प्रभावशील हो जाती है तो इनमें आपस में समायोजन बिगड़ जाता है। अहम् व्यक्तित्व का केन्द्र होता है। यह उपाहं, नैतिक मन और वातावरण की वास्तविकताओं के बीच समायोजन बनाकर व्यवहार करता है। इसे हम निम्न तरह से समझ सकते हैं–

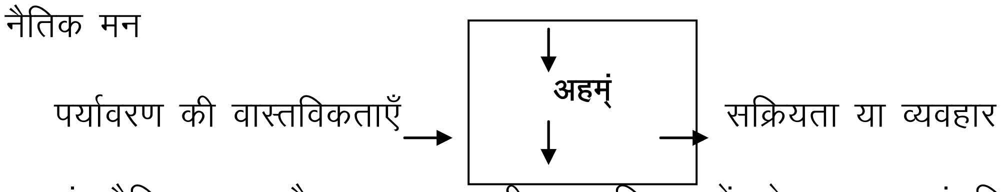

उपाहं, नैतिक मन और वातावरण की वास्तविकताओं के मध्य अहम् जितना ही अधिक समायोजन करने में सक्षम होगा, व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना अधिक स्थायी होगा। उपाहं और नैतिक मन को हम इस उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं– एक सुनसान सड़क पर एक युवती को देखकर युवक के मन में विचार आता है कि मैं इसे छेड़ू। इस प्रकार का विचार उपाहं है। फिर उसके मन में विचार आता है कि यहाँ छेड़ना ठीक नहीं है। यहाँ किसी ने देख लिया तो पिटाई हो जायेगी, थोड़ी दूर आगे जहाँ इसे कोई नहीं देखेगा वहाँ छेड़ना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार का विचार अहम् है। फिर उस युवक के मन में विचार आता है कि नहीं? इसे छेड़ना अच्छी बात नहीं है। यह युवती किसी की बेटी होगी या किसी की बहन होगी। समाज में इस तरह का व्यवहार अच्छा नहीं माना जाता है। इस प्रकार का विचार नैतिक मन है।

जब व्यक्ति में उपाहं की इच्छा तीव्र होती है तो व्यक्ति सुखवादी, स्वार्थी और अनियंत्रित होता है और जब व्यक्ति में अहम् की इच्छा प्रबल होती है तो उसमें मैं की अधिकता होती है। जिस व्यक्ति में नैतिक मन तीव्र होता है वह व्यक्ति आदर्शवादी होता है। उसमें भले–बुरे का विचार अधिक होता है।

4.6.4.1 उपाहं, अहम् और नैतिक मन के बीच समानताएँ एवं विभिन्नताएँ

फ्रायड के अनुसार एक स्वस्थ–सामान्य व्यक्ति में तीनों ही काफी समन्वित ढंग से कार्य करते हैं तथा इसमें किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होता है। इन तीनों में कुछ समानताएँ और भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं जो इस प्रकार हैं–

समानताएँ

- उपाहं, अहम्, नैतिक मन तीनों ही मन के गत्यात्मक पहलू के काल्पनिक भाग हैं जिन्हें अन्य वस्तुओं की भाँति दिखाया नहीं जा सकता है।
- किसी भी मानसिक संघर्ष में तीनों शामिल रहते हैं। अन्तर सिर्फ मात्रा का होता है।

विभिन्नताएँ

- उपाहं बच्चों में जन्म से ही मौजूद रहता है। एक वर्ष के बाद बच्चों में अहं का विकास होता है और जब बच्चा तीन–चार वर्ष का हो जाता है तब वह अपने माता–पिता के साथ सम्बन्ध (तादात्म्य) स्थापित कर लेता है तथा उनके द्वारा कही गयी बातों को ग्रहण करने लगता है। फलतः बच्चे में नैतिक मन का विकास होने लगता है।

- उपाहं आनन्द सिद्धान्त (सुखवादी), अहम् वास्तविकता सिद्धान्त तथा नैतिक मन आदर्शवादी सिद्धान्त से नियंत्रित होता है।
- उपाहं तथा पराहं को वाह्य वातावरण की वास्तविकता से कोई मतलब नहीं होता है जबकि अहम् का वाह्य वातावरण की वास्तविकता से सीधा सम्बन्ध होता है।
- उपाहं पूरी तरह से अचेतन होता है जबकि अहम् और नैतिक मन दोनों ही थोड़ा चेतन, थोड़ा अर्द्धचेतन और थोड़ा अचेतन होते हैं।
- अहम् एक समायोजक के रूप में कार्य करता है जबकि उपाहं और नैतिक मन की प्रवृत्ति परस्पर विरोधी होती है।
- उपाहं पूरी तरह से अनैतिक होता है जबकि नैतिक मन पूरी तरह से नैतिक होता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मन शब्द का क्या अर्थ है?
2. मन की कितनी अवस्थाएँ होती हैं?
3. मन के आकारात्मक पक्ष को कितने भागों में बाँटा गया है?
4. चेतन, अर्द्धचेतन व अचेतन में सबसे बड़ा भाग किसका है?
5. मन के गत्यात्मक पक्ष को कितने भागों में बाँटा गया है?
6. मूल प्रवृत्तियाँ किसे कहते हैं?
7. मूल प्रवृत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं?.
8. मन के गत्यात्मक पहलू का कौन सा भाग जन्मजात होता है?
9. मन के गत्यात्मक पहलू का अन्तिम भाग कौन सा है ?
10. अहम् किस सिद्धांत से नियन्त्रित होता है ?
11. उपाहं के अनैतिक, असामाजिक और कामुक संवेगों पर रोक कौन लगाता है ?
12. जब उपाहं, अहम् और नैतिक मन में से एक इकाई अधिक प्रभावशाली हो जाती है तो क्या होता है ।

4.7 सार संक्षेप

इस इकाई में आपने मन के सभी पक्षों के बारे में जानकारी प्राप्त की। मन के आकारात्मक पक्षों के अन्तर्गत चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन में से कौन–सा भाग अधिक सक्रिय रहता है। मन के गत्यात्मक पक्ष के अन्तर्गत उपाहं, अहम् और नैतिक मन तीनों का ही सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व से है और सामान्य व्यक्ति में इन तीनों का ही आपस में मेल पाया जाता है। व्यक्ति इन तीनों के बीच जितना ही अधिक समायोजन का प्रयास करेगा, व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना ही अधिक स्थायी होगा।

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. मन से आप क्या समझते हैं ?
2. चेतन, अचेतन और अद्धचेतन से आप क्या समझते हैं ?
3. उपाहं के मुख्य कारक क्या हैं?
4. उपाहं, अहम् और नैतिक मन में क्या सम्बन्ध है ?

5. इन तीनों में (उपाहं, अहम्, नैतिक मन) क्या विभिन्नताएँ हैं ?
6. उपाहं, अहम् और नैतिक मन को एक उदाहरण द्वारा समझाइये ?

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

अमूर्त – निराकार
परिकल्पनात्क – कल्पना पर आधारित
आइस वर्ग – हिमखण्ड
मूल प्रवृत्तियाँ – व्यक्ति कोई व्यवहार क्यों करता है। उसका कारण क्या है। यही मूल प्रवृत्ति है।
प्रतिबन्ध – रोक
गत्यात्मक – गति सम्बन्धी
अनभिज्ञ – न जानना
स्मृति – पूर्व काल की घटनाओं को वर्तमान में लाना
दमित – दबी हुई
प्रतिमा – किसी वस्तु का आकार
तादात्म्य – सम्बन्ध

संदर्भ ग्रन्थ–

1. डॉ. अरुण कुमार सिंह, उच्चत्तर सामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास पब्लिकेशन, दिल्ली।
2. डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. डॉ. मुहम्मद सुलेमान, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, प्रकाशन, दिल्ली।
4. डॉ. आर.एन. सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

इकाई –5

समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान का महत्व एवं मनोरचनायें
Importance of Psychology in Social Work Practice and Defence Mechanism

इकाई की रूपरेखा
5.0 इकाई का उद्देश्य
5.1 परिचय
5.2 समाज कार्य अभ्यास के लिए मनोविज्ञान का महत्व
5.3 मनोरचनायें
5.4 मनोरचनाओं के प्रकार
5.4.1 प्रमुख मनोरचनायें
5.4.2 गौण मनोरचनायें
5.5 सार संक्षेप
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य – इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. समाज कार्य अभ्यास के लिए मनोविज्ञान के महत्व के लिए जान सकेगें।
2. मनोरचनाओं की परिभाषा को जान सकेगें।
3. मनोरचनाओं की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेगें।
4. मनोरचनाओं की मनोरचनाओं के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
5. मनोरचनाओं की गौण मनोरचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

5.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य के अभ्यास में मनोविज्ञान का क्या महत्व है के बारे में विस्तृत रुप से तथ्य प्रदान किये गये है। वास्तव में समाज कार्य एक सहयोगात्मक सेवा है जिसमें सेवार्थी की समस्याओं को विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया जाता है। समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान की सहायता महत्वपूर्ण है क्योंकि समाज कार्य व्यक्तियों, समूहों, समुदाय इत्यादि के बारे में अध्ययन करता है तथा सहायता प्रदान करता है। चूंकि मनोविज्ञान समाज के व्यक्तियों, समूहों तथा समाज के बारे में अध्ययन करता है। अतः समाज मनोविज्ञान की सहायता से सामाजिक कार्य कर्ता विभिन्न प्रकार की समस्याओं को हल करने में निपुण हो सकते हैं।

5.2 समाज कार्य अभ्यास के लिए मनोविज्ञान का महत्व

मनोविज्ञान का समाज कार्य अभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान है जो अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. मनोविज्ञान द्वारा सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने में समाज कार्य कर्ता को सहायता प्राप्त होती है– सामाजिक कार्य कर्ता समाज के व्यक्तियों का अध्ययन कर्ता है क्योकि व्यक्तियों के समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद ही व्यक्तियों को सहायता प्रदान की जा सकती है। सामाजिक कार्य कर्ता के अभ्यास में मनोविज्ञान सामाजिक क्रिया कलापों के बारे में जानकारी प्रदान करता है। जैसे भीड़ समूह, श्रोता समूह, आदि का अध्ययन मनोविज्ञान की सहायता से स्पष्ट रूप से हो सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान की सहायता से समाज कार्य कर्ता सामाजिक व्यवहार का अध्ययन आसानी से कर सकता है।

2. समाज कार्य कर्ता को जटिल विश्लेषण में सहायता प्राप्त होती है – सामाजिक कार्य कर्ता को विभिन्न प्रकार की जटिल प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना पड़ता है जिसमें निरीक्षण, अन्तर्दर्शन तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोग आते है। वास्तव में समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान को अपना कर समाज कार्य कर्ता विभिन्न प्रकार के जटिल विश्लेषणों को आसानी से विश्लेषित कर सकता है।

3. वैयक्तिक अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान की वैयक्तिक शाखा के अन्तर्गत व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। इस विषय में विशेष रूप से व्यक्ति–व्यक्ति के बीच पाई जाने वाली अनिवार्य भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति पूर्णरूप से समान नहीं होते हैं। चूंकि समाज कार्य अभ्यास के वैयक्तिक सेवा अभ्यास में व्यक्तियों की समस्याओं को दूर किया जाता है जिसमें मनोविज्ञान पूर्णरूप से सहायता प्रदान करता है।

4. सामान्य व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यावहारिक व सैद्धान्तिक दोनों पक्षों का अध्ययन करता है। व्यवहारिक पक्ष का मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं में अध्ययन किया जाता है तथा व्यक्ति के सैद्धान्तिक व्यवहार का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान में किया जाता है। चूंकि समाज कार्य मानव व्यवहार का अध्ययन करता है जिसमें मनोविज्ञान की सहायता प्राप्त करता है।

5. असमान्य व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – प्रत्येक व्यक्ति में कुछ समान्यतायें होती है अर्थात् ऐसे लक्षण होते है जो सब व्यक्तियों में समान रूप से पाये जाते है किन्तु सामान्यता के साथ–साथ प्रत्येक व्यक्ति में अपनी विशेषता भी होती है। जिसको उस व्यक्ति की विशिष्टता या असमान्यता कहा जा सकता है। इसके अध्ययन में समाज कार्य कर्ता के अभ्यास में मनोविज्ञान पूर्ण रूप से सहायता करता है जिससे व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों को ठीक करने में समाज कार्य कर्ता अपने आपको पूर्ण पाता है।

6. बालकों के मनोविज्ञान के अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है – समाज कार्य अभ्यास में यदि कोई बालक सेवार्थी के रुप में आता है तो उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने में मनोविज्ञान सहायता प्रदान करता है। जैसे गर्भ से शिशु की अवस्था 12 वर्ष तक के आयु बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास, उसकी शिक्षा दीक्षा, सुधार, भाषा विकास, मानसिक शक्तियों, व्यक्तित्व, बुद्धि, आदि के अध्ययन में मनोविज्ञान पूर्ण रूप से अपना योगदान देता है। जिससे समाज कार्यकर्ता बालकों की समस्याओं को समझ पाते है तथा समस्याओं को दूर कर सकते है।

7. किशोर मनोविज्ञान के अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है – मनुष्य के जीवन में किशोर अवस्था सबसे महत्वपूर्ण होती है जो सामान्यतः 12 वर्ष से 21 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में शारीरिक तथा मानसिक अस्तर पर क्रांन्तिकारी परिवर्तन होते है। व्यक्ति की इस

अवस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदि विभिन्न प्रकार के विकास का विशद्रूप से अध्ययन मनोविज्ञान के किशोर मनोविज्ञान नामक शाखा के अन्तर्गत किया जाता है। चूंकि किशोर अवस्था में व्यक्ति अपने आपको कभी–कभी असमायोजित महसूस करता है और वह समाज कार्यकर्ता के पास समस्या को लेकर आता है। जिस हेतु सामाजिक कार्यकर्ता किशोर मनोविज्ञान की सहायता प्राप्त कर समस्याओं को दूर करने का प्रयास करता है।

8. व्यवहारिक पक्ष का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा व्यवहार मनोविज्ञान है इस शाखा के अन्तर्गत जीवन के व्यवहारिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की इस शाखा की अनेक शाखायें बन चुकी है जिनमें मनोविज्ञान के व्यवहारिक पक्ष का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। व्यवहारिक मनोविज्ञान समाज कार्य अभ्यास में विशेष सहायता प्रदान करता है जिससे सामाजिक कार्य कर्ता निर्देशन, निदान, चयन, विज्ञापन, कानून आदि के क्षेत्रों में अपनी विशेष भूमिका निभाता है।

9. शरीर रचना एवं शरीर क्रिया प्रणाली का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है। मनुष्य का व्यवहार उसकी शारीरिक स्थिति से प्रभावित होता है अतः मनुष्य के व्यवहार के समुचित अध्ययन के लिए उसकी शारीरिक रचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन भी आवश्यक है। चूंकि समाज कार्य व्यक्तियों की समस्याओं से सम्बन्धित है जिसमें व्यक्तियों की शरीर रचना एवं शरीर क्रिया प्रणाली के बारे में जानकारी होना समाज कार्यकर्ता को आवश्यक है। इस हेतु मनोविज्ञान समाज कार्य अभ्यास में सहायता प्रदान करता है।

10. लोक व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान किसी देश के आदिवासियों के अन्धविश्वासों, पौराणिक व्यवस्थाओं, संगीत, कला, धर्म आदि में निहित मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों की व्याख्या करता है तथा उसकी तुलना आज के सामाजिक लोक व्यवहार से करता है। समाज कार्य समाज के लोक व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी रखने की कोशिश करता है जिसमें मनोविज्ञान अपनी सहायता देता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि मनोविज्ञान का महत्व समाज कार्य अभ्यास में अति महत्वपूर्ण है जिससे समाज कार्य अभ्यास व्यक्तियों, समूहों, समुदायों की समस्याओं को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

5.3 मनोरचनायें

मनोरचनायें मुख्य रूप से अन्तर्द्वन्द उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से व्यक्ति को समायोजित करने में सहायता प्रदान करती हैं इससे व्यक्ति में अहम् की उपयुक्तता बनी रहती है। व्यक्ति उपयुक्तता एवं योग्यता की भावना को बनाये रखता है किन्तु वास्तव में वह प्रतिबल का सामना वास्तविकता के स्तर पर नही करता है। अर्थात् मनोरचनाओं में व्यक्ति वास्तविकता को नकारता है। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति यह मानने को तैयार नही होना चाहता है कि उसकी असफलता का कारण उसकी स्वयं की अयोग्यता है बल्कि वह अपनी कथित असफलताओं का कारण किसी व्यक्ति, परिस्थिति या घटना को मानकर स्वयं को अपराध भाव से मुक्त कर लेता है लेकिन वास्तविकता यह नही होती है। अंगूर खट्टे हैं कथानक इसी पर आधारित है।

मनोरचना की परिभाषा अग्रलिखित है –

मेक्डॉनल्ड लैडिल के अनुसार, मनोरचनायें वे बाधायें है जो अचेतन समान विरोधी प्रकृतियों को चेतना में जाने से रोकती है।

पेज के अनुसार, मनोरचनायें व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द, निराशाओं तथा हीनता की भावनाओं से बचने का एक अच्छा साधन है। इसमें सुरक्षात्मक पहलू भी है तथा पलायन भी। लगभग हर सामान्य कहे जाने वाले व्यक्ति के द्वारा मानसिक रूप से मनोरचना का प्रयोग किया जाता है।

मनोरचनायें असफलता से राहत पहुंचाती है, आन्तरिक सन्तुलन बनाये रखती है तथा किसी प्रकार की असमान्य स्थिति में व्यक्ति का सन्तुलन बनाये रखने में मदद् करती है। किन्तु जब इन सुरक्षात्मक उपायों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जाता है एवं ये व्यक्ति के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाते है तो असमान्यता के चिन्ह बनकर प्रकट होने लगते है। व्यक्ति हर असफलता को नकारने लगता है, पलायनवादी हो जाता है। अपने उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयास करने लगता है।

इस प्रकार सुरक्षात्मक उपाय जब स्वयं में उद्देश्य बन जाते है तब व्यक्ति वास्तविकता के साथ भ्रमित हो जाता है, तब यह असमान्य लक्षण बन जाते है। व्यक्ति के व्यवहार में सन्तुलन के लिए यह आवश्यक है कि इदम्, अहम् व पराहम् में सन्तुलन बना रहे। अहम् की भूमिका इतनी मजबूत होनी चाहिए कि इदम् की नैसर्गिक, असमाजिक एवं पाशविक इच्छाओं एवं पराहम् की नैतिक मान्यताओं के मध्य सन्तुलन बनाये रखे तभी व्यक्ति सन्तुलित एवं समायोजित होगा। जब इदम्, अहम् व पराहम् के बीच संघर्ष की स्थिति आ जाती है, व्यक्ति पर दबाव बढ़ जाते है, आन्तरिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते है तभी वह इन सुरक्षात्मक उपायों का अपने जीवन में चेतन अथवा अचेतन स्तर पर प्रयोग करके अपने व्यक्तित्व को विघटित होने से बचा लेता है और उसे किसी भी सामाजिक स्थिति में यह अनुभव नहीं होने पाता कि वह सामाजिक रूप से अयोग्य या असमर्थ है।

5.3.1 मनोरचना की विशेषतायें

मनोरचना की अग्रलिखित विशेषतायें है –

1. मनोरचनायें व्यक्ति को चिन्ता से मुक्त करती हैं।
2. यह व्यक्ति के अहम् की रक्षा करती हैं।
3. यह व्यक्ति की उपयुक्तता तथा योग्यता की भावना को उसके अन्दर बनाये रखती हैं।
4. यह व्यक्ति के समग्रता की रक्षा करने में सहायक होती हैं।
5. मनोरचनायें एक प्रकार की मानसिक क्रिया विधि है तथा इसका प्रयोग अचेतन अथवा अर्द्धचेतन स्तर पर होता है।
6. सुरक्षात्मक उपायों द्वारा व्यक्ति को अपने अन्तरनिहित तनावों, अन्तर्द्वन्दों तथा संघर्षों को कम करने में सहायता मिलती है।
7. व्यक्ति के समायोजन को तत्कालिक रूप से सरल बना देती हैं।
8. मनोरचनायें बचत पूर्ण होती है, इससे अन्तर्द्वन्द पर व्यय होने वाली शक्ति में बचत होती है।
9. व्यक्ति मनोरचनाओं के प्रयोग के प्रति जागरूक नहीं होता है।
10. मनोरचनाओं के अतिरिक्त प्रयोग से व्यक्ति का वास्तविकता से संपर्क टूट सा जाता है तथा व्यक्ति सुसमायोजित भी हो जाता है।

5.4 मनोरचनाओं के प्रकार

भिन्न–भिन्न व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उसी प्रकार से वह अचेतन स्तर पर भिन्न–भिन्न सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग करके समायोजन का प्रयास करते है। इसकी विशेषता यह है कि एक ही व्यक्ति मनोरचनाओं का प्रयोग कर सकता है। ब्राउन ने मानसिक रचनाओं को दो प्रमुख भागों में बांटा है – 1. प्रमुख मनोरचनायें 2. गौण मनोरचनायें।

5.4.1 प्रमुख मनोरचनाओं की व्याख्या

1. दमन – जब व्यक्ति अन्तर्द्वन्द की स्थिति में होता है तो वह अंश जो ईगो व सुपरईगो को सहनीय नहीं होता है, उसे वह अचेतन में धकेल देता है, यही प्रक्रिया दमन है। उदाहरण के लिए व्यक्ति में अनेक प्रकार के ऐसे आवेग व इच्छाएं होती है जिन्हें वह चेतन स्तर पर सामाजिक रूप से व्यक्त नही कर पाता है क्योंकि उसे यह डर होता है कि अभिव्यक्ति उसकी सामाजिक छवि एवं प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाएगी जो उसे असहनीय होगा अतः वह इन्हें जानबूझ कर अचेतन में परे धकेल देता है। इसीलिए इसे चयनात्मक विस्मरण भी कहा जाता है। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक इसे विस्मरण नही स्मरण की घटना मानते है। यद्यपि दमन के माध्यमों से चेतन संघर्ष का समाधान होता है किन्तु यह समाधानात्मक क्रिया अचेतन होती है।

2. शमन – 'शमन' के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छा से जानबूझ कर किसी अप्रिय घटना या विचार को चेतन से हटा देता है जबकि दमन की प्रक्रिया में दुःखद एवं असामाजिक इच्छाओं का दमन कर दिया जाता है।

पेज द्वारा 'शमन' एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। जैसे–किसी विद्यार्थी की अपनी लापरवाही से कोई दुर्घटना हो जाती है और वह उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है, वह बार–बार उस दुर्घटना की स्मृति से विचलित हो जाता है अतः वह जान–बूझकर इस दुर्घटना की कष्टकारी स्मृति से स्वयं को हटाने के लिए दूसरी बातों पर ध्यान देने का प्रयत्न करता है ताकि घटना को वह भूल जाए तो वह 'शमन' की प्रक्रिया में रत है। इसके विपरीत इस दुर्घटना की स्मृति स्वयं ही विलीन हो जाती है जिससे यह विद्यार्थी चेतन स्तर पर इस घटना को याद करने में असमर्थ रहता है यही दमन प्रक्रिया है। किन्तु दमित स्मृतियाँ हमेशा के लिए समाप्त नही हो जाती है। केवल अचेतन से चेतन में आने का अवरोध हो जाता है।

3. प्रतिगमन – प्रतिगमन का तात्पर्य पीछे की ओर लौटने से है इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक अवस्था (बाल्यावस्था) की ओर व्यक्तित्व का प्रतिगमन पाया जाता है। पलायन करता है। प्रायः इनये बच्चे के आगमन पर माता–पिता का ध्यान उस ओर छोटे बच्चे की तरह रोना, मचलना, चलना एवं जिद करना इत्यादि अर्थात् प्रतिगमन के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि अपनी अयोग्यताओं एवं वातावरणीय प्रतिबन्धों के कारण करने में असमर्थ होता है। अतः इन वातावरण की विसंगतियों के कारण उसमें उत्पन्न हताशा, कुण्ठा एवं तनाव उसे अपने अहं की सुरक्षा हेतु बाल्यावस्था की प्रवृत्तियाँ को अपनाने के लिए प्रेरित करते है और जीवन के प्रारम्भिक वर्षो की ओर व्यक्तित्व का प्रतिगमन पाया जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति का अपनी तात्कालिक समस्याओं से सम्पर्क

टूट जाता है जिससे वह उनकी ओर अधिक काल्पनिक रूप से प्रतिक्रियाएँ करने लगता है।

4. रूपान्तरण – इस मनोरचना के अन्तर्गत अवदमित अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति विभिन्न शारीरिक लक्षणों के रूप में होती है। विभिन्न शारीरिक रोगी के लक्षण गत्यात्मक शारीरिक या ज्ञानेन्द्रिय जन्य आदि किसी प्रकार के हो सकते है। इसके अन्तर्गत दमित ऊर्जा शारीरिक रोगों के क्रियात्मक लक्षणों में परिवर्तित होती है।

इस मनोरचना का मुख्य आधार यह है कि इसमें व्यक्ति के अन्दर के संघर्ष एवं द्वन्द्वों का व्यक्ति के द्वारा दमन करने का प्रयास किया जाता है किन्तु यह दमन असफल होता है, यही दमित इच्छा परिवर्तित होकर शारीरिक रोगों के लक्षणों के रूप में सामने आ जाती है। इसीलिए इन मनोरचना को भी कहा जाता है। इस दमन के परिणामस्वरूप जो शारीरिक रोग के लक्षण उत्पन्न होते है उसका आधार मात्र मनोवैज्ञानिक होता है।

5. उदातीकरण

मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार, व्यक्ति की कामजनित विफलता प्रायः क्रियात्मक, कलात्मक, साहित्यिक एवं वैज्ञानिक कार्यों में परिणित हो जाती है।

बहुत–सी इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ ऐसी होती है जिनकी अभिव्यक्ति हम सामाजिक बन्धन तथा मार्यादाओं के कारण नहीं कर पाते है। उदासीकरण अथवा उन्नयन द्वारा इन अमान्य इच्छाओं की पूर्ति समाज से मान्यता प्राप्त रचनात्मक क्रियाओं द्वारा की जाती है। ऐसी इच्छाएं तथा आवश्यकताएं जिनकी स्वाभाविक पूर्ति समाज द्वारा मान्य नहीं होती है उनका स्थानापन्न ऐसी क्रियाओं द्वारा किया जाता है जो समाज द्वारा मान्य होती है, पुरुस्कृत होती है तथा समाज में व्यक्ति का मान बढ़ाती है।

6. युक्तिकरण – इस मनोरचना के अन्तर्गत व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्यों को उचित ठहराने के लिए अवास्तविक तर्क तथा कारण प्रस्तुत करने लगता है। अपने हर अच्छे–बुरे कार्यो के लिए उसके समक्ष एक तर्क उपस्थित रहता है।

इस प्रकार युक्तिकरण में जब व्यक्ति कोई क्रिया कर चुकता है और उसे अपने व्यवहार की अनुपयुक्तता स्वयं ही समझ में आ जाती है तो वह अपनी क्रियाओं के लिए युक्तियां तक प्रस्तुत करता है। वह अपनी गल्तियों के लिए अवास्तविक तर्क प्रस्तुत करता है। वास्तविकता यह है कि वह अपनी अयोग्यता के लिए स्वयं को उत्तरदायी स्वीकार नही करना चाहता है। जैसे विद्यार्थी परीक्षा में फेल होने पर परीक्षक को दोष देता है, प्रश्न को कठिन बताता है, कोर्स से बाहर प्रश्नों को बताता है किन्तु यह स्वीकार नहीं करना चाहता है, स्वयं की अयोग्यता या लापरवाही, न पढ़ना उसकी असफलता का कारण है।

7. प्रतिक्रिया निर्माण – कुछ व्यक्ति अपनी इच्छाओं और भावनाओं के अनुरूप ही व्यवहार करते है जब कि कुछ व्यक्तियों के मन में कुछ होता है और व्यवहार में कुछ और, व्यक्ति अपनी अन्तर्निहित इच्छा के विपरीत व्यवहार करता है। ब्राउन ने इसे क्षतिपूर्ति कहा है। जिन व्यक्तियों में स्वयं ही अपनी अपराध भावना पर नियन्त्रण पाना सम्भव नही होता है वह नियम धर्म में कुछ ज्यादा ही कठोर दिखायी पड़ते है।

8. अवरोधन – अवरोधन में अमान्य सामाजिक कार्यो को नही किया जाता है किन्तु यह क्रिया चेतन स्तर पर होती है। अवरोधन वह सुरक्षात्मक उपाय है जिसमें एक भावना या इच्छा दूसरी भावना या इच्छा के उपस्थित होने के कारण विस्मृत हो जाती है। इस प्रकार अवरोधन के द्वारा दुःखद, अप्रिय व अनैतिक इच्छाओं को भुलाया जा सकता है। इस रक्षात्मक उपाय द्वारा अन्तर्द्वन्द को काफी हद तक हटाया जा सकता है।

5.4.2 गौण मनोरचनाओं की व्याख्या

1. आत्मीकरण – सरल शब्दों में, आत्मीकरण का अर्थ है कि इसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति जैसा बनना चाहता है। हमारे दैनिक जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है; जैसे– एक लड़का अपने बाप की तरह तथा एक लड़की अपनी माँ की तरह बनना चाहती है। एक कॉलेज छात्रा हेमामालिनी बनना चाहती है; उसी तरह के बाल रखने की कोशिश करती है। दूसरे शब्दों में, वह उसी का अनुसरण करना प्रारम्भ कर देती है, जिनका सम्बन्ध इस मनोरचना से होता है। आत्मीकरण में व्यक्ति दूसरों के गुणों को स्वयं में रख लेता है।

2. प्रक्षेपण – पेज के शब्दों में, ''अपनी प्रवृत्तियों एवं गुणों को दूसरों पर आरोपित करना एवं देखना प्रक्षेपक कहलाता है।'' वारेन के अनुसार, ''यह वह प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत् में अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का आरोपण करता है।'' हीली, वार्नर व बॉवर्स ने इसे एक प्रकार की सुरक्षात्मक, प्रक्रिया माना है जिसके अनुसार अहम् बाह्य जगत् में अपनी अचेतन इच्छाओं को लाता है। फ्रायड के अनुसार, प्रक्षेपण के माध्यम से व्यक्ति अपराध भावना से छुटकारा प्राप्त करता है।

उदाहरण – बैग्बी ने इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसने एक ऐसी माँ का उल्लेख किया है जो अपनी लड़की को सर्वगुण सम्पन्न देखने की कामना रखती थी लेकिन जब ऐसा सम्भव न हो सका तो उसने अपनी पुत्री को परेशान एवं डॉटना फटकारना सीख लिया। इसी प्रकार एक स्त्री की यह शिकायत थी कि वह व्यक्ति मुझे बुरी दृष्टि से देखता है तथा मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है। लेकिन जब उस व्यक्ति से अनेक तरीकों से पूछा गया तो वह वास्तव में उसको जानता भी नहीं था। स्त्री से अधिक जानकारी जब मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई तो यह ज्ञात हुआ कि यह स्त्री अचेतन रूप से उस व्यक्ति विशेष से प्यार करती है तथा सम्भोग की इच्छा रखती है। इस प्रकार प्रक्षेपण के माध्यम से एक व्यक्ति अपनी असामाजिक एवं अवांछित इच्छाओं को विचारों, आवेगों आदि को अन्य व्यक्तियों या पदार्थो पर आरोपित करती है।

जब प्रक्षेपण–प्रक्रिया कल्पना की सीमा तक पहुँच जाती है तब वह व्यक्ति अनेक प्रकार के विभ्रमों का शिकार हो जाता है। इसका दण्डात्मक व्यामोह में काफी हाथ रहता है।

3. अन्तःक्षेपण – अन्तःक्षेपण प्रक्षेपण की प्रतिकूल मनोरचना है। इसमें आरोपण करने के स्थान पर व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व–गुणों को अपने व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण समझने लगता है। प्रक्षेपण में एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के अनुरूप होना चाहता है। लेकिन अन्तःक्षेपण में दूसरे व्यक्ति को अपना ही एक अंग मानता है। मिलर के शब्दों में, ''अन्तःक्षेपण यह प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अपने वातावरण के गुणों को अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित करता है।'' इसमें व्यक्ति अपनी अनेक दुःखद अनुभूतियों से बचाव करता है। अन्तःक्षेपण के अनेक उदाहरण दैनिक जीवन में हमें मिलते हैं, जैस– एक छात्र का यह समझना कि मैं ही राजेश खन्ना हूँ। इसी प्रकार कभी–कभी यह समझता है कि मैं ही पिता हूँ।

4. स्थानान्तरण – अपने मानसिक संघर्ष से बचने के लिए प्रायः हम स्थानान्तरण का उपयोग करते है। ब्राउन के अनुसार, 'स्थानान्तरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा

प्रेम की भावना का एक व्यक्ति विशेष या वस्तु–विशेष से हटकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर चला जाता है।' एक व्यक्ति अपना गुस्सा अपनी स्त्री पर प्रकट करने के स्थान पर अपने सहायक पर करता है तो यह एक प्रकार का स्थानान्तरण हुआ। क्योंकि यहाँ एक भावना का एक व्यक्ति–विशेष से हटकर अन्य व्यक्ति पर चला गया है। फ्रायड ने स्थानान्तरण को मनोविश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंग माना है, उदाहरणस्वरूप – एक व्यक्ति एक लड़की के प्रेम में असफल हो जाने के बाद कुत्ते से ही प्रेम करने लगा अर्थात् उसका प्रेमभाव प्रेमिका से हटकर कुत्ते पर चला गया।

5. विस्थापन – विस्थापन में व्यक्ति की किसी प्रेरणा या संवेग को मौलिक रूप में हटाकर किसी ऐसे लक्ष्य की ओर प्रेरित कर दिया जाता है जिससे उसका कोई सम्बन्ध नही है। पेज के शब्दों में, ''विस्थापन वह मनोरचना है जिसके द्वारा एक संवेग, जो कि मौलिक रूप से किसी वस्तु या विचार से सम्बन्धित होता है तथा अन्य विचार या वस्तु पर स्थानान्तरित हो जाता है।'' सामान्यतया विस्थापन सभी लोगों के जीवन में किसी न किसी रूप में अवश्य दिखाई पड़ता है। इससे सामान्यतया कोई विशेष हानि नही होती। अगर बहुत अधिक सीमा तक विस्थापन हो जाएं तो मानसिक रोग की सम्भावना हो जाती है। अचेतन मन प्रायः विस्थापन मनोरचना के प्रयोग के माध्यम से दमित एवं कुठित इच्छाओं को प्रकट करता है। विस्थापन में हमारी मनःशक्ति धारा एक विषयवस्तु से हटकर दूसरी विषयवस्तु पर चली जाती है, जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक विषयवस्तु आवश्यक तथा अनावश्यक विषयवस्तु आवश्यक प्रतीत होने लगती है। विस्थापन के द्वारा दमित इच्छाओं एवं दमन करने की शक्ति में समझौता होता है। प्रायः विस्थापन–क्रिया स्वप्न व विक्षिप्तावस्था में चलती है। इस प्रकार की क्रिया के माध्यम से व्यक्ति अपनी इच्छाओं के वास्तविक व मूल स्वभाव को नही पाते।

6. क्षतिपूर्ति – क्षतिपूर्ति के माध्यम से व्यक्ति अपनी हीनता व अनुपयुक्तता की भावना से रक्षा करता है। यह एक प्रकार की समायोजनात्मक प्रवृत्ति है जिसके माध्यम से व्यक्ति उन इच्छाओं व भावनाओं को, जिनसे कि उनमें विफलता, आकुशलता या हीनता उत्पन्न होती है, उन्हें अन्य सन्तोषजनक स्थिति के साथ चेतन या अचेतन रूप से पूर्ति करता है, उदाहरणस्वरूप, जब कोई व्यक्ति एक क्षेत्र में असफलता प्राप्त करता है तो यह हीनता के निराकरण के लिए वह किसी अन्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है।

7. अतिपूर्ति – अतिपूर्ति क्षतिपूर्ति का ही एक रूप है। इसमें व्यक्ति हीन–भावों से मुक्त होने के लिए किसी गुण या वस्तु को अत्यधिक मात्रा में प्राप्त करके क्षतिपूर्ति करता है। काना, बहरा, लंगड़ा, कुरूप, कोढ़ी, रोगी आदि में हीन ग्रन्थि का होना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार के व्यक्ति संगीत, नृत्य, लेख, कविता, धन, जमीन या मकान आदि के माध्यम से क्षतिपूर्ति करते हैं।

8. प्रत्याहार – जब व्यक्ति को अपने पूर्व–अनुभव के आधार पर किसी स्थिति से असफलता या आलोचना का भय रहता है तो वह इस मनोरचना का सहारा लेता है। इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति लज्जालु, एकाकी एवं भीरू स्वभाव का हो जाता है। बर्नहम ने इस अवस्था को मिथ्या–हीन बुद्धि कहा है। यह अवस्था मुख्यतः वयस्कों की अपेक्षा बालकों में देखी जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति किसी कार्य में रूचि नहीं लेते क्योंकि इनकी बुद्धि बहुधा दुर्बल होती है। ऐसा व्यक्ति अक्सर कहता है कि 'मैं नही जानता', 'यह कठिन कार्य है', 'मैं नहीं कर सकता' आदि। ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण आदि के माध्यम से ठीक भी किया जा सकता है।

9. कल्पना–तरंग – प्रायः सभी व्यक्ति जीवन की अनेक कमियों की पूर्ति कल्पना के माध्यम से करते हैं। कल्पना के माध्यम से व्यक्ति अपने संघर्षो एवं विफलताओं को कम करते हैं। इसका उपयुक्त उदाहरण दिवास्वप्न है। मानव किशोरावस्था में सदैव दिवास्वप्न ही देखता रहता है क्योंकि इस आयु में वह एक अत्यन्त तीव्र मानसिक उथल–पुथल से गुजरता है। कल्पना–तरंग सामान्यतया वास्तविक कार्य का स्थानान्तरण न बनकर केवल मनोरंजन आदि का रूप लेती है। ये अधिकतर हानिप्रद नहीं होती। अचेतन रूप से विचार क्रिया को निर्धारित करती है। इस प्रकार की मनोरचना से ज्ञात होता है कि व्यक्ति–विशेष का जीवन अपूर्ण है तथा उसे निराशा मिली है। व्यक्ति कल्पना–तरंग के माध्यम से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करता है। व्यक्ति इस प्रकार की क्रिया में वास्तविक जगत् को छोड़कर कल्पना–जगत् में ही आनन्द विभोर होता है, जैसे–एक दुर्बल व्यक्ति अपने को पहलवान की कल्पना करके प्रसन्न होता है।

10. वास्तविकता से पलायन – इससे व्यक्ति अपने चारों ओर के वातावरण की ओर कोई ध्यान ही नही देते हैं। वे अपनी आलोचना नही सुनते हैं तथा कान बन्द किये रहते है। उन्हें वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नही होता। इस प्रकार के व्यक्ति अपनी वास्तविकताओं को स्वीकार नहीं करते। यह व्यक्ति कभी भी अपनी आलोचना सुनने को तैयार नही होते। कठिन निर्णयों को वह कल पर टालने का प्रयास करते हैं, जैसे – अगर परिवार का प्रिय व्यक्ति मर जाता है जो कुछ व्यक्ति अनेक विश्वासों से यह समझाने का प्रयत्न करते है कि मृत व्यक्ति जीवित है। मृत व्यक्ति के कपड़ों, बिस्तर, रहने के स्थान आदि को ठीक करते हैं तथा कभी–कभी उनसे बातचीत भी करते हैं– ये सभी वास्तविकता से पलायन के उदाहरण है।

11. नकारात्मकता – इस प्रकार की मनोरचना के माध्यम से व्यक्ति किसी विशेष वस्तु, क्रिया या व्यक्ति के प्रति नकारात्मक बन जाता है। जैसे बालकों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वह उन कार्यो को करता है जिसे माँ–बाप करने के लिए मना करते हैं। एक लड़की ने बताया कि जब वह छोटी थी तो पांच भाई–बहिनों की गलतियों का दोष उसके मत्थे मढ़ा जाता था। इसी के परिणामस्वरूप उसने निर्णय कर लिया कि वह माँ–बाप के किसी भी प्रश्न का उत्तर नही देगी। धीरे–धीरे उसकी आदत पड़ गई कि माँ–बाप की किसी भी राय के प्रति विद्रोह करे। इस प्रकार नकारात्मकता अक्सर अनुचित व पक्षपातपूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप बनती है। ऐसे लोगों में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है जो आत्म–केन्द्रित व अत्यधिक लाड़–प्यार से पले होते है।

5.5 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में मनोविज्ञान का समाज कार्य अभ्यास में महत्व पर प्रकाश डाला गया तथा इसी अध्याय में विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से बताया गया है कि मनोविज्ञान समाज कार्य अभ्यास में किस प्रकार अपनी सहायता प्रदान करता है। जब व्यक्ति अपने जीवन में विफलताओं का सामना करता है तो मानसिक रूप से उसके व्यवहार में चिन्ता की अधिकता उसके अन्तर्मन में कुण्ठा और अनुपयुक्तता की भावना भर देती है। यह भी सत्य है कि व्यक्ति स्वयं को हारा हुआ नहीं समझना चाहता है, अपनी पराजय या असफलता को स्वीकार करने में उसके अहं को ठेस पहुंचती है अतः अपने अहं की रक्षा के लिए वह अर्द्धचेतन एवं अचेतन स्तर पर प्रयास करता है। अपनी अहं की रक्षा हेतु जो प्रयास व्यक्ति करता है, उसे मनोरचनाएं कहते हैं। किन्तु यदि इन अह ंके सुरक्षात्मक

उपायों को व्यक्ति आवश्यकता से अधिक प्रयोग करने लगता है तो उसके जीवन में धीरे–धीरे कुसमायोजन उत्पन्न होने लगता है, व्यक्ति में हीनता की भावना भी पनपने लगती है।

5.6 अभ्यास प्रश्न

1. समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान के महत्व पर एक निबन्ध लिखिए?
2. मनोरचनाओं से आप क्या समझते हैं ?
3. मनोरचनाओं की विशेषताओं के बारे में लिखिए?
4. मनोरचनायें कितने प्रकार की होती है?
5. प्रमुख मनोरचनाओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?
6. गौण मनोरचनाओं पर एक वृहद निबन्ध लिखिए?
7. शमन, दमन, अन्तःक्षेपण पर टिप्पणी लिखिए?

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

SocialWork Practice	समाज कार्य अभ्यास	Projection	प्रक्षेपण
Mental Mechanism	मनोरचनायें	Introjection	अन्तःक्षेपण
Repression	छमन	Transference	स्थानान्तरण
Suppression	शमन	Displacement	विस्थापन
Inhibition	अन्तर्बाधा	Compensation	क्षतिपूर्ति
Regression	प्रतिगमन	Over compensation	अतिपूर्ति
Conversion	रूपान्तरण	Withdrawl	प्रत्याहार
Sublimation	उदातीकरण	Phantancy	कल्पना–तरंग
Rationalization	युक्तिकरण	Evation	पलायन
Reaction formation	प्रतिक्रिया निर्माण	Negative	नकारात्मकता
Identification	आत्मीकरण	Experiment	प्रयोग

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, ओमदत्त, आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें, राजीव प्रकाशन मेरठ, वर्ष 2005, पेज 6–8.
2. सिंह, लाभ एवं तिवारी गोविन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2001, पेज 147–172.

इकाई–6
अभिवृत्ति
Attitude

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 परिचय
6.2 अभिवृत्ति की अवधारणा
6.3 अभिवृत्ति की विशेषताएँ
6.4 अभिवृत्ति निर्माण
6.5 अभिवृत्ति के संघटक तत्व
6.6 पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन
6.7 सार संक्षेप
6.8 अभ्यास प्रश्न
6.9 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा –

- अभिवृत्ति की अवधारणा को समझना एवं उसकी विशेषताओं के बारे में बताना।
- अभिवृत्ति निर्माण एवं उसके अंगों को बताना।
- पूर्वाग्रह द्वारा कैसे अभिवृत्ति परिवर्तित होती है, को समझना।

6.1 परिचय

अभिवृत्ति सामाजिक मनोविज्ञान का एक केन्द्रीय विषय है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों की रूचि विगत कई दशकों से अभिवृत्ति में रही है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि मनुष्य के व्यवहार को अभिवृत्ति बहुत प्रभावित करती है। अभिवृत्ति का अभिप्राय सामाजिक विश्व के किसी पक्ष के हमारे मूल्याँकन से है (फैजिया व रॉस्कॉस–एवोल्डसेन, 1994; ट्रेसर व मार्टिन, 1996)– सामाजिक विश्व के कोई और हर तत्व मुद्दे, विचार, व्यक्ति, सामाजिक समूह, वस्तु–के प्रति हम जिस हद तक सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ रखते हैं। (रॉबर्ट ए. बैरन एवं डौन बायर्न 2004 : 106)

अभिवृत्ति के मनोविज्ञान में निम्नाँकित आधारभूत समस्याएँ हैं (शेरिफ और शेरिफ 1969 : 333)– अभिवृत्ति के क्या गुण हैं? अवलोकित व्यवहार के किस तरीके से किसी अभिवृत्ति को जाना जा सकता है? वैध अभिवृत्ति सूचकों को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की शोध प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है? एक दी गई वस्तु के प्रति एक व्यक्ति की अभिवृत्ति दूसरे व्यक्ति की अभिवृत्ति से तुलना करने के लिए कौन सी उपयुक्त पैमाना है? शेरिफ और शेरिफ का मानना है कि किसी भी चीज का माप करने के लिए हमें माप की जाने वाली वस्तु की विशेषताओं को जानना चाहिए।

एक बार अभिवृत्ति का निर्माण हो जाने पर उसमें परिवर्तन लाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम अभिवृत्ति की अवधारणा को विविध विद्वानों की परिभाषाओं द्वारा समझने का प्रयास करेंगे। हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि अभिवृत्तियों का

निर्माण कैसे होता है, क्या वे सचमुच मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं, अभिवृत्तियो के क्या–क्या गुण हैं और क्या वे सचमुच कभी–कभी परिवर्तित होती है, इत्यादि।

6.2 अभिवृत्ति की अवधारणा

अभिवृत्ति के सन्दर्भ में विविध सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों/उपागमों के चलते मनोवैज्ञानिकों तथा समाज–मनोवैज्ञानिकों में उसकी कोई एक सर्वमान्य परिभाषा के सन्दर्भ में एकमत्य नहीं है।

आलपोर्ट (1935) ने अभिवृत्ति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "अभिवृत्ति मानसिक तथा स्नायुविक तत्परता की एक स्थिति है, जो अनुभव द्वारा निर्धारित होती है और जो उन समस्त वस्तुओं तथा परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को प्रेरित व निर्देशित करती है, जिनसे कि वह अभिवृत्ति सम्बन्धित है।"

आलपोर्ट की उपरोक्त परिभाषा को विश्लेषित किया जाये तो स्पष्ट होता है कि यह मानसिक एवं स्नायुविक तत्परता की एक स्थिति है तथा किसी वस्तुओं या परिस्थितियों के सन्दर्भ में व्यक्ति के मन के भाव पक्ष या मूल्यांकन पक्ष को अभिव्यक्त करती है। चूँकि यह अनुभवों द्वारा निर्धारित होती है अतः जन्मजात नहीं होती अपितु मनुष्य के अनुभवों द्वारा निर्धारित या प्राप्त की जाती है। आलपोर्ट ने मूल रूप से अभिवृत्ति को विशिष्ट प्रकार से अनुक्रिया करने के एक समुच्चय (सेट) के रूप में माना है।

उन्होंने इसके पाँचों महत्वपूर्ण पक्षों को अपनी परिभाषा में समाहित किया है। ये पाँचों पक्ष हैं– (1) अभिवृत्ति को मूर्तरूप में देखना संभव नहीं है। इसके दो मुख्य पक्ष होते हैं– मानसिक तथा स्नायुविक। (2) अभिवृत्ति प्रतिक्रिया करने की तत्परता है। यह कोई प्रतिक्रिया नहीं है, अपितु प्रतिक्रिया करें की मानसिक तत्परता है। (3) यह संगठित होती हैं। इसके विविध संघटकों–संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध होता है। (4) अभिवृत्ति अनुभव के आधार पर अर्जित की जाती है; और (5) अभिवृत्तियों का निर्देशित या गत्यात्मक प्रभाव पड़ता है। यह व्यवहार की दिशा निर्धारित करने के साथ–साथ एक खास तरह का व्यवहार करने की शक्ति भी प्रदान करती है।

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 109) ने भी अभिवृत्ति को स्पष्ट करते हुए उसके समस्त अवयवों पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि, "अभिवृत्ति एक ऐसी स्थायी प्रणाली है, जिसमें एक संज्ञानात्मक अवयव, एक अनुभूति सम्बन्धी अवयव तथा एक सक्रिय प्रवृत्ति सम्मिलित होती है। अभिवृत्ति में भावनात्मक अवयव भी सम्मिलित है। यही कारण है कि जब भी कभी कोई अभिवृत्ति बनती है तो यह परिवर्तन की प्रतिरोधी हो जाती है। यह सामान्यतः नये तथ्यों के प्रति अनुक्रिया नही करती। अभिवृत्ति में आस्थाओं और मूल्यँाकनों का भी समावेश होता है। उच्चतर जाति का कोई व्यक्ति किसी हरिजन के बारे में प्रायः प्रतिकूल अभिवृत्ति रखता है। किसी पाकिस्तानी या चीनी के बारे में किसी भारतीय की अभिवृत्ति प्रतिकूल होती है। इन अभिवृत्तियों में अन्य समूहों के बारे में कुछ जानकारी (संज्ञानात्मक अवयव), अप्रियता की कुछ भावनाएँ (प्रभावी, मूल्याँकनात्मक अवयव) तथा आक्रमण आदि से बचने की एक पूर्व प्रवृत्ति (क्रियात्मक अवयव) का समावेश होता है।"

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 110) का मानना है कि, "हमारी अभिवृत्तियाँ प्राथमिक रूप से सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न होती हैं। जन्म से ही मानव प्राणी ऐसी सामाजिक संस्थाओं के जाल में उलझ जाता है, जो भौतिक जगत् के रूप में उसके परिवेश का निर्माण करती हैं। प्रथम सामाजिक इकाई के रूप में परिवार का किसी व्यक्ति के अभिवृत्ति निर्माण पर

अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि बाद में प्राप्त होने वाले अनुभव आसानी से हम अभिवृत्तियों में बदल नहीं सकते क्योंकि अभिवृत्तियाँ व्यक्तियों, समूहों और अन्य सामाजिक वस्तुओं के प्रति हमारी अनुक्रियाओं को एक संगति प्रदान करती हैं, इसका भी यही कारण है।''

क्रच एवं क्रचफील्ड तथा अन्य (1962) के अनुसार ''व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसकी अभिवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करता है– यह किसी सामाजिक वस्तु के प्रति धनात्मक या ऋणात्मक मूल्यांकनों, संवेगात्मक भावों तथा पक्ष या विपक्ष के क्रियात्मक झुकावों की अपेक्षाकृत स्थायी पद्धतियाँ हैं।'' अभिवृत्ति को परिभाषित करते हुए क्रच एवं क्रचफील्ड (1948 : 152) ने लिखा है कि, ''व्यक्ति की दुनिया के किसी पक्ष से सम्बन्धित अभिप्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक और संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के एक सुस्थिर संगठन को अभिवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ''स्पष्ट है कि अभिवृत्ति अभिप्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का एक संगठन होती है।

वी.वी. अकोलकर (1960 : 231) ने अभिवृत्ति की अति संक्षिप्त परिभाषा देते हुए लिखा है कि, ''किसी वस्तु या व्यक्ति के विषय में अभिवृत्ति उस वस्तु या व्यक्ति के विषय में एक विशेष ढंग से सोचने, अनुभव करने और क्रिया करने की तत्परता की दशा है।'' दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी वस्तु या व्यक्ति के बारे में विशेष तरह से सोचने, अनुभव करने या क्रिया करने की तत्परता की स्थिति को अभिवृत्ति कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से अभिवृत्तियों के कुछ प्रमुख आयाम स्पष्ट होते हैं। एच.सी. ट्राइण्डिस (1971 : 13) ने किसी अभिवृत्ति–विषय के प्रति व्यवहार के दो प्रमुख आयामों का उल्लेख किया है– (i) सकारात्मक बनाम् नकारात्मक और (ii) सम्पर्क इच्छुक बनाम् सम्पर्क से बचना।

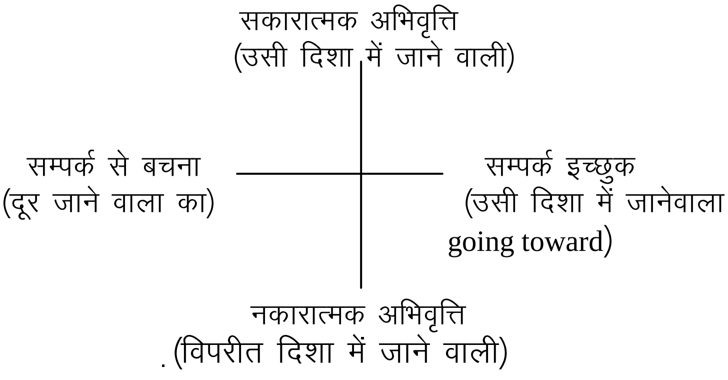

ट्राइण्डिस (1971) ने अभिवृत्तियों के तीन प्रकार्यों का उल्लेख किया है–
(i) इनसे अपने आसपास के संसार को सुव्यवस्थित करने, सरल बनाने और समझने में सहायता मिलती है, (ii) अपने विषय में अप्रिय सत्यों से बचते हुए अपने आत्माभिमान की रक्षा करने में मदद मिलती है, तथा (iii) अपने मूलभूत मूल्यों को अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है। कुप्पुस्वामी (1975:110) ने इसमें एक चौथा प्रकार्य और जोड़ दिया है और वह है कि अभिवृत्तियों से लोगों को समूह के अनुरूप बनने और इस प्रकार समूह से अधिकाधिक पुरस्कार प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है।

काट्ज (1960) ने अभिवृत्तियों द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी चार प्रकार्यों का उल्लेख किया है– (i) समायोजन सम्बन्धी प्रकार्य, जो बहुमत की अभिवृत्ति से सहमत होकर अधिकाधिक पुरस्कार और दण्ड की प्राप्ति में सहायक होता है, (ii) अहम्–रक्षात्मक प्रकार्य, जो व्यक्ति को अपने सम्बन्ध में अप्रिय मूलभूत सत्यों को स्वीकार करने की क्षमता प्रदान करने में सहायक होता है; (iii) मूल्य अभिव्यक्तात्मक प्रकार्य, जिनमें अभिवृत्तियों के प्रकट होने पर व्यक्ति को प्रसन्नता होती है, क्योंकि उससे उन मूल्यों का पता चलता है, जिनका वह समर्थन करता है, जैसे शाकाहारी या नशाबन्दी इत्यादि, (iv) ज्ञानात्मक प्रकार्य, जो व्यक्ति के संसार को एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने और इसे समझने की उसकी आवश्यकता पर आधारित होते हैं।

स्मिथ और उसके सहयोगियों (1956) ने अभिवृत्ति के एक अन्य प्रकार का उल्लेख किया है। वह है कुछ आन्तरिक समस्याओं को बाह्यीकरण प्रदान करना यानि किसी मुद्दे से सम्बन्धित अपनी प्रतिक्रियाओं को बाहरी समूहों की दिशा में मोड़ देना।

6.3 अभिवृत्ति की विशेषताएँ

आलपोर्ट (1935), बी. कुप्पुस्वामी (1975) क्रच एवं क्रचफील्ड तथा अन्य (1962) इत्यादि की परिभाषाओं एवं व्याख्याओं से अभिवृत्ति के जिस स्वरूप का पता चलता है, उससे इसकी निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। इन विशेषताओं में से कई का ऊपर पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। अभिवृत्ति की **पहली** विशेषता यह है कि, यह एक मानसिक एवं स्नायविक अवस्था है, **दूसरी** विशेषता यह है कि यह प्रतिक्रिया करने की एक तत्परता है। **तीसरी** विशेषता यह है कि यह एक जटिल एवं हस्तक्षेपीय या मध्यस्थ अवधारणा है। जटिल और संगठित इसलिए है कि, इसमें जो संघटक हैं– भावनात्मक, संज्ञानात्मक और व्यवहारात्मक, ये तीनों अत्यन्त जटिल होते हैं। इसलिए अभिवृत्ति भी जटिल होती है। कई संघटकों के कारण यह संगठित होती है। जहाँ तक मध्यस्थ या हस्तक्षेपीय अवधारणा की बात है अभिवृत्ति स्वतंत्र चर का न केवल परिणाम होती है अपितु स्वयं में भी स्वतंत्र चर (किसी व्यवहार या प्रतिक्रिया का निर्धारक होने के कारण) होती है। अभिवृत्ति की **चौथी** विशेषता यह है कि, यह अर्जित की जाती है। व्यक्ति अपने जीवन काल में विविध कारकों के सहयोग से अभिवृत्तियों को अर्जित करता या सीखता है। **पाँचवी** विशेषता यह है कि अभिवृत्ति बहुधा स्थायी होती है। विशेष परिस्थितियों में इसमें परिवर्तन भी पाया जाता है। इसकी अन्तिम **छठी** विशेषता यह है कि इसमें एक दिशा और तीव्रता होती है। दिशा या तो सकारात्मक होती या नकारात्मक। सकारात्मक या नकारात्मक अभिवृत्ति में तीव्रता के आधार पर अन्तर होता है। जैसे किन्हीं दो व्यक्तियों में किसी के प्रति घृणा या पसन्दगी की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है। सकारात्मक या नकारात्मक अभिवृत्ति में अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार या प्रतिक्रिया के प्रेरक गुण होते हैं।

अभिवृत्ति की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर हम इसके पाँच पहलूओं का उल्लेख कर सकते हैं– दिशा, तीव्रता, केन्द्रीयता, प्रमुखता तथा सुसंगति।

शेरिफ और शेरिफ (1969 : 334–335) ने अन्य आन्तरिक कारकों से अभिवृत्ति में विभेद के आधारों का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि, अभिवृत्ति किसी सार्थक वस्तु, व्यक्ति या घटना के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक विशेषता, सुसंगति और व्यवहार के चुने हुए तरीकों से ज्ञात होती है। जबकि उस तरह के सभी व्यवहार के तरीके किसी अभिवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, किसी भी नवजात सामान्य शिशु को,

जब वह भूखा हो और स्तन दिया जाये, तो वह अपना सिर उस ओर करके स्तनपान करने लगता है। इस प्रकार के व्यवहार की व्याख्या के लिए अभिवृत्ति जैसी अवधारणा की जरूरत नहीं है।

अभिवृत्तियों को अस्थायी समुच्चयों या अपेक्षाओं, स्थितियों और जैवकीय दशाओं या अभिप्रेरकों से विभेद करने के लिए अलग आधारों की आवश्यकता है। निम्नांकित आधारों से विभेद स्पष्ट होगा– (i) अभिवृत्तियाँ सहज (जन्मजात) नहीं होती है, (ii) अभिवृत्तियाँ सावयव की अस्थायी दशाएँ नहीं होती हैं अपितु निर्मित हो जाने पर ज्यादा या कम बनी रहती हैं, (iii) अभिवृत्तियाँ व्यक्ति और वस्तु के सम्बन्धों को स्थापित करती हैं, (iv) व्यक्ति वस्तु सम्बन्धों में अभिप्रेरणात्मक प्रभावी गुण होते हैं, (v) अभिवृत्ति निर्माण में छोटी या बड़ी मात्रा में विशिष्ट मदों की श्रेणियों का निर्माण जुड़ा होता है। (vi) सामान्य अभिवृत्ति निर्माण में जो सिद्धान्त लागू होते हैं वे सामाजिक अभिवृत्ति निर्माण में भी लागू होते हैं। (शेरिफ एवं शेरिफ, 1969 : 334–335)

6.4 अभिवृत्ति निर्माण

अभिवृत्ति का निर्माण कैसे होता है? हम कैसे अपनी क्रिया के बारे में मत धारण करते हैं? सामाजीकरण के दौरान कैसे एक खास प्रकार की अभिवृत्ति निर्मित होती है? व्यक्तिगत अनुभवों से बनने वाली अभिवृत्ति कैसी होती है? सामाजिक तुलना के आधार पर भी क्या मनोवृत्तियों का निर्माण होता है? इत्यादि अनेकों प्रश्न हैं जो अभिवृत्ति निर्माण को जानने–समझने के लिए विशेष रूचि उत्पन्न करते हैं।

अभिवृत्तियाँ आती कहाँ से हैं? क्या वे हमारे साथ पैदा होती हैं? जन्मजात होती हैं या अर्जित की जाती हैं? या क्या आप जीवन के एक लम्बे काल के दौरान अनुभवों से इसे सीखते हैं? पुनः ये प्रश्न, हमें इसके बारे में सोचने को बाध्य करते हैं। पहले ही इस सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है कि अभिवृत्तियाँ सीखी जाती हैं। हमने आलपोर्ट और शेरिफ एवं शेरिफ के विचारों से इसकी विशेषताओं और आधारों को जाना है।

सामाजिक अधिगम मनोवृत्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, लेकिन सप्रमाण यह ज्ञात हुआ है कि मनोवृत्तियों पर अनुवांशिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। रॉबर्ट ए. बैरन एवं डौन बायर्न (2004) ने इस सन्दर्भ में व्यापक विश्लेषण किया है।

अभिवृत्तियों के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत सामाजिक सीख है। सामाजिक सीख वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम अन्य लोगों से नई जानकारी, व्यवहार के तरीके या मनोवृत्तियाँ ग्रहण करते हैं। रॉबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न (2004 : 108) ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''हमारे अनेक मत उन परिस्थितियों में ग्रहण किये जाते हैं जहाँ हम दूसरों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं, या सिर्फ उनके व्यवहार का निरीक्षण करते हैं।''

हमारी अधिकांश अभिवृत्तियाँ उस समूह से विकसित होती है, जिससे हम सम्बद्ध होते हैं। बाल्यावस्था से ही बच्चा परिवार में सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान विविध वस्तुओं, व्यक्तियों इत्यादि के प्रति सकारात्मक एवं नकारात्मक अभिवृत्ति को निर्मित करता है। परिवार के साथ–साथ व्यक्ति अपने संगी–साथियों और समूह के अन्य सदस्यों से भी सामाजिक सीख के द्वारा अभिवृत्तियों को निर्मित करता चलता है। उदाहरण के लिए बच्चे कुछ खाद्य पदार्थों, खिलौनों, वस्तुओं के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करते हैं और कुछ के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करते हैं। हमारी अभिवृत्तियाँ बड़े होने पर भी

निर्मित होती रहती हैं। कुछ अभिवृत्तियों में आंशिक परिवर्तन होता है, कुछ में और भी बदलाव आता है। अभिवृत्तियों के बनने, विकसित होने, परिवर्तित होने की प्रक्रिया चलती रहती है। जहाँ एक ओर बहुसंख्यक अभिवृत्तियाँ उस समूह के प्रभाव से निर्मित होती है, जिसके हम सदस्य होते हैं, वहीं कुछ अभिवृत्तियों का निर्माण व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर भी होता है। व्यक्तिगत अनुभवों विशेषकर ऐसा अनुभव जो किसी त्रासदी से सम्बन्धित हो से बनी अभिवृत्ति अपेक्षाकृत ज्यादा तीव्र होती है।

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 118) का कहना है कि, ''अभिवृत्ति–निर्माण प्राथमिक रूप से बाल्यकालीन और किशोरवय की अधिगम प्रक्रिया या सीखने की प्रक्रिया के रूप में ही आरम्भ होता है। जब एक बार अभिवृत्ति बन जाती है तो संज्ञानात्मक संगति के सिद्धान्त का प्रभाव अधिकाधिक महत्व का होता है। व्यक्ति में अब प्राथमिक निष्क्रियता जारी नही रह सकती। वह अब तक जो कुछ सीख चुका होता है, उसके अनुसार ही नई सूचना का संस्कार करना आरम्भ कर देता है। वह असंगत सूचना को अस्वीकार करने और उस सूचना को अधिक उत्साह के साथ ग्रहण करने लगता है, जो उसकी अभिवृत्ति की दृष्टि से संगत होती है।

अभिवृत्ति निर्माण को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों एवं समाज–मनोवैज्ञानिकों ने व्यापक अध्ययन किया है। सामान्यतः इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण उपागमों–सीखना (Learning) और पुनबर्लन (Rein-forcement) के अन्तर्गत ही विषय को समझने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन किए गए हैं।

दूसरों से अभिवृत्तियाँ सामाजिक सीख के द्वारा ग्रहण की जाती हैं। सामाजिक सीख की तीन प्रक्रियाओं का उल्लेख **रॉबर्ट ए. बैरन** तथा **डॉन बायर्न** (2004 : 108–110) ने किया है–

(i) अनुबंधित अनुक्रिया (साहचर्य पर आधारित सीख)
(ii) साधन अनुकूलन (सही मत धारण करने के लिए सीख)
(iii) निरीक्षणात्मक सीख (उदाहरण से सीखना)।

सामाजिक सीख का उपरोक्त तीनों प्रक्रियाओं के विवरण से हम अभिवृत्ति निर्माण को आसानी से समझ सकते हैं।

साहचर्य पर आधारित सीख यानि अनुबंधित अनुक्रिया को हम मनोविज्ञान के उस सिद्धान्त से समझ सकते हैं जिसमें यह बताया गया है कि जब एक उद्दीपक लगातार दूसरे के पहले आता है, तो पहले वाला शीघ्र दूसरे के लिए संकेतक बन जाता है। एक उदाहरण के द्वारा इसे समझा जा सकता है। एक बच्चा अपने पिता को एक खास जाति के व्यक्ति या धार्मिक व्यक्ति को देखकर नाक भौं सिकोड़ते या बड़बड़ाते हुए देखता है तो धीरे–धीरे वो बच्चा भी जो पहले उस जाति या धर्म के व्यक्ति के प्रति उदासीन था, प्रतिकूल मनोवृत्ति निर्मित कर लेता है। स्पष्ट है कि लगातार प्रतिकूल या अनुकूल संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से सामना होते रहने का बच्चे पर तद्नुरूप प्रभाव पड़ता है। इस तरह अनुबंधित अनुक्रिया सीखने का एक आधारभूत रूप है, जिसमें एक उद्दीपन, प्रारम्भ में उदासीन, किसी अन्य उद्दीपन के साथ बार–बार दुहराये जाने पर प्रतिक्रिया पैदा करने की क्षमता ग्रहण कर लेता है। एक तरह से एक उद्दीपन दूसरे के घटित होने या प्रस्तुत होने के लिए संकेत हो जाता है। (बैरन तथा बायर्न 2004 : 109)

क्रॉस्निक व अन्य (1992) ने अपने एक अध्ययन से यह स्पष्ट किया है कि अभिवृत्ति अवचेतन अनुबन्ध (अनुबन्धित अनुक्रिया जो उद्दीपनों के प्रति चेतन जागरुकता की अनुपस्थिति में होती है) के द्वारा प्रभावित हो सकती है।

अनुबन्धित अनुक्रिया को एक उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा बैरन तथा बायर्न (2004 : 109) ने सरलतम रूप में स्पष्ट किया है।

प्रारम्भिक स्थिति

अल्पसंख्यक समूह के सदस्य

↓

कोई प्रबल प्रतिक्रिया नहीं

माँ–बाप में संवेगात्मक उदासी

↓

बच्ची उदास हो जाती है

अल्पसंख्यक समूह के सदस्य एवं माँ–बाप की उदासी का बार–बार युग्मित होना

अल्पसंख्यक समूह के सदस्य

↓

बच्ची उदास हो जाती हैं

माँ–बाप में संवेगात्मक उदासी

↓

बच्ची उदास हो जाती है

चित्र : अभिवृत्ति की अनुबन्धित अनुक्रिया प्रारम्भ में एक छोटी बच्ची की किसी अल्पसंख्यक समूह के सदस्यों की दृश्य विशेषताओं के प्रति कम या कोई संवेगात्मक प्रतिक्रिया नहीं होती है। यदि वह अपनी माँ को इन व्यक्तियों की उपस्थिति में जब प्रतिकूल प्रतिक्रिया करते देखती है तो वह भी धीरे–धीरे उनके प्रति प्रतिकूल प्रतिक्रिया सीख जाती है।

सामाजिक सीख की दूसरी प्रक्रिया 'साधन अनुकूलन' होती है, इसके अन्तर्गत सही मत धारण करने के लिए सीख को रखा जाता है और भी स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा सकता है कि साधन अनुकूलन सीख का वह मूलभूत रूप है, जिसमें सकारात्मक परिणाम पैदा करनेवाली या नकारात्मक परिणाम को नकारने वाली प्रतिक्रियाओं को मजबूत बनाया जाता है, इसे सक्रिय सम्बद्ध अनुक्रिया भी कहा जाता है। (बैरन एवं बायर्न 2004 : 110) इस प्रक्रिया में पुरस्कार, प्रशंसा, प्यार के द्वारा एक बच्चे की अभिवृत्तियों को निर्मित किया जाता है। ऐसे व्यवहारों को बच्चा बार–बार करने लगता है, जिसके अनुसरण से उसको प्यार प्रशंसा या पुरस्कार मिलता है। ऐसे व्यवहार जो सकारात्मक परिणाम देते हैं वे पुष्ट होते हैं, वहीं ऐसे व्यवहार जिनको करने पर प्रशंसा, प्यार, पुरस्कार कुछ नहीं मिलता है, को दबा दिया जाता है। परिवार में बड़े बुजुर्ग, माँ–बाप एवं अन्य वयस्क सदस्य बच्चों की अभिवृत्तियों को निर्मित करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इसीलिए अधिकांश बच्चे बाल्यावस्था में अपने पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप ही विचारों को रखते हैं, यद्यपि कुछ बच्चे ऐसा नहीं भी करते हैं। कालान्तर में बड़े हो जाने पर उनकी अभिवृत्ति अन्य कारकों द्वारा प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती है या सकती है। अमेरीकी हाईस्कूल के छात्रों पर जेनिंग्स और नीमी (1968) ने अध्ययन किया है। उनके अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि 76 प्रतिशत हाईस्कूल के छात्र उसी राजनीतिक दल के समर्थक थे, जिनके समर्थक उनके माता–पिता थे। मात्र दस प्रतिशत छात्र ही ऐसे थे जिनकी पसन्दगी अपने माता–पिता से अलग थी। इसके विपरीत न्यूकाम्ब (1943) ने स्पष्ट किया है कि युवा छात्र या व्यक्ति जब परस्पर मतों से प्रभावित होने लगते हैं, तो उनकी अभिवृत्ति भी परिवर्तित हो जाती है।

उपरोक्त उपागमों से स्पष्ट है कि इसमें दण्ड और पुरस्कार अभिवृत्ति निर्माण में भूमिका अदा करते हैं। बच्चा या एक मनुष्य उन व्यवहारों को सीखता है जिनके करने से किसी पुनर्बलन की प्राप्ति होती है। अभिवृत्तियों की अभिव्यक्ति मौखिक रूप से ज्यादा होती है, इसलिए प्रशंसा, डाँट तथा निन्दा, शक्तिशाली पुनर्बलन का कार्य करती है।

सीख की तीसरी प्रक्रिया, जिसके द्वारा अभिवृत्तियों का निर्माण होता है, उसे निरीक्षणात्मक सीख कहा जाता है। इसमें व्यक्ति दूसरों को देखकर नये प्रकार के व्यवहार या विचार ग्रहण करता है। बच्चों के द्वारा धूम्रपान करना और उनके प्रति अनुकूल विचार रखना निरीक्षणात्मक सीख का एक सरलतम उदाहरण है। बच्चों, युवाओं एवं व्यस्क सदस्यों द्वारा जनसंचार माध्यमों (प्रिंट एवं इलेक्ट्रानिक दोनों ही) से अभिवृत्तियों को निर्मित करना भी इसके अन्तर्गत ही आता है।

अभिवृत्तियों का निर्माण सामाजिक सीख के द्वारा ही नहीं होता है, अपितु सामाजिक तुलना द्वारा भी होता है। व्यक्ति सामाजिक यथार्थता के बारे में अपने विचारों की सत्यता जानने के लिए सामाजिक तुलना का सहारा लेता है। व्यक्ति अपने विचारों की तुलना बाकि लोगों से करते हैं। यदि बाकि लोगों के विचार भी उससे मिलते जुलते हैं तो वह निश्चिंत हो जाता है कि उसके विचार सही हैं। सामाजिक तुलना की प्रक्रिया अभिवृत्तियों के परिवर्तन लाती है और नई अभिवृत्तियों को निर्मित भी करती हैं। फेस्टिंगर (1954) ने अपनी पुस्तक में सामाजिक तुलना द्वारा अभिवृत्ति निर्माण पर प्रकाश डाला है। मैओ, ऐसेस व बेल (1994); शेव (1993) इत्यादि के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि दूसरे लोगों से किसी समूह के बारे में नकारात्मक विचार सुनकर व्यक्ति बगैर उनसे मिले ही उस समूह के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति निर्मित कर लेते हैं।

अभिवृत्तियाँ जन्मजात नहीं होतीं अपितु सीखी या निर्मित की जाती हैं। कई विद्वानों अर्वे व अन्य (1989), केलर व अन्य (1992) इत्यादि के अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि अभिवृत्ति निर्माण में आनुवांशिक कारकों का भी योगदान होता है। इस मत की पुष्टि समरूप जुड़वा बच्चों की अभिवृत्तियों में समानता द्वारा की गयी है। ऐसा पाया गया है कि समरूप जुड़वो की मनोवृत्ति भिन्न जुड़वों की अपेक्षा अधिक सह–सम्बन्धित थी साथ ही परिणामों ने यह भी प्रमाणित किया कि कुछ मनोवृत्तियों का निर्माण आनुवांशिक कारकों द्वारा भी होता है।

6.5 अभिवृत्ति के संघटक तत्त्व

अभिवृत्ति जिन तत्वों से संरचित होती है, उन्हें ही अभिवृत्ति के संघटक तत्व कहा जाता है। अभिवृत्ति की परिभाषाओं से ही उसके संघटक तत्त्वों का अनुमान लग जाता है, चाहे यह परिभाषा आलपोर्ट की हो या क्रच एवं क्रचफील्ड तथा अन्य की हो। वास्तव में अभिवृत्ति उन तीन संघटकों का स्थायी तंत्र है जिन्हें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक संघटक के रूप में जाना जाता है। अभिवृत्ति के तीनों संघटकों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

मनुष्य प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति या अन्यों के प्रति प्रत्यक्षीकरण जिस किसी भी रूप में करते हैं (शाब्दिक अथवा मौखिक या गैर मौखिक), वह संज्ञानात्मक संघटक को इंगित करता है। कुछ ब्राह्मणों का दलितों के प्रति एक विशेष प्रकार की धारणा अभिवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक का बोध कराती है। अभिवृत्ति–वस्तु (जो उपरोक्त उदाहरण में दलित है) के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक विश्वास, अभिवृत्ति का संज्ञानात्मक या प्रत्यक्षात्मक

संघटक है। यह विश्वास बहुधा स्थिर प्रकृति का होता है। इसमें परिवर्तन भी होता है और इसकी तीव्रता कम या ज्यादा हो सकती है। अभिवृत्ति प्रतिक्रिया करने की तत्परता की मानसिक एवं स्नाविक स्थिति है, यह अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति विश्वास को अभिव्यक्त करती है।

अभिवृत्ति का दूसरा संघटक भावात्मक संघटक है। भावनाएँ एवं संवेग इसके अन्तर्गत आती हैं जो अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति के भावों (पसन्दगी अथवा नापसन्दगी) को अभिव्यक्त करती हैं। भावात्मक संघटक किसी भी अभिवृत्ति का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। किसी अभिवृत्ति–वस्तु को अत्यधिक पसन्द करना, कम पसन्द करना या किसी अभिवृत्ति वस्तु को अत्यधिक नापसन्द करना, थोड़ा नापसन्द करने का भाव यह स्पष्ट करता है कि इसकी तीव्रता में व्यक्ति–व्यक्ति में अन्तर हो सकता है।

अभिवृत्ति का तीसरा संघटक तत्त्व क्रियात्मक संघटक होता है। चूँकि यह अभिवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति की क्रिया को अभिव्यक्त करता है, अतः इसे व्यवहार–संघटक भी कहा जाता है। अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है? क्या वह उससे दूरी बना लेता है या आक्रामक व्यवहार करता है या उससे घनिष्ठता बढ़ा लेता है? यह सब अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति की सकारात्मक अथवा नकारात्मक धारणा पर निर्भर करता है। अभिवृत्ति वस्तु के प्रति पसन्दगी या ना पसन्दगी व्यवहार के एक विशेष रूप को प्रदर्शित करती है। क्रियात्मक संघटक के अन्तर्गत अभिवृत्ति वस्तु से दूरी बना लेना, निकटता स्थापित करना, प्रेम करना, आक्रामक व्यवहार करना, शक्ति का प्रयोग करना इत्यादि सम्मिलित होता है।

उपरोक्त तीनों ही संघटक की किसी अभिवृत्ति वस्तु में उपस्थिति को एक उदाहरण द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक अत्यन्त परम्परागत ब्राह्मण की अभिव्यक्ति–वस्तु एक दलित व्यक्ति है। दलित व्यक्ति (अभिव्यक्ति–वस्तु) को देखते ही उसका विश्वास ताजा हो जाता है कि वह एक गन्दा व्यक्ति है यह विश्वास संज्ञात्मक संघटक है, फिर उसके गन्दे होने के प्रति विश्वास के कारण वह उसे नापसन्द करता है जो भावात्मक संघटक है, नापसन्दगी के चलते वह उससे पर्याप्त दूरी बना लेता है। यह दूरी बना लेना क्रियात्मक संघटक है। इसी तरह से प्रत्येक अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति मनुष्य का व्यवहार संचालित होता रहता है।

अभिवृत्ति के संघटकों का विश्लेषण यह भ्रम पैदा कर सकता है कि यह मनुष्य के व्यवहार की ही तीन स्थितियाँ हैं। वास्तविकता यह है कि अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर है। 1930 के दौरान प्रसिद्ध सामाजिक मनोवैज्ञानिक रिचर्ड टी ला पियरे ने गहन शोध कार्य करके यह प्रमाणित किया कि अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर है। अभिवृत्ति मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करती है लेकिन यह भी सच है कि अभिवृत्तियाँ हमारे बाहरी व्यवहार में कभी–कभी परिलक्षित नहीं भी होती हैं। आधुनिक काल में भी अभिवृत्ति और व्यवहार के मध्य सम्बन्धों के विविध पक्षों पर शोध कार्य जारी है। ला पियरे (1934) का अध्ययन स्पष्ट करता है कि मनोवृत्ति और व्यवहार में पर्याप्त अन्तर है। इसे आप एक सरल उदाहरण से आसानी से समझ सकते हैं कि लोग बोलते कुछ हैं और करते कुछ हैं। इतना ही नहीं जटिलता तब बढ़ सकती है जब हम यह कहते हैं कि मनुष्य सोचता कुछ है, बोलता कुछ है और करता कुछ है। वास्तविकता यह है कि, "अनेक कारक मनोवृत्ति व व्यवहार के मध्य सम्बन्ध के मॉडरेटर के रूप में काम करते हैं, और इस सम्बन्ध के सामर्थ्य को भी प्रभावित करते हैं।

- परिस्थितिजन्य निरोध हमें अपनी मनोवृत्ति को बाह्य रूप से अभिव्यक्त करने से रोकते हैं। इसके अतिरिक्त हम वैसी स्थितियों को पसन्द करते हैं जो हम अपनी मनोवृत्तियों को व्यक्त करने की अनुमति देती हैं और इससे ये मत भी मजबूत होते हैं।
- मनोवृत्तियों के अनेक पहलू भी मनोवृत्ति–व्यवहार सम्बन्ध को मॉडरेट करते हैं। इनके अन्तर्गत मनोवृत्ति–उत्पत्ति (कैसे मनोवृत्ति का निर्माण होता है), मनोवृत्ति–सामर्थ्य (इसके अन्दर मनोवृत्ति अभिगम्यता एवं महत्व शामिल है), और मनोवृत्ति विशिष्टता आते हैं।
- मनोवृत्ति अनेक तंत्रों के द्वारा व्यवहार को प्रभावित करती है। जब हम अपनी मनोवृत्ति को सावधानीपूर्वक विचार देते हैं, तो हमारी मनोवृत्ति से उत्पन्न अभिप्राय व्यवहार की बहुत अधिक भविष्यवाणी करता है। वैसी स्थितियों में जहाँ हम सोचे–समझे विचार में संलग्न रहते हैं, मनोवृत्ति उस स्थिति के बारे में हमारे प्रत्यक्षीकरण का निर्माण कर व्यवहार को प्रभावित करती है। तत्परता, वैयक्तिक मानदण्ड एवं आदिरूप भी मनोवृत्ति–व्यवहार सम्बन्ध पर असर डालते हैं।'' (बैरन एवं बायर्न, 2004 : 118)

6.6 पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन

यह सच है कि अभिवृत्तियों में स्थायित्व होता है। यद्यपि इनमें परिवर्तन भी देखा जा सकता है। परिवर्तन के विविध कारक होते हैं। अभिवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक में परिवर्तन भावनात्मक संघटक और क्रियात्मक संघटक में भी परिवर्तन लाता है।

अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति पूर्वाग्रह सकारात्मक या नकारात्मक विश्वास को बल देता है। सामान्यतः पूर्वाग्रह नकारात्मक अभिवृत्ति को इंगित करता है, परिणामस्वरूप क्रिया भी नकारात्मक ही होती है।

पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन की चर्चा के पूर्व पूर्वाग्रह के अर्थ को जानना जरूरी है। पूर्वाग्रह किसी व्यक्ति या सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति का द्योतक है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह और विभेदीकरण में अन्तर किया है। विभेदीकरण पूर्वाग्रह का क्रियात्मक पक्ष है। इसे क्रियात्मक पूर्वाग्रह भी कह सकते हैं। नकारात्मक मनोवृत्ति से नकारात्मक व्यवहार (विभेदीकरण) होता है।

उच्च जातियों का दलितों के प्रति पूर्वाग्रह होता है, पुरुषों का महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह होता है, गोरों का कालों के प्रति पूर्वाग्रह देखा जाता है, इसी तरह से पूर्वाग्रह के अनेक आधार होते हैं।

अभिवृत्तियाँ सीधे अनुभव के माध्यम से बदल जाती हैं। इसलिए कभी–कभी जब हम किसी के प्रति पूर्वाग्रही होते हैं और वो हमारे पूर्वाग्रह के आधारों को अपनी योग्यता कुशलता या अन्य आधारों पर तोड़ देता है तो हमारी पूर्वाग्रही अभिवृत्ति भी परिवर्तित हो जाती है। पूर्वाग्रह और नया अनुभव मनुष्य के संज्ञान के मध्य प्रत्याशा और अनुभव या वास्तविकता के मध्य असंगति उत्पन्न कर देता है। इस असंगति को सामान्यतः मनुष्य पुनर्व्यवस्थित करते हुए अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है। यह परिवर्तन आंशिक भी हो सकता है, पूर्ण भी हो सकता है और एक बार में ही हो सकता है, या कई बार के बाद हो सकता है। अति साफ–सुथरे दलित से मिलकर या अति धार्मिक दलित से मिलकर या अति धार्मिक दलित से मिलकर या अति सात्विक दलित से मिलकर पूर्वाग्रही सोच इसलिए

प्रभावित होती है कि अनुभव पूर्व धारणाओं से पूर्णतः अलग है। सोच और अनुभव की असंगति या प्रत्याशा और अनुभव असंगति अभिवृत्ति परिवर्तन का कारण बनती है।

भारत में महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार की अभिवृत्ति को अभिव्यक्त करता रहा है। आधुनिक काल में उनके प्रति पूर्वाग्रह और परिणामस्वरूप अभिवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन आ रहा है। अभिवृत्तियों के संज्ञानात्मक संघटक की अपेक्षा क्रियात्मक संघटक में ज्यादा परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है, और इसके प्रमुख कारण को आसानी से समझा जा सकता है, वह है कानूनी प्रावधान। व्यक्ति विशेष, समूह विशेष, जाति विशेष इत्यादि के प्रति एक विशेष प्रकार का नकारात्मक क्रियात्मक पक्ष कानून द्वारा प्रतिबन्धित हो जाने के कारण उसमें परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित है।

6.7 सार संक्षेप

अभिवृत्ति से सम्बन्धित उपरोक्त समस्त विवरण से अभिवृत्ति की न केवल अवधारणा स्पष्ट होती है अपितु हम विविध विद्वानों की परिभाषाओं से भी परिचित होते हैं। इसके साथ ही साथ हम अभिवृत्ति निर्माण के विविध पक्षों को समझते हैं तथा पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन के स्वरूप को विश्लेषित करते हैं।

अभिवृत्ति की सर्वमान्य वैज्ञानिक परिभाषा उपलब्ध नहीं है। विविध विद्वानों ने अभिवृत्ति को परिभाषित किया है अधिकांशतः विद्वानों ने अभिवृत्ति के किसी एक पक्ष–मूल्यांकन पक्ष या भाव पक्ष या क्रियात्मक पक्ष के आधार पर इसे परिभाषित किया है। उदाहरण के लिए गरगेन (1974) का कहना है कि, ''विशिष्ट वस्तुओं के प्रति विशेष रूपों में व्यवहार करने की प्रवृत्ति को अभिवृत्ति कहते हैं।'' यह अभिवृत्ति का मूल्यांकन पक्ष है। एडवर्ड्स् (1957) ने भाव पक्ष को महत्त्व दिया है। उनके अनुसार, ''किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु से सम्बद्ध सकारात्मक या नकारात्मक भाव की मात्रा को अभिवृत्ति कहते हैं।'' आलपोर्ट (1935) ने अभिवृत्ति की अपेक्षाकृत व्यापक परिभाषा दी है। उनके अनुसार ''अभिवृत्ति–प्रतिक्रिया करने की तत्परता की वह मानसिक एवं स्नायुविक स्थिति है जो अनुभव के कारण संगठित होती है, और जिसका निर्देशित या गत्यात्मक प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है।'' आलपोर्ट की परिभाषा से अभिवृत्ति के सभी पक्षों का ज्ञान होता है। इसके संघटक तत्त्वों के अन्तर्गत संज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तीनों ही आते हैं। इन तीनों संघटकों की कई विशेषताएँ होती हैं जैसे अनुकूलता या प्रतिकूलता, संगति, मनोवृत्ति–पुंज में अन्तर्सम्बद्धता इत्यादि–इत्यादि।

अभिवृत्ति एक मानसिक एवं स्नायविक अवस्था के साथ प्रतिक्रिया करने की एक तत्परता भी है। इसमें स्थायित्व होता है साथ ही विशेष कारकों के प्रभाव से परिवर्तन भी आता है। इसकी तीव्रता अलग–अलग लोगों में अलग–अलग प्रकार की होती है। अभिवृत्ति जन्मजात नही होती, यह अर्जित की जाती है। दिशा, तीव्रता, केन्द्रीयता, प्रमुखता तथा संगति के पाँच पहलू अभिवृत्ति के हैं।

अभिवृत्ति के निर्माण का प्रमुख स्रोत सामाजिक सीख है। परिवार, समूह, विद्यालय, कार्य स्थल तथा व्यक्तिगत अनुभव से अभिवृत्तियाँ विकसित होती है। सामाजिक सीख की तीन प्रक्रियाएँ होती हैं– साहचर्य आधारित, सही मत धारणा करने सम्बन्धी और उदाहरण द्वारा। अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर होता है। अभिवृत्तियाँ परिवर्तनशील भी होती हैं। हमारी पूर्वाग्रही अभिवृत्तियाँ तब परिवर्तित हो जाती हैं जब सोच और अनुभव में असंगति उत्पन्न हो जाती है।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. अभिवृत्ति की अवधारणा एवं परिभाषाएँ लिखिये ?
2. अभिवृत्ति की विशेषताओं का वर्णन कीजिये ?
3. अभिवृत्ति निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये ?
4. अभिवृत्ति के संघटक तत्वों का वर्णन कीजिये ?
5. पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन को समझाइये ?

6.9 पारिभाषिक शब्दावली

परिचय	Inroduction	अन्तर्वैयक्तिक	Interpersonal
औपचारिक	Formal	अभिवृत्ति	Attitude
अनौपचारिक	Informal	वर्णन	Explain
अवधारणा	Concept	साक्षात्कार	Interview
विशेषताएँ	Merits	संघटक	Factors
पूर्वाग्रह	Prejidice	परिवर्तन	Change

सन्दर्भ ग्रन्थ

- रॉबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न (2004)
- बी. कुप्पुस्वामी, 'समाज मनोविज्ञान के मूल तत्त्व', विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि., दिल्ली, 1975 (हिन्दी अनुवाद : श्रीकांत व्यास)
- Akolkar, V.V., 'Social Psychology', Asia Publishing House, Bombay, 1960.
- Allport, G.W., Attitude in Murchison (Ed.) Handbook of Build Psychology, Clark Un Press, Mass, 1935.
- Fazio, R.H. and Roskos-Ewoldsen, D.R. (1994), Acting as we Feel : When and How Attitudes Guide Behaviour in S. Shavitt and T.C. Brock (eds.), Persuasion, Bostan : Allyn and Bacon.
- Katz. D., 'The Functional Approach to the Study of Attitudes', Public Opinion Quarterly, Vol. 24,1960.
- Krech and Crutchfield, 'Theofy and Problems of Social Psychology', McGraw-Hill Book Co., New York, 1948.
- Sherif, M. and C.W. Sherif, "An Outline of Find Psychology', Harper and Bros', New York, 1956.
- Smith et.al., 'Opinions and Personality', Wiley, N.Y. 1956
- Tesser, A. and Martin, L. (1996). The Psychology of Evanation, in E.T. Higgins and A.W. Kruglanski (eds.), Social Psychology : Handbook of Basic Principles, New York : Guilford Press.
- Triandis, H.C. 'Attitude and Attitude Change', Wiley, N.Y. 1971.

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Allport, F.H. (1924) Social Psychology, Boston : Riverside Editions, Houghton Mifflin.
- Allport, G.W. (1954) Nature of Prejudice, Garden City, N.Y. : Double day.
- La Piere, RT, "Attitude vs. Actions", Reproduced in Bickman and Henely, Beyond the Laboratory, McGraw-Hill, 1972.

- Triandis, H.C., Attitude and Attitude Change, Wiley, N.Y., 1971.
- बी. कुप्पुस्वामी, 'समाज मनोविज्ञान के मूल तत्त्व', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, 1975 (हिन्दी अनुवाद–श्रीकान्त व्यास)।
- रौबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न, 'सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद), 2004, पीयरसन एजुकेशन प्रा.लि., भारतीय शाखा, दिल्ली, 2004.

इकाई –7

प्रेरणा

Motivation

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 परिचय
7.2 प्रेरणा
7.3 प्रेरणा की विशेषतायें
7.4 आवश्यकता की विशेषतायें
7.6 आवश्यकता के सामाजिक – सांस्कृतिक निर्धारक तत्व
7.7 समायोजन
7.8 समायोजन के स्तर
7.9 सामाजिक स्तर पर समायोजन
7.10 प्रतिबल
7.11 प्रतिबल का व्यक्तित्व पर प्रभाव
7.12 नैराश्य
7.13 नैराश्य का व्यक्तित्व पर प्रभाव
7.14 संघर्ष
7.15 संघर्ष का व्यक्तित्व पर प्रभाव
7.16 सार संक्षेप
7.17 अभ्यास प्रश्न
7.18 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य – इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- प्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- प्रेरणा की विशेषताओं को जान सकेगें।
- आवश्यकता क्या होती है? इसके अर्थ एवं परिभाषा को जान सकेगें।
- आवश्यकता के सामाजिक – सांस्कृतिक निर्धारकों के बारे में जान सकेगे।
- आवश्यकता की विशेषताओं के बारे में जान सकेगें।
- समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- विभिन्न स्तरों जैसे वैयक्तिक, सामाजिक तथा अन्य स्तरों पर समायोजन की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- प्रतिबल क्या होता है? तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में लिख सकेगें।

- नैराश्य क्या होता है? तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- संघर्ष क्या होता है? तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में लिख सकेगें।

7.1 परिचय

व्यवहार क्यो उत्पन्न होता है ? इसी संदर्भ में प्रेरणा का संप्रत्यय विकसित हुआ। मानव व्यवहार को संचालित करने वाली शक्ति ही प्रेरणा है। इसी शक्ति को आवश्यकता या इच्छा कहते है। किसी भी व्यवहार प्रक्रिया को समझने के लिए सम्बन्धित आवश्कताओं या इच्छाओं को जानना आवश्यक है। अभिप्रेरित तत्वों के कई रूप हो सकते हैं, जैसे– उद्देश्य, प्रवृत्तियॉं, इच्छाएँ, प्रयोजन, आकांक्षाएँ, रुचियॉं, आदत आदि। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि व्यवहार सामान्य हो अथवा असामान्य, उसका संचालन तथा नियन्त्रण आवश्यकता तथा प्रणोदन द्वारा होता है। अभिप्रेरणा का समायोजन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। व्यक्ति का व्यवहार अभिप्रेरणाओं के अधीन होने के कारण समायोजन प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसी आधार पर यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं एवं विचारों में समन्वय या समंजन स्थापित नहीं कर पाता है उसके व्यवहार को असमायोजित या कुसमायोजित की संबा दी जाती है। अतः यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति के सामान्य समायोजन में उसकी आवश्यकताओं तथा प्रेरणाओं का क्या प्रकार्य है ?

7.2 प्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ

'अभिप्रेरणा' शब्द की रचना लैटिन के मोटिक्स शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है। अतः प्रेरणा से व्यक्ति की वह आन्तरिक शक्ति या ऊर्जा का बोध होता है जिसके द्वारा व्यक्ति एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया करने के लिए उत्तेजित होता है। अतः अभिप्रेरणात्मक व्यवहार व्यक्ति की किसी आन्तरिक आवश्यकता से संचालित होता है। उदाहरण के लिए जब व्यक्ति को भूख लगती है तब भूख की आवश्यकता (शरीर में भोजन की कमी) व्यक्ति को विचलित कर उस व्यवहार की ओर उन्मुख करती है जिससे भोजन की प्राप्ति हो सके। इसका परिणाम यह होता है कि व्यवहार प्रेरणात्मक होने पर चयनात्मक तथा लक्ष्य निर्देशित हो जाता है। इस व्यवहार में निरन्तरता तब तक बनी रहती है जब तक लक्ष्य प्राप्ति ने हो जाय।

इस सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी है। **फिशर** का विचार है, 'प्रेरणा क्रिया की एक प्रवृत्ति या प्रणोदन है जिसमें कुछ अंश अभिस्थापन व निर्देशन से जुड़ा होता है।'

गिलफर्ड के विचारानुसार – 'प्रेरणा किसी खास आन्तरिक स्थिति या अवस्था को कहते हैं जो किसी क्रिया को प्रारम्भ करती है तथा उसे जारी रखती है।'

कोलमैन के अनुसार, 'प्रेरणा व्यक्ति की वह आन्तरिक दशा है जो व्यवहार को एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर उद्वेलित और निर्देशित करती है।'

शैरिफ, ग्लिमर तथा शोएन ने अपना विचार इस प्रकार रखा है कि 'अभिप्रेरणा व्यक्ति के क्रिया करने की उस प्रवृत्ति को कहेगें जो किसी प्रणोदन से आरम्भ होती है तथा अभियोजन में समाप्त होती है।'

इन परिभाषाओं से प्रेरणा की मुख्य प्रकृति यह स्पष्ट होती है कि प्रेरणा एक आन्तरिक कारक या स्थिति है जो किसी क्रिया या व्यवहार को एक निश्चित दिशा में जाग्रत करती है या उन्मुख करती है।

एक प्रेरणात्मक व्यवहार के क्या मुख्य आधार या कसौटियां है इसका उल्लेख काफर तथा एप्ली (1964) ने भी किया है जो इस प्रकार है –

1. प्रेरणा व्यक्ति को ऊर्जा प्रदान कर उत्तेजित करती है।
2. प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को चयनात्मक तथा लक्ष्योन्मुख बनाती है।
3. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार में तीव्रता तथा मन्दता उत्पन्न करती है।
4. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार में स्वशोधन करती है।
5. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार में उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वों का समाधान प्रस्तुत करती है।
6. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार को मितव्ययी बनाती है।

अभिप्रेरित व्यवहार का मुख्य कारण प्रणोदन व आवश्यकता है। इस संदर्भ में हल, हेब्ब आदि ने प्रत्येक प्रणोदन या 'अन्तनोद' की उत्पत्ति किसी न किसी शारीरिक आवश्यकता को माना है।

7.3 अभिप्रेरणा अथवा प्रेरणा की विशेषतायें

अभिप्रेरणा की निम्नलिखित विशेषतायें होती है –

1. प्रेरणा एक विशेष आन्तरिक अवस्था है।
2. इसके उत्पन्न होने से प्राणी में एक विशेष प्रकार का मानसिक तनाव तथा असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।
3. इस तनाव को दूर करने के लिए व्यक्ति लक्ष्य निर्देशित अनुक्रिया करता है।
4. यह क्रिया निरन्तर लक्ष्य प्राप्ति तक चलती रहती है तथा लक्ष्य के अनुरूप ही क्रिया का रूप भी बदलता रहता है।
5. लक्ष्य प्राप्ति के बाद तनाव एवं मानसिक असन्तुलन समाप्त हो जाता है।

7.4 आवश्यकता अर्थ एवं परिभाषा

आवश्यकता एक प्रकार से आन्तरिक अवस्था है। हर प्राणी की कुछ–न–कुछ आवश्यकताएं होती है। इनकी सन्तुष्टि तथा असन्तुष्टि से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है। बोरिंग तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता को एक ऐसा अभाव माना है जो शरीर में तनाव उत्पन्न करके ऐसा व्यवहार उत्पन्न करती है जिससे असन्तुलन समाप्त हो जाता है। हल के अनुसार प्रणोदन व्यवहार को ऊर्जा प्रदान करता है। इस प्रकार वातावरण की उन वस्तुओं को जो प्राणी का अस्तित्व व विकास करने में सहायता प्रदान करती है, आवश्यकता कहते है। अपना अस्तित्व बनाये रखने तथा अपने को विघटन से बचायें रखने के लिए व्यक्ति प्रयासरत् रहता है यह प्रवृति मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों स्तरों पर कार्यरत् रहती है।

7.5 आवश्यकता की विशेषताएं

आवश्यकता की अग्रलिखित विशेषताएं हैं –

1. आवश्यकता एक प्रकार से आन्तरिक विशेषता है।
2. प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ आवश्यकतायें अवश्य होती है।

3. आवश्यकता की सन्तुष्टि तथा असन्तुष्टि से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है।
4. आवश्यकता व्यक्ति को प्रेरणा प्रदान करती है।
5. आवश्यकता की अपूर्ति की अवस्था में व्यक्ति में प्रतिबल की वृद्धि होती है।

7.6 आवश्यकता के सामाजिक – सांस्कृतिक निर्धारक तत्व

1. **शारीरिक आवश्यकताएँ** – इसके अनतर्गत नींद से सम्बन्धित आवश्यकताएँ आती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अर्थात् यह आवश्यकताएँ व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यो को प्रभावित करती है। व्यक्ति ने प्रतिबल तभी बढ़ता है जब व्यक्ति की इन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ती है।
2. **सुरक्षा तथा पीड़ादायक उत्तेजनाओं का परिहार** – प्राणी की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह पीड़ादायक उत्तेजनाओं से बचना चाहता है। व्यक्ति के लिए भूख, प्यास, थकान, गर्मी, सर्दी तथा कुछ संवेग पीड़ादायक होते हैं। वह इनसे बचने के लिए अनेक सुरक्षा के उपाय ढूंढता है। विभिन्न प्रकार के समायोजनात्मक उपाय ढूंढता है किन्तु जब पीड़ाओं से बचने में स्वयं को असमर्थ पाता है तो कुसमायोजन प्रारम्भ हो जाता है।
3. **सैक्स** – इस जैविक प्रेरणा का मुख्य उद्देश्य सृजनात्मक है। इसे यौन–व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का व्यक्ति के यौन अभिप्रेरणाओं पर प्रभाव पड़ता है। यौन–व्यवहार में विचलन व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों स्तर पर पाये जाते हैं। सामाजिक स्तर पर नैतिक स्तर के अवमूल्यन के कारण व्यक्ति में सैक्स के प्रति प्रेरणात्मक व्यवहार परिवर्तित होता है। इस प्रकार शारीरिक आवश्यकताएँ आन्तरिक रूप से व्यक्ति को निरन्तर किसी लक्ष्य प्राप्ति के लिए उत्तेजित करती है जैसा कि पेज का विचार है –

इसके तीन प्रमुख प्रकार्य है –

1. शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि
2. प्राणी की शारीरिक आघात से रक्षा करना
3. ऐसी क्रियाओं को उत्तेजित करना जो प्राणी को प्रजनन एवं शिशु रक्षा के लिए सहायक हो।

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ

सम्य समाज में प्रायः जैविक आवश्यकताएँ तथा सुरक्षा प्रायः प्राणी को मिल ही जाती है इससे उन्हें संघर्ष या व्यवधान प्रायः नही के बराबर ही होता है जबकि कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अभाव में ही व्यक्ति में समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य में गिरावट तथा अन्तर्द्वन्द जैसे स्थितियाँ उत्पन्न होती है। इसके लिए पेज ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किये है –

आलपोर्ट महोदय ने इस मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को शारीरिक आवश्यकताओं से उत्पन्न वृहत रूप माना है। उसमें मुख्य आवश्यकताएँ हैं –

1. रक्षा
2. जिज्ञासा
3. प्रेम एवं अनुमोदन की आवश्यकता
4. सम्बन्धन

5. श्रेष्ठता
6. आत्म सम्मान

सामाजिक आवश्यकताएँ

मनुष्य स्वभाव से ही सामूहिकता की प्रवृत्ति लिए हुए होता है। व्यक्ति अपने समूह में समाज से जुड़ा रहता है। इसी सामाजिक अभिप्रेरणा के कारण व्यक्ति सामाजिक रीति–रिवाजों, प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करता है और अपने हर व्यवहार के लिए सामाजिक स्वीकृति चाहता है।

पेज ने मुख्य सामाजिक आवश्यकताएँ निम्नलिखित मानी है –

1. दूसरों से अनुक्रिया
2. मनोलैंगिक प्रेरणा
3. आदत एवं प्रेरणा
4. उत्तेजना

7.7 समायोजन का अर्थ व परिभाषा

एक छात्र अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाता है, पर दूसरे छात्रों की प्रतियोगिता और अपनी कम योग्यता के कारण वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल होता है। इससे वह निराशा और असन्तोष, मानसिक तनाव और संवेगात्मक संघर्ष का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में वह अपने मौलिक लक्ष्य को त्यागकर अर्थात् अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपनी असफलता के प्रति ध्यान न देकर वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाता है। अब यदि वह अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, तो वह अपनी परिस्थिति या वातावरण से 'समायोजन' कर लेता है। पर यदि उसे सफलता नही मिलती है, तो उसमें 'असमायोजन' उत्पन्न हो जाता है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए परिस्थितियों को अनुकूल बनाना या परिस्थितियों के अनुकूल हो जाना ही समायोजन कहलाता है। यह समायोजन व्यक्ति अपनी क्षमता, योग्यता के अनुसार करता है।

हम 'समयोजन' और 'असमायोजन' के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दे रहे हैं, यथा –

बोरिंग, लैंगफेल्ड व वेल्ड – ''समायोजन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन रखता है।''

गेट्स व अन्य – ''समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच संतुलित सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।''

गेट्स व अन्य – ''असमायोजन, व्यक्ति और उसके वातावरण में असन्तुलन का उल्लेख करता है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। साथ ही व्यक्ति, परिस्थिति तथा पर्यावरण के मध्य अपने को समायोजित करने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। अतः समायोजन को संतुलित दशा कहा गया है।

समायोजन की विशेषतायें

समायोजन करने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं –

1. परिस्थिति का ज्ञान, नियंत्रण तथा अनुकूल आचरण।

2. संतुलन।
3. पर्यावरण तथा परिस्थिति से लाभ उठाना।
4. समाज के अन्य व्यक्तियों का ध्यान।
5. संतुष्टि एवं सुख।
6. सामाजिकता, आदर्श चरित्र, संवेगात्मक रूप से अस्थिर, संतुलित तथा दायित्वपूर्ण।
7. साहसी एवं समस्या समाधान युक्त।

इसीलिये गेट्स ने कहा है – समायोजित व्यक्ति वह है जिसकी आवश्यकतायें एवं तृप्ति सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संगठित हो।

7.8 समायोजन के स्तर

यह कभी भी सम्भव नही है कि व्यक्ति की सभी इच्छाओं या आवश्यकताओं की पूर्ति हो, क्योंकि अनेक ऐसी इच्छाएँ होती है जो पूर्णतः समाज–विरोधी होती है या व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर होती है या कम अंश में ही पूर्ण होती है। अतः समायोजन को जानते समय यह भी जानना आवश्यक है कि समायोजन का क्या–क्या रूप हो सकता है। कभी–कभी व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं वातावरण की अनेक परिस्थितियों के साथ समायोजन करने में असफल रहता है या गलत ढंग से समायोजन कर लेता है। अतः यहाँ समायोजन के अन्य रूपों के सम्बन्ध में भी जानना आवश्यक है। यहां यह बताना उल्लेखनीय है कि समायोजन की विभिन्न श्रेणियों में किसी भी प्रकार की भेदक रेखा नही खींची जा सकती, क्योंकि इन श्रेणियों में प्रकार का अन्तर नही है बल्कि अंश या तीव्रता का अन्तर है। नीचे हम उन्हीं का क्रमबद्ध वर्णन कर रहे हैं –

समायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ – इस श्रेणी में व्यक्ति की वे प्रतिक्रियाएँ आती है जो परिस्थितियों के साथ मिलकर व्यक्त होती है। जब व्यक्ति एक कार्य करना चाहता है और बाधक परिस्थितियाँ उस कार्य में बाधा पहुँचाती है तो सबसे सामान्य तरीका यही है कि वह और मेहनत एवं बुद्विमानी से कार्य करे। जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा में फैल होने की कुण्ठा से बचाव करने के लिए अधिक मेहनत करता है और सामान्यतः ऐसा करने पर उसे सफलता भी मिलती है। इस प्रकार वह अपनी प्रेरणाओं में सन्तुलन रखता है और कुण्ठा का शिकार नहीं होता। इस प्रकार समायोजनात्मक प्रतिक्रियाओं में मुख्यतः व्यक्ति की रचनात्मक प्रतिक्रियाएँ आती है जिसमें व्यक्ति अपने वातावरण या सामाजिक नियमों या मान्यताओं को मानता है; एक रूढ़िवादी की तरह नहीं बल्कि एक सच्चे दृष्टिकोण के कारण; और अपनी प्रेरणाओं के साथ उनका सन्तुलन करने का प्रयास करता है। **सिगमण्ड्स** के मतानुसार, इस प्रकार की उपयुक्त प्रतिक्रियाओं से व्यक्तित्व विकास या व्यक्ति में परिपक्वता आती है। **सीशोर व कार्ट्ज** के अनुसार इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं की जाँच के लिए निम्नांकित आधारभूत तत्व हैं –

1. वे प्रतिक्रियाएँ जिनसे व्यक्ति को इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो या प्राप्ति में सहायक हो,
2. जिनसे व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो तथा निरन्तर वृद्धि हो,
3. जिनसे समाज को लाभ पहुंचे तथा साथ ही साथ किसी व्यक्ति को नुकसान भी नहीं पहुंचे,
4. जिनसे व्यक्ति में इस प्रकार के आत्मविश्वास का विकास होता है कि वह भविष्य की समस्याओं को साहस व दृढ़ता के साथ सुलझा सके।

7.9 अशान्त समायोजनात्मक या अर्द्ध–सन्तुलित प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति प्रेरणाओं को सिद्ध करने के लिए परिस्थितियों के साथ सन्तुलन करता है तो केवल यही सम्भव नही है कि उसकी प्रेरणा पूर्ण रूप से सन्तुष्ट ही हो जाय। दूसरे शब्दों में, सभी प्रेरणाएं पूर्ण रूप से समायोजनात्मक सिद्ध नहीं होती। कुछ में आंशिक समायोजन ही होता है; उदाहरण स्वरूप, एक विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे नम्बर लाने के लिए मेहनत के स्थान पर यह दिवास्वप्न देखता है कि पेपर आउट हो जायेगा, कापी जांचने वाले निरीक्षक का पता चल जायेगा, आदि। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी कल्पनाओं के माध्यम से आंशिक समायोजन स्थापित कर लेगा, परन्तु उसे पूर्ण सन्तोष प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार की प्रक्रियाओं को ही अंशतः समायोजनात्मक या अर्द्ध–सन्तुलित प्रतिक्रियाएँ कहते हैं। फिशर ने इसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति आदि क्रियाओं को रखा है।

असमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं का परिस्थितियों के साथ समायोजन नहीं कर पाता तो उन्हें असमायोजनात्मक प्रतिक्रिया कहते है। व्यक्ति सामाजिक व बौद्धिक प्राणी होने के फलस्वरूप अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है। उसके सम्मुख विभिन्न प्रेरकों की सन्तुष्टि करने की समस्या रहती है। जब व्यक्ति ऐसे कार्यो को निरन्तर करता रहता है जिनसे कि समायोजन में बाधा पहुंचती है तो इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को असमायोजित प्रतिक्रियाएँ कहते है; जैसे – मद्यपान की आदत डालना जिससे कि वह स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सके। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को करने वाला व्यक्ति परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने से इन्कार कर देता है। वह यह निश्चय कर लेता है कि उसे परिस्थितियों के प्रति निषेधात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करनी है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत प्रतिगम तथा शैशवकालीन व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाएँ भी आती है। व्यक्ति कभी–कभी एक विशेष प्रेरणा या आवश्यकता पर ध्यान नहीं देता तथा अन्य क्रियाएँ करने में लगा रहता है। ऐसी अवस्था में वह प्रेरणा कुण्ठित हो जाती है तथा उस कुण्ठित प्रेरणा का दमन होना शुरू हो जाता है। दमन के प्रयास को ही असमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते है।

विसमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ

इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में वे प्रतिक्रियाएँ आती है जिनका गलत ढंग से समायोजन होता है। इस प्रकार का समायोजन क्योंकि व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए हानिकारक है अतः इसे विसमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते है। इस प्रकार की क्रियाएँ करने वाले व्यक्तियों की समाज में आलोचना होती है तथा धीरे–धीरे इनका व्यवहार सामान्य व्यवहार से भिन्न होने लगता है। इस प्रकार के व्यक्ति न तो स्वयं ही उन्नति कर पाते हैं और न ही इनके द्वारा समाज व देश की ही उन्नति होती है। उसका सामाजिक सम्बन्ध धीरे–धीरे बिगड़ता जाता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं से अनेक असामान्य व्यवहार व मानसिक विकृतियों का जन्म होता है। इस प्रकार से इन प्रतिक्रियाओं के कारण व्यक्ति को न तो इच्छित लक्ष्य की ही प्राप्ति होती है और न ही इनकी सहायता से भावी समस्याओं के समाधान में ही सहायता प्राप्त होती है। ये व्यक्ति व्यर्थ में ही दिवास्वप्नों में लीन होकर अपना समय बरबाद करते है। विफलताओं से बचाव के लिए वह प्रेरणाओं को अधिक दमित करना सीख लेता है तथा अत्यधिक दमन के कारण व्यक्ति दैनिक जीवन की अनेक भूलों, असामान्य व्यवहारों व मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होता जाता है। उसके अन्दर सदैव एक हलचल बनी रहती है जिससे उसमें आत्मविश्वास व उत्साह की असमर्थता आ

जाती है। **सीशोर व कार्ट्ज** के अनुसार, असमायोजित प्रतिक्रियाओं में निम्न तत्व निहित रहते हैं –

1. जो व्यक्ति को इच्छित एवं प्रारम्भिक लक्ष्य या उसके उपयुक्त स्थानापन्न लक्ष्य की प्राप्ति से दूर ले जाये।
2. जो व्यक्ति को केवल अस्थायी सात्वना प्रदान करे तथा वास्तव में हानिकारक हो।
3. जिसके कारण व्यक्ति समाज का बोझ समझा जाये। वह अन्य व्यक्तियों से तो सहायता ले परन्तु दूसरों की सहायता न कर सके।
4. जिससे व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचे, उसकी कार्यक्षमता में ह्रास हो या आत्मविश्वास की कमी।

फिशर ने इन प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत अवदमन ,आरोपण, बाध्यतामूलक आदि क्रियाओं को रखा है।

7.10 प्रतिबल की परिभाषा

अन्तर्द्वन्द प्रतिबल का ही एक रूप है। फ्रायड के अनुसार असामान्यता का स्रोत प्रतिबल है। कठिनाइयाँ मानव के लिए मुश्किल तो है लेकिन अगर मानव–जीवन में कठिनाइयाँ न हो तो जीवन स्थिर हो जायेगा। क्योकि कठिनाइयाँ के कारण हमारे अन्दर जीवित रहने की इच्छा पैदा होती है लेकिन अगर कठिनाइयाँ बहुत अधिक हो जाये तो वही असामान्यता का रूप ले लेती हैं तथा इसी को प्रतिबल कहते हैं। जिस समय तक हम खाना नही खा लेते या अपनी इच्छाओं की पूर्ति नही कर लेते तब तक हमें अपने अन्दर प्रतिबल की भावना का अनुभव होता रहता है। प्रतिबल उत्पन्न होने के तीन कारण हैं –

1. विफलता या नैराश्य **2.** अन्तर्द्वन्द **3.** कष्ट, भार या दबाव

मान लीजिए कि एक बच्चे की माँ सेब लाती है। बच्चे के अन्दर उस सेब को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। मगर माँ उस सेब को छुपा कर ऐसे स्थान पर रख देती है जहाँ बच्चा नही पहुंच पाता। बच्चा सेब को किए प्रकार प्राप्त करे ? क्योंकि उसके सामने यह समस्या है कि वह रखे हुए सेब तक नही पहुंच सकता। ऐसी अवस्था में वह तीन प्रकार का व्यवहार करेगा : 1. या तो वह आक्रामक प्रकार का व्यवहार करेगा, 2. अपने को परिस्थिति से प्रत्याहरण करेगा, या 3. परिस्थिति के साथ किसी प्रकार का समझौता करेगा। परिस्थिति की आक्रामकता में वह बच्चा प्रयास व त्रुटि विधि का सहारा लेगा तथा सेब को प्राप्त करने का प्रयास करेगा। प्रत्याहरण में यह प्रयास करना बन्द करके रोना शुरू कर देगा। लेकिन समझौते में वह अपनी माँ से यह कहेगा कि अच्छा सेब दीदी को दे दो, मुझे कुछ और चीज दे दो। एक परिस्थिति के साथ इस तीन प्रकार का जो व्यवहार होगा, वह व्यक्ति के आकांक्षा स्तर पर निर्भर होगा। सामान्य रूप से प्रतिबल अधिक हानिकारक होता है। इसमें व्यक्ति के अधिक महत्वपूर्ण प्रेरक अवरुद्ध हो जाते है। इस प्रकार की परिस्थिति काफी समय तक व्यक्ति के सम्मुख बनी रहती है, जिससे व्यक्ति के सम्मुख अपरिचित व असम्भावित समस्याओं की उपस्थिति होती है। व्यक्ति इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता और वह अपने को इन समस्याओं पर नियन्त्रण करने में असमर्थ पाता है।

कोलमैन के शब्दों में –

प्रतिबल दो प्रकार का होता है : 1. शारीरिक, व 2. मानसिक, उदाहरणार्थ – जब व्यक्ति को ज्वर आ जाता है तब उसके शरीर का प्रत्येक अंग व प्रत्येक तन्तु तापक्रम से

प्रभावित हो जाता है। यह स्थिति शारीरिक प्रतिबल का ही एक रूप है। द्वितीय रूप में जब व्यक्ति अधिक परिश्रम करता है और तब भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों; तथा–क्लेश, व्यक्तिगत असफलताएँ आदि भी प्रतिबल का कारण होती है। प्रतिबल का सामूहिक रूप भी है; जैसे– युद्ध आदि।

7.11 प्रतिबल का प्रभाव

प्रतिबल व्यक्ति के व्यवहार पर अग्रलिखित प्रभाव पड़ता है –

1. व्यक्ति अक्रामक व्यवहार करने लगता है तथा बात–बात पर झगड़ने लगता है।
2. व्यक्ति अपने को परिस्थिति से अलग कर लेता है अर्थात् वह परिस्थिति से बचना लगता है।
3. व्यक्ति परिस्थिति की अक्रामकता से बचने के लिए प्रयास व त्रुटि विधि का सहारा लेने लगता है।
4. व्यक्ति में अधिक महत्वपूर्ण प्रेरक अवरुद्ध हो जाते है।
5. व्यक्ति के सम्मुख अपरिचित व असम्भावित समस्याओं की उपस्थिति होने लगती है।

7.12 नैराश्य का अर्थ एवं परिभाषा

व्यक्ति की अनेक इच्छायें और आवश्यकतायें होती है। वह उनको सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है। पर यह आवश्यक नही है कि वह ऐसा करने में सफल ही हो। उसके मार्ग में बाधायें आ सकती हैं। वे बाधायें उसकी आशाओं को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से भंग कर सकती है। ऐसी दशा में वह नैराश्य का अनुभव करता है। उदाहरणार्थ, हम प्रातःकाल चार बजे की गाड़ी से दिल्ली जाना चाहते हैं। हम समय से पहले उठने के लिए अलार्म घड़ी में चाभी लगा देते हैं, पर वह बजती नही है। अतः हम जाग नही पाते हैं और दिल्ली जाने से रह जाते है। या मान लीजिए कि हम समय पर स्टेशन पहुंच जाते है। पर भीड़ के कारण हमें टिकट नहीं मिल पाती है या हम गाड़ी में नहीं बैठ पाते हैं और वह चली जाती है। दोनों दशाओं में दिल्ली जाने की हमारी इच्छा में अवरोध उत्पन्न होता है। वह पूर्ण नहीं होती है, जिसके फलस्वरूप हम 'नैराश्य' का शिकार बनते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'नैराश्य' तनाव और असमायोजन की वह दशा है, जो हमारी किसी इच्छा या आवश्यकता के मार्ग में बांधा आने से उत्पन्न होती है। हम 'नैराश्य' अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए दो परिभाषाएँ दे रहे हैं; यथा –

1. **गुडे** – "नैराश्य का अर्थ है – किसी इच्छा या आवश्यकता में बाधा पढ़ने से उत्पन्न होने वाला संवेगात्मक तनाव।"
2. **कोलेसनिक** – "नैराश्य उस आवश्यकता की पूर्ति या लक्ष्य की प्राप्ति में अवरुद्ध होने या निष्फल होने की भावना है, जिसे व्यक्ति महत्त्वपूर्ण समझता है।"

नैराश्य के प्रकार

'नैराश्य' दो प्रकार की होती है–

1. **बाह्म** – बाह्म नैराश्य उस परिस्थिति का परिणाम होती है, जिसमें कोई बाह्म बाधा, व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने से रोकती है। उदाहरणार्थ, भौतिक बाधाओं, नियमों, कानूनों या दूसरों के अधिकारों या इच्छाओं का परिणाम बाह्म नैराश्य हो सकती है।

2. **आन्तरिक** – आन्तरिक नैराश्य उस बाधा का परिणाम होती है, जो स्वयं व्यक्ति में होती है। उदाहरणार्थ, भय जो व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने से रोकता है या व्यक्तिगत कमियों (जैसे– पर्याप्त ज्ञान, शक्ति, साहस या कुशलता का अभाव) का परिणाम–आन्तरिक नैराश्य हो सकती है।

7.13 नैराश्य का प्रभाव

नैराश्य की दशा में बालक या व्यक्ति चार प्रकार का व्यवहार करता है–

1. वह आक्रमणकारी बन जाता है।
2. वह आत्मसमर्पण कर देता है।
3. वह कुछ समय के लिए एकान्तवासी बन जाता है।
4. वह किसी रोग से ग्रस्त होने का विचार करता है। पर यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार का कोई व्यवहार करने वाला व्यक्ति–नैराश्य का शिकार है। इस विचार की पुष्टि करते हुए मोर्स एवं विंगो ने लिखा है– ''जो व्यक्ति, नैराश्य का शिकार होता है, वह इन चारों प्रकार के व्यवहार में से किसी प्रकार का व्यवहार करता है, पर यह आवश्यक नही है कि इन चारों प्रकार से व्यवहारों में से किसी प्रकार का व्यवहार करने वाला व्यक्ति, नैराश्य का शिकार है।''

7.14 संघर्ष का अर्थ व परिभाषा

व्यक्ति को लक्ष्य–प्राप्ति के दौरान अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कई बार समय कम होने, अनेक विकल्पों में से एक को चुनने तथा लक्ष्य प्राप्ति के बाद अगले लक्ष्य के निर्धारण में अनेक बाधायें आती हैं। ऐसे समय में मानसिक द्वन्द्व या संघर्ष उत्पन्न होने लगता है। यह स्थिति मानसिक उथल–पुथल की स्थिति होती है।

'संघर्ष' का सामान्य अर्थ है– विपरीत विचारों, इच्छाओं, उद्देश्यों आदि का विरोध। 'संघर्ष' की दशा में व्यक्ति में संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है, उसकी मानसिक शान्ति नष्ट हो जाती है और वह किसी प्रकार का निर्णय करने में असमर्थ होता है।

'संघर्ष' के अनेक रूप हो सकते हैं; जैसे – एक व्यक्ति का दूसरे से संघर्ष, व्यक्ति का उसके वातावरण से संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष आदि। इन सबसे कहीं अधिक गम्भीर और भयानक है – आन्तरिक संघर्ष। यह संघर्ष, व्यक्ति के विचारों, संवेगों, इच्छाओं, भावनाओं, दृष्टिकोणों आदि में होता है।

'संघर्ष' का मुख्य आधार – उचित और अनुचित का विचार होता है। उदाहरणार्थ, बालक जानता है कि उसके पिताजी का बटुआ अल्मारी में रखा रहता है। वह उसके बारे में सोचने लगता है। वह उसमें से कुछ धन निकाल लेना चाहता है। पर वह यह समझता है कि चोरी करना अनुचित कार्य है और यदि उसकी चोरी का पता लग जाएगा, तो उसको दण्ड मिलेगा। वह इन विरोधी बातों पर विचार करता है। फलस्वरूप, उसमें मानसिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है। वह इसका अन्त केवल उत्तम और उचित कार्य को करने का निर्णय करके ही कर सकता है।

'संघर्ष' की कुछ परिभाषाएँ दृष्टव्य है –

डगलस व हालैंड – ''संघर्ष का अर्थ है– विशेष और विपरीत इच्छाओं में तनाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली कष्टदायक संवेगात्मक दशा।''

क्रो व क्रो के अनुसार ''संघर्ष उस समय उत्पन्न होते हैं, जब व्यक्ति को अपने वातावरण में ऐसी शक्तियों का सामना करना पड़ता है, जो उसके स्वयं के हितों और इच्छाओं के विरुद्ध कार्य करती है।''
फ्रायड के अनुसार ''इदम्, अहम्, पराहम् के मध्य सामन्जस्य का अभाव होने से मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है।''

7.15 संघर्ष का प्रभाव

संघर्ष से व्यक्तियों अथवा बच्चों पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है –

1. बालकों एवं व्यक्तियों के समक्ष किसी भी कार्य को करने में मानसिक उलझन उत्पन्न हो जाती है।
2. बालकों व व्यक्तियों को निराशाओं और असफलताओं का सामना करना पड़ता है।
3. बालकों और व्यक्तियों के समक्ष विरोधी प्रश्नों के चुनाव में कठिनाई आती है।
4. बालकों व व्यक्तियों के समक्ष परिस्थितियों का सामना करने में कठिनाई आती है।
5. बालकों और व्यक्त्यिों के समक्ष असन्तोषजनक परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है।
6. बालकों व व्यक्तियों का लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में प्रयास विफल होने लगता है।
7. बालकों और व्यक्तियों में निर्णय करने की क्षमता समाप्त होनी लगती है।
8. बालकों और व्यक्तियों के सामने मानसिक व सांमवेगिंक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं।
9. बालकों व व्यक्तियों के समक्ष परिवार व विद्यालय के पर्यावरण के बीच में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

7.16 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में प्रेरणा अथवा संप्रेरणा की परिभाषा और अर्थ के बारे में प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ प्रेरणा की विशेषताएं भी दी गई है। प्रस्तुत इकाई में ही आवश्यकता का अर्थ व परिभाषा प्रस्तुत की गई है एवं जैविक आवश्यकतायें, मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें, सामाजिक आवश्यकतायें आदि के बारे में वृहद चर्चा की गई है। प्रस्तुत इकाई में समायोजन की परिभाषा, अर्थ तथा विशेषताएं भी प्रदान की गई है एवं समायोजन का विभिन्न स्तरों पर समायोजनात्मक क्रिया के बारे में भी प्रकाश डाला गया है। इसी इकाई में प्रतिबल की परिभाषा तथा इसका व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। नैराश्य क्या होता है? तथा उसकी विशेषताएं क्या होती है के बारे में चर्चा की गई है एवं नैराश्य के प्रकार व इसका प्रभाव व्यक्ति पर कैसे पड़ता है, के बारे में विशेष प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत इकाई में ही संघर्ष का अर्थ व परिभाषा एवं संघर्ष का व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में लिखा गया है।

7.17 अभ्यास प्रश्न

8. प्रेरणा से आप क्या समझते हैं?
9. प्रेरणा की परिभाषा एवं विशेषताएं लिखिए?
10. आवश्यकता क्या है?
11. शारीरिक आवश्यकतायें क्या होती है? वर्णन कीजिए।
12. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर एक टिप्पणी लिखिए?
13. सामाजिक आवश्यकतायें क्या होती हे?
14. समायोजन क्या है?

15. समायोजन की विशेषताएं लिखिए?
16. व्यक्ति के विभिन्न स्तरों पर समायोजन की प्रक्रियाओं के बारे में लिखिए।
17. नैराश्य क्या होता है? तथा इसका व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?
18. प्रतिबल क्या होता है? तथा इसका व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?
19. संघर्ष क्या होता है? तथा इसका मानव व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?

7.18 परिभाषिक शब्दावली

Motivation	प्रेरणा	Psychosexual	मनोलैगिंक
Need	आवश्यकता	Aggressiveness	उत्तेजना
Adjustment	समायोजन	Somato	दैहिक
Selective	चयनात्मक	Maladjustment	असमायोजन
Drive	चलन	Frustration	नैराश्य
Pain	पीड़ा	Conflict	संघर्ष
Organic Needs	शारीरिक आवश्यकतायें	Stress	प्रतिबल
Favourable	सहायक	Tension	तनाव
Response	अनुक्रिया	Painful	कष्टदायक
Goal Object	डचित वस्तु उद्देश्य	Opposite Goals	विरोधी लक्ष्य
Circumstances	परिस्थितियां	Moral Ideals	नैतिक आदर्श

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3. सिंह, लाभ एवं तिवारी गोविन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2001, पेज 99–103 तथा 130–131.
4. पाठक, पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, वर्ष 2007, पेज 420–422. तथा 426–427.

इकाई–8

वंशानुक्रम तथा पर्यावरण
Heredity & Environment

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 परिचय
8.2 वंशानुक्रम
    8.2.1 हेरीडिटी (Heredity) शब्द का व्याख्या
8.3 जीव रचना (Mechanism)
8.4 वंशानुक्रम के नियम
    8.4.1 वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव
8.5 प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ
8.6 वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन
8.7 पर्यावरण के प्रकार
    8.7.1 पर्यावरण का प्रभाव
    8.7.2 वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व
8.8 सार संक्षेप
8.9 अभ्यास प्रश्न
8.10 पारिभाषिक शब्दावली
    सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- वंशानुक्रम का अर्थ निरूपित कर सकेगें ।
- हेरीडिटी (Heredity) शब्द का व्याख्या
- जीव रचना (Mechanism) की व्याख्या सकेगें ।
- वंशानुक्रम के नियम जान सकेगें ।
- वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव जान सकेगें ।
- प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियों को जान सकेगें ।
- वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन कर सकेगें ।
- पर्यावरण के प्रकार को समझ सकेगें ।
- वंशानुक्रम पर पर्यावरण का प्रभाव जान सकेगें ।
- वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व समझ सकेगें ।

8.1 परिचय

व्यक्ति का जीवन वंशानुक्रम द्वारा ही सम्भव होता है। उसकी मनोशारीरिक रचना पर वंशानुक्रम सम्बन्धी कारकों का विशेष प्रभाव पड़ता है। बालक की शारीरिक तथा मानसिक

रचना का जनक वंशानुक्रम है। अतः वंशानुक्रम का अर्थ तथा उसके प्रभाव को जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

8.2 वंशानुक्रम का अर्थ (Meaning)

व्यक्ति जिन गुणां एवं विशेषताओं को अपने वंश में प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं। अर्थात् जिस प्रक्रिया द्वारा वह शारीरिक व मानसिक विशेषतायें प्राप्त होती है उसे वंशानुक्रम कहते हैं।

रूथ, वेनेडिक्ट : वंशानुक्रम का अर्थ माता पिता से उनकी सन्तानों में विविध गुणों का संचरण है।

BENEDICT, RUTH: Heredity is the transmission of traints from parents to off springs.

फेयरचाइल्ड, एच0पी0 : वंशानुक्रम का अर्थ माता पिता से उनकी सन्तानों में शारीरिक (जन्मजात मनोवैज्ञानिक सहित) गुणों का संचरण है।

FAIRCHILD, H.P. : Heredity means the transmission of physical traits (including innate phychological) from parents to off springs.2

Pt in C p-Heredity

Pt-Parental traits, CP-Child personality

The process through which parental traits are brought in child's personality is known as heredity.

जिस विधि के द्वारा माता–पिता के गुण बालक के व्यक्तित्व में लाये जाते हैं, उसे वंशानुक्रम कहते हैं।

8.2.1 हेरीडिटी (Heredity) शब्द की व्याख्या

H – Human life	E-Emotions
R-Reasoning	E-Explaining capacity
D-Developmental traits	I-Integrating power
T-Talent temperament	Y-Yielding

वंशानुक्रम मानव जीवन सम्भव बनाता है तथा उनमें संवेग, तर्क शक्ति, बात–चीत करने की शक्ति, बुद्धि, विकासात्मक गुण, आन्तरिक शक्ति तथा कार्यात्मक क्षमता का समावेश करता है।

8-3 जीव रचना (Mechanism)

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार बालक में माता–पिता से उनके गुणों का संचरण होता है। इसको समझने के लिए जीव रचना को समझना आवश्यक है। व्यक्ति का शरीर अनेक कोष्ठों से बना है। ये कोष्ठ (Cells) शरीर के प्रत्येक अंग में पाये जाते हैं और शरीर को क्रियाशील बनाते हैं। भ्रूण (Embryo) की रचना युक्त (Zygote) से होती है। युक्त का निर्माण पुरुष के शुक्राणु (Sperm) तथा स्त्री के अण्ड (Ovam) के मिलने से बनता है। पुरुष स्त्री के लैंगिक समागम से पुरुष का शुक्र (Sperm) गर्भाशय में पहुंचता है और स्त्री का अण्ड भी गर्भाशय नाल (Fallopian Tube) द्वारा गर्भाशय में आता है और दोनों का मिलाप होता है जिसके परिणाम स्वरूप निषेचन क्रिया (Fertilization) सम्भव होती है

और भ्रूण का निर्माण होता है। शुक्र तथा अण्ड दोनों में विशेष गुण होते हैं अतः वे भ्रूण में आ जाते हैं। गर्भ पूरा होने पर बच्चे का जन्म होता है।

पुरुष में शुक्राणु (Sperms) तथा स्त्री में अण्ड (Ovam) की उत्पत्ति जनन ग्रन्थि से होती है। प्रत्येक मासिक धर्म में डिम्बग्रन्थि से एक–एक डिम्ब ग्रन्थि तैयार होती है। यह डिम्ब ग्रन्थि से डिम्ब प्रणाली (Oviduct) में आ जाता है। इस प्रक्रिया को (Ovulation) कहते हैं। यद्यपि प्रत्येक स्त्री–पुरुष संसर्ग में अनेकों शुक्राणु बाहर आकर डिम्ब से मिलते हैं परन्तु उनमें केवल एक ही डिम्ब प्रणाली में उपस्थित डिम्ब से मिलता है तभी नया जीवन प्रारमी होता है। इस निषेचित अण्ड (Fertilized Ovum) में 46 क्रोमोसोम्स होते हैं जो आधे माता तथा आधे पिता के होते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों के डिम्ब तथा शुक्राणु में 23–23 क्रोमोसोम्स होते हैं तथा प्रत्येक क्रोमोसोम्स में 40–100 तक जीन्स (Genes) होते हैं। जीन्स ही माता–पिता के गुणों को बालक में ले जाते हैं। बालक का रंग, रूप, लम्बाई, चौड़ाई, बनावट आदि इसी आधार से निश्चित होती है।

8.4 वंशानुक्रम के नियम (Laws of Heritance)

वंशानुक्रम के तीन मुख्य नियम माने जाते हैं:

1. समान को जन्म देता है (Like begets like)
2. भिन्नता का नियम (Law of variation)
3. प्रत्ययागमन (Regression)

वंशानुक्रम का सत्य नियम है कि अपने ही अनुरूप एवं समान जीव का विकास होता है। वे ही विशेषतायें होती हैं जो माता–पिता में होती हैं। साथ ही साथ दूसरा नियम यह है कि सन्तान पूर्णतया माता–पिता के समान नहीं होती है, उसके शारीरिक बनावट में भिन्नता पाई जाती है। इसका कारण माता–पिता के जीन्स बालक में अलग–अलग स्थान ग्रहण करते हैं, अतः भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। माता–पिता की संतानों में भी भिन्नता होती है, इसका कारण प्रमुख और गौरण जीन्स के गुण होते हैं। तीसरा नियम यह है कि प्रतिभाशाली माता–पिता की सन्तान प्रतिभाशाली तथा निम्नकोटि के माता–पिता की सन्तान निम्नकोटि की होती है। माता–पिता जो प्रतिभाशाली होते हैं उनके माता–पिता के बीजकोष उन्हें प्रतिभाशाली बनाते हैं। जब उनके बीजकोषों का समागम होता है तो बुद्धिमान बालक का जन्म होता है। परन्तु सदैव माता–पिता अथवा दादा–दादी प्रतिभावाना नहीं हुआ करते हैं। अतः जब पैतृक प्रतिभावान कम प्रतिभावना से मिलते हैं तो बालक में गुण निम्नकोटि के उत्पन्न होते हैं।

स्त्री प्रतिभावान

प्रतिभावान बालक

पुरुष प्रतिभावन

पुरुष प्रतिभावान

कम प्रतिभावान बालक

स्त्री कम प्रतिभावान

8.4.1 वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव

व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषतायें वंशानुक्रम द्वारा प्रभावित होती हैं:

1. **शारीरिक रचना** (Body Construction)
2. शरीर का आकार, कद, त्वचा, बालों तथा नेत्रों का रंग, लम्बाई, गठन इत्यादि वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं।
3. **क्रियात्मक क्षमता** (Functional Ability)
4. शारीरिक बल, रुधिर वर्गीकरण, प्रजजन, रोगों के प्रति संवेदनशीलता आदि
5. क्रियात्मक लक्षण होते हैं जो वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं।
6. **मानसिक विशेषतायें** (Mental Traits)
7. बुद्धि, क्षीण–मानसिकता, मूर्खता, चतुराई, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक योग्यता आदि
8. लक्षणों पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है।
9. **असामान्य गुण** (Abnormal Traits)
10. इसमें रजकहीनता, कोढ़, रंग अंधापन, रतौंधी आदि सम्मिलित हैं। ये वंशानुक्रम
11. द्वारा हस्तांतरित होते हैं।

वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव

क्षेत्र तथा संकुल	विशिष्ट गुण
1. शारीरिक	
शरीर का अकार :	1. लम्बाई 2. भार 3. मोटाई 40 गठन
रंग :	1. त्वचा का रंग 2. बालों का रंग 3. आँखों की पलकों का रंग
बनावट :	1. शरीर की बनावट 2. मुँह की बनावट 3. आँखों की बनावट 4. सर की बनावट
असामान्यता :	1. शारीरिक दोष 2. मानसिक दोष 3. रोग जैसे रतौंधी, मनोविदलाता, कोढ़ आदि
ध्वनि :	1. तीव्र 2. मध्यम
2. मानसिक	
बुद्धि :	1. अत्युत्कृष्ठ 2. उत्कृष्ट 3. सामान्य से ऊपर 4. सामान्य से नीचे 5. मूर्ख 6. मूढ़ 7. जड़
भावना :	1. आशा 2. निराशा 3. चिड़चिड़ापन 4. अस्थिरता
स्वेग :	1. क्रोध 2. झगडालूपन 3. सहानुभूति 4. प्रेम 5. भय 6. चिंता 7. हंसी
3. क्रियात्मक	
बल :	1. शारीरिक बल 2. मानसिक बल 3. आत्म बल 4. लैंगिकता
रुधिर :	A, AB,B,O
प्रजनन क्षमता:	1. कामेक्षा 2. सन्तानोत्पत्ति की शक्ति 3. बालक होने का अन्तराल
रोगों के प्रति संवेदनशीलता :	1. शरीर की नाजुकता 2. सहनशीलता

8.5 प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ (Primary Reaction Tendencies)

कार्यात्मक स्तर : 1. अति सक्रियता 2. कम सक्रियता 3. निष्क्रियता
अनुकूलन : 1. सामान्य अनुकूल 2. मंद अनुकूलन
3. कठिनाइयाँ
संवेदनशीलता : 1. अति 2. कम
समस्या समाधान : 1. प्रत्यक्षीकरण 2. कल्पना 3. अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता 4. तर्क शक्ति

Thus, heredity not only provides the potentialities for development and behaviour of the species but also is an important source of individual differences.

8.6 वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन

वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव कहाँ तक महत्वपूर्ण होता है इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु यह निश्चित है कि बिना वंशानुक्रम के बालक में गुणों का विकास नहीं हो सकता है। शारीरिक विशेषतायें बुद्धि, स्वभाव आदि वंशानुक्रम से प्राप्त होती है। फ्रैन्सिस गाल्टने (Francis Galtion) ने वंशानुक्रम के प्रभाव को अपनी पुस्तक हेरिडिटरी जीनियस (Hereditory Genius) में दर्शाया है। उनका विचार था कि जब तक योग्य पुरुष योग्य स्त्री से विवाह करता रहेगा तब तब बुद्धिमान संतान उत्पन्न होगी। गाल्टन ने 30 कलाकारों के परिवारों का अध्ययन किया और पाया कि इन परिवारों के 64 प्रतिशत बालक कलाकार थे जबकि सामान्य जनसंख्या में केवल 1प्रतिशत ही कलाकार पाये गये।

सन् 1992 में गोडार्ड (Goddard3) ने कालिकाक (Kallikak) परिवार का अध्ययन प्रकाशित किया। कालिकाक नामक व्यक्ति अमरीका का रहने वाला था जिसने दो विवाह किये थे। एक क्रांति के समय तथा दूसरा बाद में किया था। पहली पत्नी मंद बुद्धि की थी तथा दूसरी बुद्धिमान एवं पदरी की लड़की थी। इन दोनों से जोसंताने उत्पन्न हुई उनमें काफी असमानता देखने को मिली। मंद बुद्धि की पत्नी से उत्पन्न संतानों की पीढ़ियों में कुल 480 से 143 मंद बुद्धि के थे। 24 शराबी, 3 अपराधी, 35 अनैतिक कार्य करने वाले तथा केवल 46 सामान्य पाये गये। पादरी की लड़की से उत्पन्न कुल संताने 496 में से अधिकांश वकील, जज, व्यापारी, प्रोफेसर आदि थे।

कार्ल पियर्सन ने भी वंशानुक्रम के प्रभाव पर अनेक प्रयोग किये। उन्होंने इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि माता–पिता की शारीरिक विशेषताओं का प्रभाव बच्चे पर अवश्य पड़ता है। उन्होंने बताया कि वंशानुक्रम का प्रभाव पर्यावरण से 7 गुना अधिक होता है।

कालमैन (Kallman)5 ने वंशानुक्रम का मनोविदलता (Schizopherenia) की उत्पत्ति पर उसके प्रभावों के संदर्भ में अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सामान्य जनसंख्या की अपेक्षा रक्त सम्बन्धों में मनोविदलता अधिक घटित होती है। जैक्सन (Jakson)6 ने भी अध्ययन किया कि अनेक रोग पीढी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं।

अतः अध्ययनों से पता चलता है कि व्यक्ति की उत्पत्ति की एवं उसकी मानसिक एवं शारीरिक विशेषताओं के निर्धारण में वंशानुक्रम का पूरा–पूरा हाथ रहता है। परन्तु यह बात शत प्रतिशत सत्य नहीं है। जिस प्रकार पेड़–पौधे बिना उचित मिट्टी एवं जलवायु के

जीवित नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार उचित पर्यावरण के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है।

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है–परि + आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढके हुये। अर्थात् प्राणी को छोड़कर जो कुछ उसके चारों ओर है वह उसके पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए गर्भावस्था में गर्भ ही बालक के लिए पर्यावरण होता है। जन्म लेने पर परिवार तथा भौगोलिक दशायें पर्यावरण में आती हैं। जब वह बाहर जाने लगता है तो उसके पर्यावरण में पड़ौस, खेल समूह तथा अन्य परिस्थितियाँ सम्मिलित हो जाती हैं। इसके बाद विद्यालय एवं अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है।

1. परिभाषा (Definition)

जिंसवर्ट, पी0 : पर्यावरण उस सबको कहते हैं जो किसी एक वस्तु को चारों ओर से घेरे तथा इस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।

GISBERT, P, : Environment is anything immediately surrouding an object and exerting a direct influence on him.7

इलियट, टी0डी0 : चेतन पदार्थ की किसी ईकाई के प्रभावकारी उद्दीपन तथा अन्तःक्रिया के क्षेत्र को पर्यावरण कहते है।

ELLIOTT T.D. : Environment is the filed of effective stimulation and interaction for any unit of living matter.8

2. इनवाइरनमेन्ट (Environment) शब्द का विश्लेषण

E=Educational institutions,	N=Neighbourhood
V=Value System	I=Interaction pattern
R=Religion	O=Occupation
N=Nurturing	M=Material facilites
E=Economic conditions	N=Natural surroundings
T=Thoughts	

Thus we can say that environment includes natural surroundings, institutions, religion, occupation, material facilites, economic condition, interaction pattern and value system.

पर्यावरण के अन्तर्गत नैसर्गिक दशायें, संस्थायें, धर्म, व्यवसाय, भौतिक सुविधायें, आर्थिक स्थिति, अन्तःक्रिया के तरीके तथा मूल्य व्यवस्था को सम्मिलित करते हैं।

8.7 पर्यावरण के प्रकार (Types)

I. बाह्य पर्यावरण (External)

II. आन्तरिक पर्यावरण (Enternal)

OC+IC=E(Environment)

OC=Outer conditions, IC=Inner conditions

OC=(Phy+Bio+Soc)

Phy=Physical : Water, air, sunlight, climate season soil, humidity, housing, radiation,
Bio=Biological : plants, animals, insects, micro organism, nutrition,
Soc=Social : People, customs, culture, income occupation, religion, social and political organization, institutions, Family life, standard of living, Urbanization, Industrialisation, strees and strain, competion.

III IC =(LS+NG+PE)

LS=Life space : perceiving, meaning, Value Importance
N=Needs : I Life : Food, water, air, sexual, worth,
II Safety : Internal and external
III Love : Affection, attachment, care, attention, emotional support.
IV Relationship : Value, acceptance, appreciation, esteemed, respect, status, approval.
V Achievment : Creative and productive act, welfare, Actualization self-expression.
G=Goals : Occupational goal, educational goal, Home-making, having children, Finding financial security.
PE=Past Experience : Constructive, Destructive, Painful, Traumatic.

8.7.1 पर्यावरण का प्रभाव

व्यक्तित्व के सभी अंग पर्यावरण से प्रभावित होते हैं।

पर्यावरण का व्यक्तित्व पर प्रभाव

प्रकार तथा क्षेत्र	प्रभाव
1. भौतिक तथा जैविकीय	
खान–पान	पंजाब में गेहूं, बंगाल में चावल, टुण्ड्रा में कच्चा मांस वस्त्र शीत प्रदेश में बाल दार खाल, काँगो बेसिन में नंगे, शीतोष्ण में सूती तथा ऊनी।
मकान	पर्वत पर लकड़ी के मकान तथा छत ढालू, मैदानों में ईंट तथा सीमेंट व मिट्टी के मकान।
जनसंख्या	मैदानी भागों में घनी जनसंख्या, पहाड़ी भागों में कम जनसंख्या
व्यवसाय	समुद्र के किनारे मछली पकड़ना, मैदानों में गेहूं, चावल, आदि की खेती।
प्रजाति	शरीर की बनावट, रंग डील–डौल
यातायात के साधन	मैदानों में अधिक रेल तथा साधन पहाड़ों पर कम साधन

स्वास्थ्य   समशीतोष्ण सबसे अच्छी स्थिति
मानव व्यवहार   गर्मियों में आत्म हत्यायें अधिक
आर्थिक जीवन   कृषि उपजाऊ प्रदेश में, कारखानें खनिज प्रदेश में
कला तथा साहित्य   पर्वतीय कला में पर्वतों का वर्णन, मैदानी भाग में शस्यश्यामला हरी भरी धरती का वर्ण

2. सामाजिक पर्यावरण

परिवार (वर्ग)   उच्च तथा मध्य वर्गीय   समाजीकरण मंद, माता–पिता द्वारा अधिक देख–भाल, अच्छा बनने को प्रोत्साहन, वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रतिमानों को सीखने पर जोर, प्रतिस्पर्धा, अच्छा बनने की चिन्दा।

निम्न वर्गीय   समाजीकरण तेज, माता–पिता की कम देख–रेख, जीवन लक्ष्य अपने जैसा, उपलब्धि का प्रोत्साहन नहीं, संख्यात्मक उपाय, प्रेम की कमी न होने के कारण चिन्ता की कमी।

दोषपूर्ण बालक   तिरस्कार   चिन्ता, असुरक्षा, आत्मशक्ति कमजोर, नकारात्मक दृष्टिकोण,

सम्बन्ध   एकाकीकरण, ईर्ष्या, चेतन, विकास मंद

अति लाड़ प्यार   शर्मीला, आत्ममूल्यांकन की कमी।

अति बन्धन   स्वार्थी, माता–पिता के प्रति विरोधी, शक्ति के विरोधी

अवास्तविक मांगे   आत्म अवमूल्यन, कठोर चेतना विकास, मानसिक संघर्ष।

अनुशासन की कमी   समाज विरोधी व्यवहार

कठोर अनुशासन भय, घ्रणा, मित्र भाव की कमी

अवाँछनीय माता–पिता   दोषपूर्ण मूल्य रचना, अवास्तविक उद्देश्य, असमायोजित व्यवहार।

3. विद्यालय

अध्यापकों का स्वभाव   1. निरंकुशः   हीनभावना, भावनाओं के स्पष्टीकरण मं बाधा

2. अति सीधेः अनुशासन हीनता

पर्यावरण   1. प्रतिस्पर्धात्मक : मध्यम वर्ग के बालकों के लिए भग्नाषा का अनुभव, निरन्तर तनाव, उच्च एवं हीन भावना का विकास, आत्म केंद्रित

2. सहयोगिक : साथ–साथ कार्य, सभी प्रयत्नों में सहयोग, सफलता व असफलता में सामूहिक भागीदारी, उद्देश्य, केन्द्रित, आत्म केन्द्रित, सामूहिक प्रयास, समूह से आत्मीकरण

पुरुस्कार तथा दण्ड 1. पुरुस्कार : बालक की प्रशंशा सभी के सामने करने से शैक्षिक उपलब्धि

2. दण्ड : एकान्त में दण्ड देने पर सबसे अधिक उपलब्धि सभी के सामने दण्ड देने का अत्यन्त हानिकारक प्रभाव

4. धर्म

आस्थावान नैतिक दृष्टिकोण, प्रेम, सद्भावना, सहयोग, जीवन में शांति, आत्म बल, असामाजिक कार्यों के करने में भय, परम्परागत व्यवहार, आत्म हत्या की भावना तथा तनाव की कमी

धर्म में कम या नहीं विश्वास नैतिक दृष्टिकोण का अभाव, सद्भावना की कमी, सदैव तनाव, आन्तरिक शान्ति की कमी, अनैतिक कार्य करने में डर नहीं, आत्महत्या की प्रवृत्ति।

उपर्लिखित स्थितियों के अतिरिक्त व्यवसाय की कार्य दशायें, उन्नति के अवसर, शिक्षा, वैयक्तिक गुण का महत्व आदि का प्रभाव भी पड़ता है।

पर्यावरण के सामान्य प्रभाव को निम्न शब्दों में लिख सकते हैं।

PER2S5HI4M5A4BC3D

P=Perception प्रत्यक्षीकरण	E=Emotions संवेग
R'=Reasoning तर्क शक्ति	R2=Role भूमिका
S'=Self-development आत्म विकास	S=Self evaluation आत्म मूल्याँकन
S3=Style of life जीवन शैली	S4=Self expression आत्म प्रगटन
S5=Security आत्म सुरक्षा	E=Educational achievement शैक्षिक उपलब्धि
H=Habits आदतें	I'=Interests रुचियाँ
I2= Interaction patterns अन्तःक्रिया के तरीके	I3 Intelligence बुद्धि
I4=Importance महत्व	M=Mood मन की दशा
M2=Method तरीके	M3=Mobility गतिशीलता
A1=Attitude मनोवृत्ति	A2=Adjustment समायोजन
A3=Acquisitivenes संग्रहता	A4=Accomplishment उपलब्धि
B=Behaviour व्यवहार	C1=Change परिवर्तन
	C3=Concept प्रत्यय
C2 = Capacity to work कार्य क्षमता	D=Descipline अनुशासन

कुछ अध्ययन (Some Studies)

कुछ प्रमाणों ने यह सिद्ध करने का पूरा–पूरा प्रयास किया है कि व्यक्ति की मानवीय प्रकृति समाज में ही सम्भव होती है। सन् 1938 में 6 वर्ष की अन्ना नामक लड़की पायी गयी। वह न तो बोल सकती थी, न बात कर सकती थी, उसका शारीरिक व मानसिक विकास नहीं हो पाया था। वह लड़की घर में एकान्त में रखी गयी थी और उसे परिवार में रहने का मौका नहीं दिया था। दूसरा उदाहरण कमला, अमला नाम की दो लड़कियाँ

जिनको बचपन में भेड़िया उठा ले गया था पायी गयी। वे न तो बोल सकती थीं, न मनुष्यों के समान खाना खा सकती थी। पशुओं के समान चलती थीं, भेड़िया जैसा गुर्राती थी। एक अन्य उदाहरण देखने को मिलता हैः कास्पर हाउसर राजनैतिक कुचक्रों के कारण सामाजिक सम्बन्धों से अलग कर दिया गया था। 1828 ई0 में 17 वर्ष की आयु में न्युरेन वर्ग में पाया गया उस समय वह मामूली चल सकता था। वह केवल दो शब्दों का उच्चारण कर लेता था तथा निर्जीव पदार्थों को जीवित समझता था।

इन सभी अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति का मानसिक स्वरूप समाज में ही सम्भव है। सामाजिक पर्यावरण की दशायें व्यक्तिगत भिन्नता को उत्पन्न करती हैं।

4. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व

(Relative Importance of Heredity and Environement)

गाल्टन के अध्ययन के साथ ही इस बात विवाद उत्पन्न हो गया कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है। गाल्टन ने अपने अध्ययन में पाया कि किस प्रकार कम संख्या के अंग्रेजी परिवार इंग्लैण्ड में महत्वपूर्ण व्यक्तियों को उत्पन्न करते हैं। उन्होंने ज्ञात किया कि 188 प्रमुख व्यक्तियों के 535 प्रमुख सम्बन्धी थे जबकि 977 सामान्य व्यक्तियों के केवल 4 विशिष्ट सम्बन्धी थे। परन्तु इस अध्ययन से यह पता नहीं चलताहै कि जीन्स के प्रभाव के कारण विशिष्ट व्यक्ति उत्पन्न हुये अथवा पर्यावरण के कारण विशिष्ट बने। इस बात को गाल्टन ने स्वयं स्वीकार किया और कहा कि अध्ययन केवल सुझाव प्रस्तुत करता है कोई सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित करता हैः इस सन्दर्भ में हेव तथा (Anastasi)अनास्टासी का कहना है कि यह प्रश्न कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों में कौन कारक व्यवहार को विकसित करने के लिए उत्तरदायी है अनौचित्य एवं अतर्क–संगत है क्योंकि बिना वंशानुक्रम के अवयव (Organism) का विकास हो ही नहीं सकता तथा बिना उपयुक्त वातावरण के अवयव किसी प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करने के लिए जीवित नहीं रह सकता। अतः दोनों को पृथक–पृथक देखा नहीं जा सकता है।

1. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों संरचनात्मक विशेषताओं को उत्पन्न करते हैं (Heredity and environment both develop structural characteristics)

कुछ ऐसी रचनात्मक विशेषतायें हैं जिन पर वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जैसे लिंग, आँखों का रंग, रक्त प्रकार आदि। इन संरचनात्मक विशेषताओं को पर्यावरण की आवश्यकता बहुत कम होती है। दूसरी विशेषतायें जैसे शरीर का आकार एक ही वंशानुक्रम में भिन्न–भिन्न होता है क्योंकि उस पर पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, जलवायु आदि का प्रभाव पड़ता है।

2. गर्भधारण वंशानुक्रम एवं पर्यावरण पर निर्भर है। (Heredity and environment both responsible for conception and birth of the child)

जिस समय शिशु उत्पन्न होता है उस समय भी वह किसी न किसी पर्यावरण से घिरा होता है। उसके जन्म का कारण भी पर्यावरण होता है जिसमें स्त्री तथा पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध सम्भव होता है। अनुकूल पर्यावरण होने पर ही गर्भ स्थापन हो पाता है। जब तक बालक गर्भ में रहता है तब तक उसका पर्यावरण गर्भ होता है और माता पर पड़ने वाले प्रभाव गर्भ द्वारा बालक पर पड़ते हैं। गर्भ की दशायें भ्रूण पर अपना प्रभाव डालती हैं। माता में पोषण की कमी, औषधि प्रभाव, रोग, सांवेगिक तनाव तथा मानसिक अस्त–व्यस्तता

बालक में दोष उत्पन्न कर देती है। रोथचाइल्ड (Rothschild)11 ने अपने अध्ययन में पाया कि जो बालक समय से पूर्व पैदा होते हैं, उनकी अधिकांश मातायें सांवेगिक तनाव से पीड़ित होती हैं। कपूरों तथा मेण्डल (Mandell)12 भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो मातायें गर्भवती होने की अवधि में चिंतित तथा सांवेगिक तनाव से ग्रस्त रहती हैं वे अपरिपक्व बालक को जन्म देती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गर्भ का पर्यावरण बालक के व्यक्तित्व पर अपना प्रभाव डालता है।

3. संरचनात्मक तथा व्यवहारिक विशेषताओं के विकास पर वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रदर्शित होता है। (Heredity and environment exert direct influence on the development of structural and behaviour characteristics)

अनेक विद्वानों ने यह जानने का प्रयास किया कि गामक विकास (उठना, बैठना, चलना आदि) पर विभिन्न र्प्यावरणीय दशाओं का कितना प्रभाव पड़ता है तथा वंशानुक्रम शक्तियों का कितना प्रभाव होता है परन्तु कोई सफल उत्तर न प्राप्त हो सका।

गेसेस (Gessel)13 तथा थाम्पसन (Thampson)14, स्ट्रेयर (Streyer)15 आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि विकास की गति तथा समय पर र्प्यावरणीय दशाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन अध्ययनों में जुड़वा बच्चों पर नियन्त्रण का तरीका उपयोग किया गया। एक को प्रशिक्षण दिया गया था, दूसरे को प्रशिक्षण नहीं दिया गया। प्रशिक्षण के होने पर भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि पर्यावरण का प्रभाव नहीं होता है क्योंकि यदि सामाजिक पर्यावरण में बालक न रहे तो उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास सम्भव नहीं है ऐसा अनेक परीक्षणों ने सिद्ध किया है।

4. बुद्धि पर वंशानुक्रम तथा र्प्यावरण दोनों ही प्रभावकारी हैं (Heredity and Environment both are effective on Intelligence)

न्यूमैन (Newman), फ्रीमैन, वर्ट (Vert) तथा बान्डेनवर्ग (Wandenberg) आदि ने अपने अध्ययन में सिद्ध कर दिया कि साथ–साथ पालन पोषण हुये बालकों की बुद्धि में काफी समानता होती है। अलग–अलग पालित जुड़वा बच्चों में असमानता देखी गयी है।

5. मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों सक्रिय सहयोग करते हैं (Heredity and environment both actively cooperate in the development of psychological traits)

मनौवैज्ञानिक गुणों (आत्मविश्वास, प्रभावशीलता, प्रधानता, क्रियात्मकता, क्रोध आकाँक्षा का स्तर, विषाद) पर वंशानुक्रम का अधिक प्रभाव होता है। बेन्डनबर्ग (Benden berg) फ्रीडमैन (Freed man) तथा गोटेसमैन (Gotes man) ने अपने अध्ययनों से वंशानुक्रम को मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध किया है। यद्यपि अध्ययनों में काफी सीमिततायें हैं परन्तु निष्कर्षों से पता चलता है कि बहिमुर्खी (Extrovert) तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है। (Eysenck M.J.) आइसेन्क ने यह सिद्ध किया है। लेकिन ये गुण तब तक विकसित नहीं हो सकते जब तक अनुकूल पर्यावरण न प्राप्त हो।

6. समायोजन पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है वंशानुक्रम का कम

(Adjustment is more affected by environment)
बालकों के विकास तथा समायोजन पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। रोडमैन (Rodman) के विचार से व्यक्ति का सामाजिक वर्ग उसके जीवन को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। जिनका वर्ग निम्न होता है उनमें शारीरिक हीनता होती है, जीवन अवस्था कम होती है, न्यायालयों में कम न्याय मिलता है, इच्छाओं तथा प्रेरणओं का स्तर निम्न होता है।
बलक को यदि आवश्यकता से अधिक प्यार दिया जाता है तो वह समायोजन में कठिनाई अनुभव करता है तथा जीवन कष्टमय होता है।
7. सामाजिक गुणों का विकास पर्यावरण पर अधिक निर्भर होताहै।
(Social traits are more dependent on environment)
समाजिक गुणों (मित्रभाव, सहयोग, सहानुभूति, व्यवहार के ढंग) पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार का पर्यावरण होता है उसी प्रकार के गुण उत्पन्न होते हैं।
8. मानसिक एवं व्यवहारिक विकृतियों पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है।
(Mental and Behavioural disorders are the result of unsuited environment)
मानसिक रोगों का कारण वंशानुक्रम न होकर पर्यावरण होता है। केवल कुछ ही रोगों (Schizophrenia) में वंशानुक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यवहारिक विकृतियों (स्वतः प्रेम, उग्रता, अवज्ञा, ध्वन्सात्मकता, चोरी करना, झूठ बोलना, अपराध करना भगेडूपन) पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है।
उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाताहै कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जीवन की प्रत्येक घटना के लिए समान उत्तरदायी है। उनमें से न ही किसी को दूर कर सकते हैं न ही प्रथम कर सकते हैं। वास्तव में मानव के विकास में पर्यावरण तथा वंशानुक्रम दोनों की अलग–अलग कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस वृक्ष का बीज होता है उससे वही वृक्ष उत्पन्न होता है। बीच के विकास के लिए पर्यावरण की आवश्यकता होती है।

8.8 सार संक्षेप

मनुष्य क्या कर सकता है यह वंशानुक्रम द्वारा निश्चित है वस्तुतः क्या करता है यह उसके पर्यावरण द्वारा निश्चित होता है। वंशानुक्रम केवल क्षमता प्रदान करता है। इस क्षमता के विकास का अवसर पर्यावरण देता है। इन दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है इस प्रकार का प्रश्न करना ऐसी ही बात करना है कि मनुष्य के लिए भोजन अधिक महत्वपूर्ण है या सुरक्षा अथवा वायु। वास्तव में दोनों ही समान महत्वपूर्ण हैं।

8.9 अभ्यास प्रश्न

1. वंशानुक्रम का अर्थ समझाइये ?
2. हेरीडिटी (Heredity) शब्द की व्याख्या कीजिये ?
3. जीव रचना (Mechanism) की व्याख्या कीजिये ?
4. वंशानुक्रम के नियमो का वर्णन कीजिये ?
5. वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव बताइये ?
6. प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ क्या हैं ?

7. वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी अध्ययन का वर्णन कीजिये ?
8. पर्यावरण के कितने प्रकार हैं ?
9. पर्यावरण के प्रभाव की व्याख्या कीजिये ?
10. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व की व्याख्या कीजिये ?

8.10 पारिभाषिक शब्दावली

Heredity	वंशानुक्रम	Environment	पर्यावरण	Adjustment	समायोजन
Explain	व्याख्या	Mechanism	जीव रचना	Social traits	(सामाजिक गुणों
Relative	**सापेक्ष**	Importance	**महत्व**	Dependent	
Intelligence	बुद्धि	Effective	प्रभावकारी	Mental	मनसिक
More	अधिक	Dependent	निर्भर	Perception	प्रत्यक्षीकरण
Extrovert	बहिमुर्खी	Organism	अवयव	Emotions	संवेग

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Benedict, Ruth : Patterns of Culture, Mantor Book company New York, 1929.
- Fairchild, H.P. : Dictionary of Sociology, Philosophical Library, New York, 1966 P. 140.
- Goddard : The Kallikak Family, New York, 1906
- Pearson, Karl : Nature and Nuture, London, 1910
- Kallman, F.J. : Heredity in Health and Mental Disorder, New York, 1953
- Jakson, D. : Etiology of Sehizophrenia, Basic Books, New York, 1912
- Gisbert, P : Op. cit. P. 233
- Elliott, T.D. : Op. cit. P. 10
- Hebb, D,O. : Heredity and Environment, Bristish J. of Animal behaviour P. 43-47
- Anastasi A. : Heredity, Environment and the Question How? Psychological Review, 1958, 65, 197-208

- Rothschild. B.F. : Incuvator Isolution As a Possible Contributive Factor to the High Incidence of emotional disturbance among Pre-mature Persons. Journal of Psychology, 1967, 110(2) P287-304
- Caputo, D. B. & Mandell, W. Consequnces of Low birth weight. Developmental Psychology. 1970 p 363-383
- Gessel, A.L. : The Oontogenesis of Behaviour, Child Psychology, willey, New York, 1954
- Gessel, A, L, Thompson, H. : Learning and Growth in Indentical Infant Thompson, H. Twin, Genetic Psychology, Monograph 1929, 6, P. 1-124
- Streyer, L.C. : Language and Growth, Genetic Psychology, 1930, P. 309-310
- Colemn, James C. : Abnormal Psychology and Modern Life, D.P. Taraporevala Sons & Company, Bombay, 1974 P. 97

इकाई–9
नेतृत्व
Leadership

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 परिचय
9.2 नेतृत्व
9.3 नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ
9.4 नेतृत्व की परिभाषाएं
9.5 नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं
9.6 नेतृत्व की शैली
9.7 नेतृत्व के कार्य
9.8 नेतृत्व की विचारधाराएं
9.9 नेतृत्व के प्रकार
9.10 नेतृत्व सम्बन्धी गुण
9.11 सार संक्षेप
9.12 अभ्यास प्रश्न
9.13 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- नेतृत्व की अवधारणा को समझ सकेगें।
- नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियों को समझ सकेगें।
- नेतृत्व की परिभाषाओं का वणर्न कर सकेगें।
- नेतृत्व की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेगें।
- नेतृत्व की शैली को समझ सकेगें।
- नेतृत्व के कार्य का वणर्न कर सकेगें।
- नेतृत्व की विचारधाराओं को समझ सकेगें।
- नेतृत्व के प्रकारों का वणर्न कर सकेगें।
- नेतृत्व सम्बन्धी गुणों को समझ सकेगें।

9.1 परिचय

Leadership की उत्पत्ति किस प्रकार होती है। इस संबंध में समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों की कई विचारधारायें हैं। वंशपरम्परा परम्परा सिद्धांत को मानने वाले विद्वानो का विचार है कि समाज में कुछ लोग ऐसे होते है। जो जन्मजात पैदा इसी या जन्म जात योग्यता नेतृत्व का लेकर पैदा होते हैं। दूसरी ओर कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि नेता की उत्पत्ति परिस्थिति विशेष होती है और लोग उसे नेता मान लेते हैं।

9.2 नेतृत्व

Leadership की उत्पत्ति के संबंध में दो विचार या सिद्धांत हमारे सामने आते हैं–

(i) Man theory

(ii) Time theory

- Man theory इस सिद्धांत के समर्थकों का कहना है कि नेता जन्मजात होते हैं। व्यक्ति में नेता के गुण तथा योग्यता किसी भी परिस्थिति में उसे नेता बना देती है। और नेता जन्म से ही शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक रूप से सुसज्जित होता है। Brown का कहना है कि साधारणतः जनता भी यह सोचती है कि व्यक्ति अपने गुण के कारण ही नेता बन बैठता है।
- Time theory इस तरह मानव सिद्धान्त के मानने वालों में Brown भी एक हैं और उन्होंने 1936 ई0 में कहा है कि Wilson, Cloyed George, Kaiser, Lenin और अन्य महान व्यक्तियों के कारण ही विश्व की मुख्य धारणायें व महान परिवर्तन हुए न कि विश्व ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक तथा मनावैज्ञानिक रूप से परिस्थिति–परिवर्तन के लिए तत्पर था। Brown के कथन की समर्थक आधुनिक समाजशास्त्री क्रेच एक क्रचकील्ड ने कहा है कि महात्मा गाँधी के प्रभावी नेतृत्व के कारण ही भारत की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महात्मा गाँधी अपने गुण और योग्यता के कारण ही भारतीयों के पुज्य नेता बन गये।उपरोक्त विद्वानों के विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति अपने गुण तथा योग्यता के फल स्वरूप ही नेता बनता है।
- Man theory और Time theory दोनों को देखने से पता चलता है कि Leadership की उत्पत्ति के लिए नेता का गुण तथा परिस्थिति दोनों का होगा आवश्यकता है एक की अनुपस्थिति में कोई भी व्यक्ति नेता नहीं बन सकता। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि लोकलमक जय प्रकाश नारायण 1974 पूर्व एक भारतीय सैद्धांतिक नेता के रूप में चर्चा के विषय थे परन्तु 1974 की क्रांति ने उन्हें लोकमान्य बना दिया। नेता की उत्पत्ति के लिए योग्यता तथा परिस्थिति दोनों एक साथ होना अनिवार्य है। Gibb ने कहा है कि Leadership व्यक्ति तथा उसके समूह के अन्य सदस्यों के बीच एक प्रकार की सामाजिक परस्पर क्रिया का ही प्रतिफल है।

9.3 नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए कौन–कौन सी विशेष परिस्थितियाँ होती हैं। जिनमें की नेता अपने गुणों के कारण परिस्थिति विशेष का लाभ उठाकर नेता बन जाते हैं, वे निम्नलिखित है।

- समूह के निर्माण तथा विकास के लिए नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– जब किसी भी समूह का निर्माण होता है तो प्रारंभ में कुछ सदस्य अन्य सदस्यों की अपेक्षा ज्यादा सक्रिय रहते हैं और समूह पर सक्रियता के कारण उनका आधिपत्य भी उस समूह पर रहता है और अधिपत्य रखने वाला व्यक्ति उस समूह का नेता होता है और नेतृत्व का श्री गणेश यही होता है।वह नेता समूह के उद्देश्य की

प्राप्ति के लिए नीति निर्धारण एवं योजना का निर्माण करता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि नेता की उत्पत्ति समूह निर्माण तथा विकास के लिए होती है।

- अस्थिर समूह में नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– जब समूह की बनावट अस्थिर रहती है तो उसके सदस्यगण एक ऐसे नेता की खोज करते हैं जो समूह को स्थिर एवं स्थायी बना सके। इस परिस्थिति में योग्य व्यक्ति उस समूह का नेता अपनी योग्यता के आधार पर बन जाता है एवं समूह की आवश्यकताओं को पूरा करता है। अशांत वातावरण में समूह के अन्दर ऐसे नेता दृढ़ता के साथ कार्य को संपादित करते हैं और अपने उप समूहों को भी सुव्यवस्थित करते हैं इसलिये हम कह सकते हैं कि अस्थिर समूह में भी नेतृत्व की उत्पत्ति होती है।
- समस्या युक्त परिस्थिति में नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– जब समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति में बाहय दबाव या आंतरिक गड़बड़ी रहती है तो इस परिस्थिति में एक ऐसे नेता की आवश्यकता होती है जो आन्तरिक गड़बड़ी एवं वाह्य शक्तियों को नष्ट कर समूह की लक्ष्य को प्राप्ति कर सके। इस परिस्थिति में व्यक्ति अपनी योग्यता बुद्धि, ज्ञान, आत्मविश्वास एवं पुरूषार्थ आदि गुणों से उस समूह को सुरक्षा प्रदान करता है।
- व्यक्तिगत आवश्यकताओं की संतुप्ति के लिए नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– नेतृत्व की उत्पत्ति समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। नेता के महत्व के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को हम कंधे पर लेगे। अच्छे कार्यों के लिए पुरस्कार एवं बुरे कार्यों के लिए दंड देने ,पिता के समान व्यवहार करने आदि में देखते हैं इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नेता की उत्पत्ति होती है। नेता की उत्पत्ति सदस्यों के व्यक्तिगत आवश्यकताओं जैसे प्रतिष्ठा, तादात्म्य, मान–मर्यादा आदि की संतृप्ति के लिए होती है। इसके अतिरिक्त भय, प्रेम क्रोध आदि के संतुलन के लिए नेता की उत्पत्ति होती है।
- नेतृत्व की उत्पत्ति नेता की आवश्यकताओं की संतुप्ति के लिए होती है–नेतृत्व की उत्पत्ति एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। नेतृत्व की उत्पत्ति केवल समूह के संपूर्ण परिस्थितियों तथा सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही नहीं होती ,बल्कि नेता के व्यक्ति गत आवश्यकताओं के संतृप्ति के लिए भी नेता की उत्पत्ति होती है। जैसे अधिकपत्य (Dominance)] शक्ति (Power) , प्रतिष्ठा (Prestige) सामाजिक स्वीकृति (Social recognition) आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नेतृत्व की उत्पत्ति होती है।
- उपरोक्त सभी विचारों, सिद्धांतों, गुणों तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए परिस्थिति तथा व्यक्तिगत शील गुण का होना परम आवश्यक है। सामाजिक परिस्थिति नेतृत्व को उत्पन्न करती है एवं नेता के व्यक्तिगत गुण जैसे–प्रभावशाली व्यक्तित्व, मनोवृति, आधिपत्य की भावना, प्रतिष्ठा की इच्छा आदि गुण रखने वाले व्यक्ति नेता बन जाते हैं।

9.4 नेतृत्व की परिभाषाएं

- **जॉर्ज आर. टेरी** ने नेतृत्व को उस योग्यता के रूप में परिभाषित किया है जो उद्देश्यों के लिए स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रभावित करता है।

- **लिंविग्स्टन** के अनुसार नेतृत्व से आशय उस योग्यता से है जो अन्य लोगों में एक सामाजिक उद्देश्य का अनुसरण करने की इच्छा जाग्रत करती है।
- **मूरे** नेतृत्व को एक ऐसी योग्यता मानते हैं जो व्यक्तियों कोनेता द्वारा अपेक्षित विधि के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।
- **जॉन जी. ग्लोवर** नेतृत्व को प्रबन्ध का वह महत्वपूर्ण पक्ष मानते हैं जो उस योग्यता, सृजनशीलता, पहल शक्ति तथा सहानुभूति को व्यक्त करताहै जिसकी सहायता से संगठन प्रक्रिया में मनोबल का निर्माण करके लोगों का विश्वास, सहयोग एवं कार्य करने की तत्परता प्राप्त की जाती है।
- **ऑर्डवे टीड** के अनुसार, "नेतृत्व उन गुणों के संयोग का नाम है जिनको रखने पर कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से काम लेने के योग्य होता है, विशेषकर उसके प्रभाव द्वारा अन्य लोग स्वेच्छा से कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि नेतृत्व एक दी हुई स्थिति में लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में किसी व्यक्ति या समूह के प्रयासों को प्रभावित करने की प्रक्रिया है।

9.5 नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं Chief Characteristics of Leadership

नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं–

1. **अनुयायिओं को एकत्रित करना** – बिना अनुयायियों के नेतृत्व की कल्पना करना कठिन है। वास्तव में, बिना समूह के नेतृत्व का कोई अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि नेता या नायक केवल अनुवावियों अथवा समूह पर ही अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है। नेतृत्व का उद्देश्य अपने चारों ओर अपने अनुयायियों अथवा व्यक्तियों के समूह को एकत्र करना तथा उन्हें किसी हुई निर्धारित सामूहिक उद्देश्य के प्रति निष्ठावान बनाये रखता है।
2. **अचारण एवं व्यवहार को प्रभावित करना** –नेतृत्व, प्रभाव के विचार की अपेक्षा करता है, क्योंकि बिना प्रभाव के नेतृत्व की कल्पना नहीं की जा सकती। नेतृत्व की सम्पूर्ण अवधारणा अब व्यक्तियों के एक–दूसरे के प्रभाव पर केन्द्रित है। लोक प्रशासन में नेतृत्व की भूमिका का सार ही यह है कि कोई अधिशाषी किस सीमा तक अपने सहयोगी अधिशासियों के आचरण का या व्यवहार को अपेक्षित दिशा में प्रभावित कर सकता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि अन्य व्यक्तियों के आचरण को प्रभावित करने से आशय उनसे अनुचित रूप से कार्य लेने से नहीं है। उसका कार्य अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को निर्देशन देना तथा उन्हें एक ऐसे ढंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करनाहै ताकि उनमें समझदार स्वहित वाली प्रतिक्रिया स्वतः जाग्रत हो सके।
3. **पारम्परिक सम्बन्ध** : मेरी पार्कर फौले ने नेता तथा अनुयायियों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध को नेतृत्व की प्रमुख विशेषता माना है नेता वह नहीं है जो दूसरों की इच्छा को निर्धारित करता है, परन्तु वह है जो यह जानता है कि दूसरों की इच्छाओं को किस प्रकार अन्तर–सम्बन्धित किया जाय कि उनमें एक साथ मिलकर कार्य करने की प्रेरणा स्वतः जाग्रत हो सके। इस प्रकार एक नेता न केवल अपने समूह को प्रभावित करता है वरन् वह स्वयं भी अपने समूह द्वारा प्रभावित होता है।

4. **सामूहिक लक्ष्य** – नेतृत्व की यह प्रकृति एवं स्वभाव है कि वह अपने अनुयायियों के प्रयत्नों को सामूहिक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निदेशित करता है। अतः नेता का यह कर्तव्य है कि वह कुछ लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दे जिससे कि अनुयायी इन लक्ष्यों से अपने हितों का एकीकरण कर सकें।

9.6 नेतृत्व की शैली Leadership Styles

ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय के सेविवर्गीय शोध बोर्ड ने नेतृत्व को 5 वर्गों में रखा है

- **नौकरशाह** (The Bureaucrat)- ऐसा नेता केवल निर्धारित दिनचर्या से चिपका रहताहै, अपने वरिष्ठों को सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है, और अधीनस्थों की उपेक्षा की उपेक्षा करता है अधीनस्थ ऐसे नेता के प्रति उदासीनता एवं अवज्ञा की भावना रखते हैं।
- **तानाशाह या अधिनायक** (The Autocrat)- ऐसा नेता निरंकुश होता है और अपने कर्मचारियों से काम लेते समय भय दिखाना, डराना–धमकाना, प्रताड़ित करना, आदि विधियों का उपयोग करता है। ऐसे नेता के अधीनस्थ विरोधी हो जतो हैं एवं स्वार्थ–सिद्धि में लगे रहते हैं।
- **कूटनीतिज्ञ** (The Diplomat) – ऐसा नेता अवसरवादी होता है और लोगों का शोषण करता है। उनमें लोगों का विश्वास नहीं रहता है।
- **विशेषज्ञ** (The Expert) –ऐसा नेता केवल अपने क्षेत्र से ही सम्बन्धित होता है। वह अपने अधीनस्थों के साथ सहयोग के रूप में व्यवहार करता है। उसके सहकर्मी उसका आदर करते हैं, परन्तु वे किसी परिवर्तन के विरुद्ध होते हैं।
- **सहभागी** (The Quarter-back) – ऐसा नेता अपने अधीनस्थों के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, चाहे उसके वरिष्ठ अधिकारी उससे अप्रसन्न ही न हो जायें।

क्रिय आर्गरिस ने तीन प्रकार के नेताओं के अन्तर स्थापित किया है।

निदेशक (Directive), अनुज्ञात्मक या अनुमतिबोधक (Permissive) तथा सहयोगी (Paticipative) ।

- **निदेशक प्रकार का नेता** (The Directive type) – यह पारितोषिक के साथ–साथ दण्ड की भी व्यवस्था करता है। इसके अधीनस्थ अपने आपको मातहत समझते हैं और इसके कारण निष्क्रिय होते हैं। उनका मनोबल नीचे होता है जिसके कारण नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता है।
- **अनुज्ञात्मक या अनुमतिबोधक प्रकार का नेता** (The Permissive Type) –ऐसा नेता दूसरे के लिए कार्य की शुरूआत करता है। इसमें सहनशक्ति अधिक होती है और वह दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होता है। यह निर्धारित कार्य को पूरा तो करा लेता है, परन्तु नेतृत्व का विकास करने में असफल होता हे।
- **सहयोगी प्रकार का नेता** (The Participative Type) – ऐसा नेता दूसरों में पहल शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता तथा कार्य करने की विधियों को विकसित करने में सहायता प्रदान करता हैं वह दूसरों को अपनी आवश्यकताओं और

उनकी सीमाओं को समझने के अवसर देता है। वह अपनी भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त करता है।

टेरी ने नेतृत्व के छः प्रकार बतलाये हैं :– व्यक्तिगत नेतृत्व (Personal Leadership), अव्यक्तिगत नेतृत्व (non-personal Leadership), आदेशात्मक नेतृत्व (Authoritarian Leadership), लोकतान्त्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership), पैतृकवादी नेतृत्व (Patternalistic Leadership) तथा स्थानीय नेतृत्व (Indigenous Leadership) ।

अच्छे नेतृत्व की शैली (Style of Good Leadership)

1 कथनी शैली (Telling Style)

- औसत से अधिक कार्य– अभिमुखी और औसत से कम सम्बन्ध–अभिमुखी।
- इस शैली के लिए 'कथनी' शब्द का अर्थ है कि अनुयायियों से कहना या उन्हें आदेश देना कि उन्हें क्या, कहां और कैसे करना है।
- यह शैली तब सर्वाधिक उपयुक्त है जब अनुयायियों की तत्परता का स्तर औसत से बहुत कम है अर्थात उनमें योग्यता और सहयोगशील दोनों की कमी है। ऐसे में उन्हें निदेशित किए जाने की जरूरत है।
- इसे मार्गदर्शक, निदेशक या संरचक (guidancing, directing or structuring) शैली भी कहा जा सकता है।

2 विक्रयी शैली (Selling Style)

- औसत से अधिक कार्य–अभिमुखी और **सम्बन्ध**–अभिमुखी।
- इस शैली के लिए 'विक्रयी' शब्द का अर्थ है कि यहां अनुयायियों को सिर्फ मार्गदर्शन नही दिया जाता, बल्कि उन्हें अपनी बात कहने और स्पष्टीकरण मांगने का अवसर भी दिया जाता है। यहां क्या, कहां और कैसे के साथ–साथ 'क्यों' भी जुडा है। यहां 'क्यो' का स्पष्टीकरण ही इसे कथनी शैली से अलग करता है।
- यह शैली तब सर्वाधिक उपयुक्त है जब अनुयायियों की तत्परता का स्तर औसत से कम है अर्थात् यद्यपि वे सभी अयोग्य हैं लेकिन प्रयासरत भी है और अपने इस प्रयत्न पर आश्वस्त है।
- इसे व्याख्यापरक, सम्मतिपरक या स्पष्टीकृत(explaining, persuading or clarifying) शैली भी कह सकते है।

3. सहभागी शैली (Participating Style)

- औसत से कम कार्य–अभिमुखी और औसत से अधिक सम्बन्ध–अभिमुखी व्यवहार।
- इस शैली के जिए 'सहभागी' शब्द का आशय है कि यहां नेता के निदेशित व्यवहार की तुलना में समर्थित व्यवहार का महत्तव बढ जाता है। यहां नेता की भूमिका अपने अनुयायियों को सम्प्रेषित करने और उन्हें प्रोत्साहित करने की बन जाती है।

9.7 नेतृत्व के कार्य FUNCTIONS OF LEADERSHIP

नेतृत्व के कार्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अलग–अलग विद्वानों ने नेतृत्व की कार्य सूची में भिन्न–भिन्न कार्यो। को सम्मिलित किया है, जो इस प्रकार हैः

डाल्टन ई. मैक्फारलैण्ड ने नेतृत्व के कार्यों में भिन्न बातों को सम्मिलित किया है : (1) समूह लक्ष्यों का निर्धारण करना, (2) योजना का निर्माण करना (3) नीति तथा क्रियाविधि निर्धारित करना।, (4) अधीनस्थों का पक्ष–प्रदर्शन करना, (5) कार्यकुशल कर्मचारियों का समूह तैयार करना तथा उनका संरक्षण करना, (6) अधीनस्थों के व्यवहार का उनकी उपलब्धियों के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना, (7) अनुयायियों के लिए एक आदर्श प्रदान करना।

नॉरमैन एफ. वाशबर्न ने एक अच्छे नेता द्वारा किये जाने वाले निम्न आठ कार्यों का वर्णन किया है : (1) क्रियाओं का सूत्रपात करना, (2) आदेश प्रदान करना, (3) अपने समूह में स्थापित वाहिकाओं का प्रयोग करना, (4) अपने समूह के नियमों एवं प्रयाओं को जानना और उनकी अनुपालन करना, (5) अनुशासन बनाये रखना, (6) अधीनस्थों को सूनना, (7) अधीनस्थों की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना, तथा (8) अधीनस्थों की सहायता करना।

उक्त आधारों पर कहा जा सकता है कि एक नेता को निम्नलिखित प्रमुख कार्य करने पड़ते हैं :

1. **अधीनस्थों की भावनाओं एवं समस्याओं को समझना–** सफल नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नेता को अपने समूह के सदस्यों एवं अपने अधीनस्थों की भावनाओं एवं समस्याआं को अच्छी तरह से समझना चाहिए। लोकतान्त्रिक समाज में कर्मचारियों की भावनाओं एवं समस्याओं की अवहेलना नहीं की जा सकती।
2. **सहयोग प्राप्त करना**–एक प्रशासनिक संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति समस्त कर्मचारियों के सहयोग से ही सम्भव हो सकती है। अतः आवश्यक है कि एक नेता को सफल होने के लिए अपने समूह के कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त हो। इसके लिए उसे प्रशासक के रूप में अपने अधीनस्थों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक दिलाये कि उपक्रय की सफलता उनके हित में है।
3. **समन्वय एवं निदेशन**–एक सफल नेता का तृतीय प्रमुख कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों में आदेश एवं निदेशक द्वारा समन्वय स्थापित करना है। इसके लिए उसे संप्रेक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होगा तथा आदेश एवं निदेशन की प्रक्रिया में भी मानवीय सम्बन्धों को विशेष रूप से ध्यान में रख्ना होगा।
4. **अनुशासन बनाये रखना** – नेता का चौथा कार्य अपने समूह में अनुशासन बनाये रखना भी है क्योंकि अनुशासन द्वारा ही अपने अधीनस्थों को निर्धारित नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित कर सकता है। और कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अनुशासन में निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

5. **आदेश देना–** नेता स्वयं कार्य न करके अपने अधीनस्थों से कार्य लेता है। अतः उनके द्वारा कार्य को सम्पादित कराने हेतु उसे आदेश देना पड़ता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदेश देना ही नेता का एक महत्वपूर्ण कार्य है।
6. **प्रभावी संप्रेक्षण की व्यवस्था करना–**संगठन की गतिविधियों में सामंजस्य एवं सन्तुलन बनाये रखने के लिए और कर्मचारियों में मधुर सम्बन्धों एवं भाईचारे का वातावरण स्थापित करने लिए प्रबन्धकों अर्थात् समूह नायकों को संप्रेषण की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। इस दिशा में नेता ही इस प्रकार की संप्रेषण प्रक्रिया की व्यवस्था करता है, जिससे अधीनस्थों और उसके मध्य विचारों, आदेशों, आदि का आदान–प्रदान निरन्तर होता रहे।
7. **संगठन के प्रति निष्ठा बनाये रखना–** एक कुशल नेता का यह भी प्रमुख कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों से सम्बन्धित निर्णय आम सहमति से लें।

8. **सहयोग प्राप्त** (Securing Co-operation) – नेता अपने समूह से सहयोग प्राप्त करता है। सहयोग द्विमार्गीय प्रक्रिय होती है। अधिकारी और समूह दोनों के सहयोग से ही कार्य को सर्वश्रेष्ठ ढंग से पूरा करना सम्भव होता है। सहयोग की प्राप्ति के लिए नेता निम्न कार्य करता है : (i) वह अपने प्रत्येक अनुयायी को विश्वास दिलाताहै कि संगठन का सफल परिचालन और उसके लिए अपने समूह के हितों को जानना और समझना आवश्यकता होता है। (ii) नता के लिए एक कुशल मनोवैज्ञानिक होना भी आवश्यक है। उसके लिए अपने समूह के हितों को जानना और समझना आवश्यक होता है (iii) सहयोग विश्वास पर आश्रित होता है। लोग तभी सहयोग करते हैं, जब उनको अपने नेता में पूर्ण विश्वास होता है।
9. **शक्ति का प्रयोग** (The Use of Power) –नेतृतव के साथ शक्ति जुड़ी होती है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायिक एवं सहानुभूतिपूर्ण तरीके से भी तय किया जा सकता है और बल एवं उत्पीड़न के द्वारा भी किया जा सकता है। वस्तुतः एक नेता अपनी शक्ति, काप्रयोग उपक्रम ओर समूह के हित साधन में करता है।
10. **समन्वय एवं आदेश** (Co-ordination and Command)- वांछित परिणाम की प्राप्ति के लिए नेता आदेशों के माध्यम से अपने अधीनस्थों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। लिविंग्स्टन के अनुसार नेता द्वारा दिये जाने वाले आदेश सुनिश्चित क्रमबद्ध, लोचपूर्ण और स्पष्ट होने चाहिए।
11. **अनुशासन अनुरक्षण** (Maintenance of Discipline)- अनुशासन एक प्रकार का बल है, जो समूह के प्रत्येक सदस्य को समूह के नियमों, प्रथाओं, आदतों, परम्पराओं, आदि के अनुसार उत्पन्न परिस्थितिमें वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से प्रतिक्रिया को जन्म देता है। कुछ अनुशासन नियमों एवं कानूनों द्वारा आरोपित और कुछ स्वयं द्वारा आरोपति होता है। अनुशासन को बनाये रखने की दृष्टि से नेता द्वारा किये जाने वाले अनुरक्षण और अनुमोदन दोनों सुसंगत होने चाहिए।
12. **उच्च समूह मनोबल का विकास** (Development of High Group Morale)–नेता निरन्तर अपने समूह के सदयों का मनोबल ऊंचा बनाये रखता है, क्योंकि

मनोबल बढ़ने के साथ लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में किये जाने वाले प्रयासों में प्रबलता आती है और मनोबल के गिरने के साथ यह प्रबलता क्षीण हो जाती है।

9.8 नेतृत्व की विचारधाराएं Theories of Leadership

नेतृत्व के सम्बन्ध में अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं। इन विचारधाराओं को नेतृत्व अध्ययन के दृष्टिकोण अथवा उपागम भी कहा जाता है। नेतृत्व सम्बन्धी प्रमुख विचारधाराएं एवं दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं :

- **महान् व्यक्ति दृष्टिकोण** (The Great Man Approach)-नेतृत्व के अध्ययन के दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि 'नेता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते।' यह विचारधारा इस बात में विश्वास रखती है कि 'नेता नेता है' (A Leader is a Leader) अर्थात् वह महान् व्यक्ति है और हर तरह से योग्य है। इन नेताओं में वंशानुगत रूप से नेतृत्व गुण होते हैं। ऐसे महान जन्मजात नेताओं के उदाहरण बताए जाते हैं, जैसे महात्मा गांधी, माओ, अब्राहम लिंकन, सिकन्दर, आदि। इस विचारधारा के
- **समर्थक' अधिशासी विकास'** (Exective Development) की नीति में कोई विश्वास नहीं रखते। नेतृत्व की सफलता के मूल्यांकन के लिए वे नेता के व्यवहार एवं उसकी कार्यविधियों के अध्ययन एवं विश्लेषण में कोई रुचि नहीं रखते।

इस विचारधारा की यह मान्यता है कि ऐसे लोग किसी भी समय, काल व परिस्थिति में नेता के रूप में सफल होते हैं, क्योंकि उनमें जन्मजात नेतृत्व कौशल व गुण पाए जाते हैं। यह कहा जाता है कि इतिहास इन्हीं महान व्यक्तियों की कथा कहानी है। ऐसे महान् नेता अपने युग के रचयिता होते हैं, न कि वह युग उनका रचयिता होता है।

इस विचारधारा से निम्नांकित आशय झलकता है :

(1) कुछ लोगों को महान् बनने का दैवी वरदान मिलता है। ऐसे नेता मानवता के लिए दैवी उपहार हैं। इन नेताओं में दिव्य गुण व विशिष्टता होती है।

(2) नेता बनने के लिए और अपने अनुयायियों को प्रभावित करने के लिए तथा सफलता पाने हेतु जन्मजात नेतृत्व कौशल आवश्यक और पर्याप्त होते हैं।

(3) यह विचारधारा इस बात को अमान्य बनाती है कि किसी व्यक्ति को नेतृत्व करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। नेतृत्व गुणों को शिक्षा व प्रशिक्षण द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता।

गुण दृष्टिकोण (The Trait Approach) –'गुण' विचारधारा महान् व्यक्ति दृष्टिकोण से भिन्न है। गुण दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि सफल नेतृत्व नेता की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं पर आश्रित होता है और उन विशेषताओं व गुणों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण करना सम्भव होता है। यहां नेतृत्व के विश्लेषण करने का उद्देश्य बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक और अन्य व्याक्तत्वजन्य विशेषताओं को पहचान करना रहा है जो प्रभावी नेताओं में पाए जाते हैं।

जहां तक व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के निर्धारिण का प्रश्न है यह अत्यनत विवादास्पद मामला है। गुण सूची में 5–6 से लेकर 20 इससे भी अधिक गुणों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत गुणसूची उपलब्ध नहीं है। यद्यपि अन्यशास्त्री

किसी एक सामान्य गुण सूची के सम्बन में मतैक्य उत्पन्न नहीं कर सके हैं तथापि निम्न तीन सामान्य गुण क्षेत्रों के सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से एकमत हैं: (1) बुद्धिमत्ता, (2) संचार चातुर्य, (3) समूह लक्ष्य की मूल्यांकन योग्यता।

स्टोइगिल ने गुण विचारधारा मूलक साहित्य का विस्तृत सर्वेक्षण करने के बाद यह बताया है कि एक प्रभावी नेता में विभिन्न गुण होते हैं। इनमें से पांच शारीरिक गुण, चार बुद्धि और योग्यतामूलक गुण, सोलह व्यक्तित्व जन्य गुण, छः कार्य से सम्बधी गुण तथा नौ सामाजिक गुण हैं।

स्टोडगिल द्वारा प्रस्तृत्व गुणों के ये वर्गीकरण इस प्रकार हैं :

- शारीरिक गुण – जैसे लम्बाई, सवास्थ्य, हृष्ट–पुष्ट, रंग–रूप, आदि।
- बुद्धि और योग्यता का गुण–जैसे धैर्य, उदारता, आत्मविश्वास, आदि।
- व्यक्तित्वजन्य गुण–जैसे धैर्य, उदारता, आत्मविश्वास, आदि।
- कार्य से सम्बन्धित गुण–जैसे उपलब्धि, उद्यमशीलता, पहलपन, प्रबलपन, प्रबल इच्छाशक्ति, आदि।
- सामाजिक गुण–जैसे सहकारिता, पर्यवेक्षकीय योग्यता, अन्तर्व्यक्तिगत कौशल, आदि।
- **परिस्थितीय दृष्टिकोण** (The Situation Approach) – इस दृष्किोण का विकास आर. एम. स्टोडगिल एवं उकने सहयोगियों द्वारा किया गया है। यह विचारधारा इस तथ्य पर बल देती है कि नेतृत्व की सफलता उस परिस्थिति विशेष से प्रभावित होती है, जिसमें नेता कार्य करता है। नेतृत्व की सफलता के अध्ययन में परिस्थिति विशेष का विश्लेषण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक सफल नेता का व्यवहार सदैव एकसा नहीं रहता। वह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न तरह से व्यवहार करता है।

परिस्थितीय दृष्टिकोण वह आकस्मिकता मत है जिसमें ध्यान अनुयायियों पर केन्द्रित किया गया है। नेतृत्व पद्धति का चुनाव करके सफल नेतृत्व प्राप्त किया जा सकता है।यह चुनाव हरसे–ब्लेनकार्ड के मतानुसार अनुयायी की परिपक्वता पर निर्भर करता हैं यह मत नेतृत्व के दो परिणाम मानता है–लक्षित कार्य व्यवहार तथा सम्बन्ध व्यवहार। इन अन्वेषकों का विश्वास है कि कार्मियों की कार्य में परिपक्वता बढ़ने के साथ–साथ नेतृत्व पद्धति में भी बदलाव किया जाना चाहिए। हरसे–ब्लेनकार्ड ने चार नेतृत्व पद्धतियों का वर्णन किया है जिन्हें कार्मिकों की परिपक्वता स्तरों से सम्बन्धित किया जा सकता है : (i) निदेश, (ii) विक्रय, (iii) भाग ग्रहण एवं (iv) हस्तान्तरण।

व्यवहार दृष्टिकोण (The Behavioural Approach) – व्यावहार दृष्टिकोण में नेता के व्यक्तिगत गुणों और उसकी विशेषताओं के स्थान पर उसके व्यवहार के अध्ययन एक अधिक बल दिया जाता है। व्यवहार से अभिप्राय नेता द्वारा किये जाने वाले कार्य और नेतृत्व विश्लेषण के इस दृष्टिकोण में अधिकारियों द्वारा निरोजन, अभिप्रेरणा एवं संचार में लगाया जाने वाला समय और विधि का अध्ययन सम्मिलित है। इस दृष्टिकोण के अनुसार नेतृत्व की सफलता नेताओं के व्यवहार पर निर्भर करती है अर्थात् किसी नेता की सफलता का मूल्यांकन उसके व्यवहार का विश्लेषण करके ही किया जा सकता है।

- **लक्ष्य विचारधारा** (Path-Goal Theory of Leadership)- नेतृत्व की इस विचारधारा के प्रारम्भिक प्रतिपादक हाऊस है किन्तु बाद में इसे हाऊस और मिचैल द्वारा विकसित किया गया। यह विचारधारा ओहिओ स्टेटे नेतृत्व अध्ययन और अभिप्रेरणा के प्रत्याशा सिद्धान्त से प्रेरित है।

पथ–लक्ष्य विचारधारा का इस बात पर बल है कि नेता अधीनस्थों को पथ–लक्ष्यों तथा आवश्यकता–सन्तुष्टि के प्रति उनके अवबोध को प्रभावित कर संगठनात्मक प्रभावशीलता को अनुकूलतम बना सकते हैं। इसकी पहली मान्यता यह है कि अधीनस्थों द्वारा नेता को स्वीकारा जाता है और उसके लक्ष्यों, योजनाओं व नीतियों का उस सीमा तक प्रत्युत्तर दिया जाता है जिस सीमा तक उन्हें यह लगता है कि उसने उनकी तात्कालिक या भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी।

इसकी दूसरी मान्यता है कि नेता अपने अधीनस्थों से सफलतापूर्वक कार्य लेने व संगठनात्मक लक्ष्यों में योगदान करने में उस सीमा तक सफल होगा जिस सीमा तक उन्हें यह लगता है कि उनसे उनकी तात्कालिक या भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी। इसकी मान्यता यह है कि अधीनस्थों द्वारा नेता को स्वीकारा जाता है और उसके लक्ष्यों, योजनाओं व नीतियों का उस सीमा तक प्रत्युत्तर दिया जाता है जिस सीमा तक उन्हें यह लगता है कि उनसे उनकी तात्कालिक या भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी। इसकी दूसरी मान्यता है कि नेता अपने अधीनस्थों से सफलतापूर्वक कार्य लेने व संगठनात्मक लक्ष्यों में योगदान करने में उस सीमा तक सफल होगा जिस सीमा तक वह (अ) कर्मचारियों की आवश्यकता–सन्तुष्टि को प्रभावी निष्पादन पर आधरित करताहै और, (ब) उन्हें प्रभावी निष्पादन के लिए तैयार करने, (ब) उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता व मार्गदर्शन देने, तथा (स) उनकी आवश्यकता–सन्तुष्टि को प्रभावी निष्पादन पर आधारित करने की कितनी योग्यता रखताहै।

इस प्रकार, जब कर्मचारियों को यह लगता है कि उनकी आवश्यकता निष्पादन पर आधारित करने की कितनी योग्यता रखता है। इस प्रकार, जब कर्मचारियों को यह लगता है कि उनकी आवश्यकता सन्तुष्टि उनके प्रभावी निष्पादन पर निर्भर है, तब वे संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में अपनी पूरी क्षमता से काम करेंगे और अपना अनुकूलतम योगदान प्रदान करेंगे।

- **जीवन चक्र दृष्टिकोण**, (The Life Cycle Approch) –ए.के. कोरमेन पाल हर्से तथा केनेथ ब्लेनकार्ड इस दृष्टिकोण के प्रणेता हैं। यह दृष्टिकोण 'ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययनों' का परिणाम है। जीवन चक्र दृष्टिकोण में नेता की विशेषताओं तथा परिस्थिति के स्थान पर अनुयायियों की महत्ता पर बल दिया गया है। इसकी मान्यता के अनुसार नेतृत्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक अनुयायी होते हैं क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्तिगत रूप से वे ही किसी नेता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करते हैं और सामूहिक रूप से वे ही वस्तुतः नेता की व्यक्तिगत शक्ति का निर्धारण स्रोत होते हैं।

इस नेतृत्व की यह मौलिक मान्यता है कि सर्वाधिक प्रभवशाली नेतृत्व शैली की उपयुक्तता अनुयायियों की तत्परता–सतर पर निर्भर है। हर्से और ब्लेनकार्ड ने कई परिस्थित्यात्मक कारकों की चर्चा की है–नेता, अनुयायी, शीर्ष अधिकारी (boss) , मुख्य

सहयोगी (key associates), संगठन, कार्य की प्रकृति (job-demands) और निर्णय–समय। लेकिन उनका यह दृढ़ विचार है कि किसी भी नेतृत्व–स्थिति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक नेता और उनके अनुयायियों के बीच सम्बन्ध ही है। यदि अनुयायी नेता का अनुसरण न करने की ठान लें तो फिर यह बात अर्थहीन है कि शीर्ष अधिकारी और मुख्य सहयोगियों के क्या विचार हैं, अथवा कार्य की प्रकृति कैसी है। अनुयायियों के बिना नेतृत्व नहीं किया जा सकता है।

9.9 नेतृत्व के प्रकार (Types of Leadership)

परिस्थित्यात्मक नेतृत्व

- वह अपने अधीनस्थों को अपने कार्यक्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की अनुमति देता है।
- वह अपने अधीनस्थों को उन निर्णयों को लेने में सहभागी बनाता है जो उन्हें प्रभावित करते हैं।
- वह अपने आदेशों में अन्तर्निहित कारणों को स्पष्ट करता है तथा भावी योजनाओं से समूह को अवगत रखता है।
- वह अपने अनुयायियों को एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है।।
- वह कर्मचारी–केन्द्रित अधिक होता है और कर्मचारियें को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। व मूलाधार
- **पॉल हर्से और ब्लेनकार्ड** का मानना है कि नेता की कौन–सी नेतृत्व शैली सर्वाधिक उपयुक्त होगी, यह वस्तुतः लोगों के तत्परता–स्तर पर निर्भर है। इससे स्पष्ट है कि अनुयायियों या अधीनस्थों की तत्परता का स्तर यह निर्धारित करता है कि नेता द्वारा किस नेतृत्व शैली का चयन होना चाहिए। तत्परता को परिपक्वता (maturity) अथवा विकास (development) भी कहा जा सकता है।

निर्बाध नेतृत्व (Free-rein Leadership) – यह एक ऐसे प्रकार का नेतृत्व है जिनमें नेता अपने अनुयायियों और अधीनो के साथ सम्पर्क नहीं रखता और उन्हें अपने लक्ष्य निर्धारित करने तथा स्वयं निर्णय लेने के लिए अवसर प्रदान करता है। वास्तव में, अधीनस्थानों को पर्याप्त अधिकार सौंप दिये जाते हैं। ऐसा नेता मार्गदर्शन नहीं करता है। इस प्रकार वह आज्ञा देने के आदेश होता है। वह सम्पूर्ण प्रयास में शायद ही अपना योगदान देता है।

फलतः सम्पूर्ण संगठन में अव्यवस्था पायी जाती है, क्योंकि वह व्यक्तियों को विभिन्न दशाओं में कार्य करने की अनुमति प्रदान करता है। ऐसा नेतृत्व उसी स्थिति में सफल हो सकता है जब अधीनस्थ पूर्णतया समझदार तथा कर्तव्य के प्रति निष्ठावान हो। यही कारण है क इस प्रकार का नेतृत्व कुछ विशेष परिस्थितियों में ही सफल हो सकता है। सामान्य रूप से इस प्रकार के नेतृत्व को अपनाने का सुझाव नहीं दिया जा सकता।

जनतन्त्रीय नेतृत्व (Democratic Leadership) –जनतन्त्रीय विचारों वाला नेता ऐसा व्यक्ति होता है जो कि समूह के साथ विचार–विमर्श करके

नीतियों का निर्माण करता है। इस प्रकार के नेतृत्व की अवधारणा अधिकार तथा निर्णयन के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। एक लोकतांत्रिक नेता अपने अनुयायी को एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा समूह के सदस्यों की निपुणताओं और योग्यताओं का पूरा–पूरा लाभ उठाता है।

9.10 नेतृत्व सम्बन्धी गुण (Merits of Leadership)

1. संप्रेषण की योग्यता (Ability to Communicate)– एक अच्छे नेता में निदेशों एवं बिचारों तथा आदेशों को अन्य व्यक्तियों को संप्रेषित करने की योग्यता होनी चाहिए। साथ ही साथ संप्रेझण के परिणमस्वरू॰ उसमें अन्य व्यक्तियों की प्रतिक्रिया जानने की झमता भी होनी चाहिए।

2. सत्यनिष्ठा (Integrity)–नेतृत्व सर्वोत्तम ढंग से उसी समय कार्य करता है जबकि वह सद्भावना, निष्कपटता तथा सत्यनिष्टा, नैतिक सुटृढता एवं सच्चाई पर आधारित होता है।

3. निर्णायकता (Decisiveness)– यह गुण नेता मे निर्णय लेने से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक नेता में किसी भी परिस्थिति मे निर्णय लेने की झमता अवश्य होनी चाहिए क्योकि प्रभावशाली निर्णयकर्ता पर भी संगठन की सफलता निर्भर करती है।

4. उत्साहित करने की योग्यता (Ability to Inspire)– एक नेता मे अपने अनुयायियों को प्रभावित करने की पर्याप्त योग्यता होनी चाहिए।

5. साहस (Courage)– एक नेता में उन कार्यो को करने जिन्हें वह ठीक समझता है, का नैतिक साहस होना चाहिए। उन्हें निर्णय लेने और उन निर्णयों के अनुसार कार्य करने में अडिग बने रहने के लिए निर्भीक होना चाहिए। फील्ड मार्शल स्लिम के अनुसार, ''बिना साहस के कोई भी सद्गुण प्रभावी नही होते है। क्योकि विश्वास, आशा तथा दया आदि सभी सद्गुण नही रह पाते जब तक कि उनका प्रयोग करने के लिए साहस का आश्रय नही लिया जाता है''

6. विचारों में लोचशीलता (Flexibility in Ideas)–त्रीव गति से परिवर्तनशील सामाजिक आर्थिक वातावरण मे एक नेता में लोचशीलता होना आवश्यक है। परिस्थितियों के बदलने पर उसमें अपने विचारों में परिवर्तन करने की झमता भी होनी चाहिए।

7. उत्तरदायित्व (Responsbility)–एक अच्छे नेता मे दूसरे उत्तरदायित्व को निभाने की झमता भी होनी चाहिए। अपने उत्तरदायित्व को वहन करने पर ही वह अपने नैतिक कर्तव्य को पूरा कर सकता है।

8. अनुभूति (Persuasiveness)–एक नेता में दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं, जिज्ञासाओं, हितों एवं परिस्थितियों को समझने एवं अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए। एक अच्छा नेता वही माना जाता है जो अपने अधीनस्थों की भावनाओं के अनुरूप कार्य करता है। लोग ऐसे नेता के आदेशों का अनुपालन करते है, उसके निर्देशानुसार अपना कार्य स्वेच्छा से करने के लिए तत्पर रहते है।

9. समझदारी :– एक नेता में अपने अनुयायियों से अधिक समझदारी होनी चाहिए जिससे कि वह पूर्व उचित मार्गदर्शन दे सके और उनसे अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके।

10. अच्छा निर्णय :– एक अच्छे नेता में भविष्य के सन्दर्भ में सोचने एवं समझने की क्षमता होनी चाहिए जिससे कि वह भविष्य में किये जाने वाले कार्यों एवं समस्याओं के समाधान के लिए अच्छे निर्णय ले सके।

उपर्युक्त गुणों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि एक नेता में दो प्रकार के गुणों का होना नितान्त आवश्यक है : 1. अनिवार्य गुण तथा, 2. आन्तरिक एवं अमूर्त गुण।

अनिवार्य गुणों के अन्तर्गत साहस, दूरदर्शिता, दृढ़ संकल्प, निर्णायकता, बुद्धिमानी कल्पना शक्ति, सक्रियता निपेक्षा, समन्वय, संप्रेषण एवं प्रबन्ध करने की क्षमता, रचनात्मकता, आदि गुण सम्मिलित किये जाते है।

आन्तरिक गुणों के अन्तर्गत सत्यनिष्ठा, नैतिक, साहस, उदारता कूटनीतिज्ञता, व्यवहार कौशल शिष्टाचार सामंजस्य का तथा परानुभूति के गुण सम्मिलित है।

ये सभी गुण मिलकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाते हैं। नेता का व्यक्तित्व प्रसन्नचित होना चाहिए ये सभी गुणों के होने पर उसके सहायोगी एवं अनुयायी उसे पसन्द करेंगे। और उस पर विश्वास करेंगे साथ–साथ एक अच्छे नेता को अपने अधीनस्थों को प्रोत्साहित करने तथा उनकी सहायता करने की तत्परता होनी चाहिए।

नेता को अपने अधीनस्थों की विशेषताओं का मूल्यांकन भी करना चाहिए कि उनमें कितनी सक्षमता, अभिप्रेरणा तथा प्रतिबद्धता है। यदि उनमें आत्मनिर्भरता की अत्यधिक आवश्यकता है। निर्णयन के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की तत्परता है, अस्पष्टता कि प्रति उच्चस्तरीय सहनशीलता है, समस्या में रूचि है, संगठनात्मक लक्ष्यों के प्रति समझ व प्रतिबद्धता है, निर्णय लेने के लिए आवश्यक ज्ञान व कुशलता है तथा निर्णयन में सहभागी बनने की अपेक्षा है तो ंउन्हें निर्णय लेने की अधिक स्वतन्त्रता दी जा सकती है।

परिस्थितियों में निहित शक्तियां भी नेतृत्व शैली के चुनाव को प्रभावित करती जैसे कि संगठन की विशेषताएं जैसे उसके परम्पराएं कार्यशील ईकाई का आकार उनका भौगौलिक स्थल उपक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु आवश्यक स्तर संगठनात्मक और संगठन के भीतर अन्तरक्रियाओं की मात्रा समूह सदस्यों का एक इकाई के रूप में साथ साथ काम करने की क्षमता समस्या की प्रकृति व उसके लिए अपेक्षित ज्ञान व सफलता, समय का दबाव और दीर्घकालीन व्यूहरचना।

नेता को अपने अधीनस्थों की वैयक्तिक रूप से और समूह सदस्यों के रूप में विशेषताओं का तथा संगठन एवं उदाहरण में निहित शक्तियों का पता होना चाहिए, उसमें परिस्थिति के अनुरूप उपयुक्त नेतृत्व शैली को अपनाने की स्पष्टता होनी चाहिए। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि एक सफल प्रबन्धक न तो सुदृढ़ होता है और न ही अनुमत प्रस्तुत परिस्थितियों का सही सही आकलन कर अपने लिए सर्वाधिक उपयुक्त नेतृत्व व्यवहार का निर्धारण करता है। और वैसा व्यवहार करता है। वह अन्तदृष्टिपूर्ण तथा लाचशील दोनों होता है। इसलिए उसे नेतृत्व की समस्या असमंजस में नहीं डालती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि टैननबाम और शिमिट ने प्रबन्धकों के लिए नेतृत्व शैलियों के चयन हेतु व्यावहारिक मार्गदर्शन रूपरेखा प्रस्तुत की है। उनका यह योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वे इस बात को मान्यता देते है कि सभी परिस्थितियों में एक विशिष्ट नेतृत्व शैली प्रभावित नहीं होती। प्रबन्धक को प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुरूप अपने नेतृत्व व्यवहार में परिवर्तन चाहिए।

नेतृत्व के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया है : (1) स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वस्थता या क्षमता,
(2) समझदारी मानसिक शक्ति, (3) नैतिक गुण, (4) समानता, तथा (5) प्रबन्धकीय योग्यता। **श्री केट्ज** ने एक नेता में तीन प्रकार के गुणों के होने पर विशेष बल दिया है : (1) तकनीकी गुण, (2) माननीय गुण तथा (3) सैद्धान्तिक गुण। तकनीकी गुणों से आशय उसकी उस योग्यता से है जिसके द्वारा वह अपने ज्ञान, एवं तकनीकों का समुचित रूप से अपने कार्य निष्पादन में प्रयोग करने में समर्थ हो पाता है। यह योग्यता उसको अनुभव, तथा प्रशिक्षण से प्राप्त होती है। मानवीय गुण के अर्न्तगत उसकी उस योग्यता एवं निर्णयन की क्षमता को सम्मिलित किया तथा सहायता से वह अन्य व्यक्तियों के साथ कार्य करने में अभिप्रेरण प्रक्रिया को समझने में तथा प्रभावी नेतृत्व का उपयोग में स्वयं हो पाता है। सैद्धान्तिक गुण से आशय उसकी योग्यता से है जो उसे समग्र संगठन को समझने तथा यह ज्ञात उसमें उसका क्या स्थान है, में समर्थ बनाती है।

9.11 सार संक्षेप

इस प्रकार यह कहां जा सकता है कि एक अच्छे नेता में आत्मज्ञान पर आधारित आत्मविश्वास होना चाहिए। इस गुण के व्यक्तियों के विश्वास को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा। एक अच्छे नेता में स्फूर्ति , शक्ति, चेतना और सजगता का मिश्रण होना आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा ही वह अधीनस्थ एवं अनुयायियों को तैयार करने के लिए सक्षम हो पाता है। यह गुण उसके अनुभव एवं ज्ञान में वृद्धि करता है और उसका व्यक्तिगत प्रभाव होता है।

9.12 अभ्यास प्रश्न

1. नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियों की व्याख्या कीजिये ?
2. नेतृत्व की परिभाषाओं का वणर्न कीजिये ?
3. नेतृत्व की प्रमुख विशेषताओं को समझाइये ?
4. नेतृत्व की शैली का वर्णन कीजिये ?
5. नेतृत्व के कार्यों का वर्णन कीजिये ?
6. नेतृत्व की विचारधाराओं की व्याख्या कीजिये ?
7. नेतृत्व के प्रकारों का वणर्न कीजिये ?
8. नेतृत्व सम्बन्धी गुणों को समझाइये ?

9.13 पारिभाषिक शब्दावली

नेतृत्व	Leader	शैली	Style
विशेषताएं	Quality	विचारधारा	Theories
गुण	Merits	स्पष्टीकरण	explaining
सहभागी	Participating	अनुभूति	Persuasiveness
सत्यनिष्टा	Integrity	दृष्टिकोण	Approach
चक्र	Cycle	नौकरशाह	Bureaucrat

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- फाड़िया, बी0 एल0 : लोक प्रशासन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- शर्मा, राजेन्द्र कुमार:राजनैतिक समाजशास्त्र,अटलांटिक पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर
- Merriam,C:Political Power,McGraw Hill,New York 1934
- Hyman,H:Political Socialisation,Free Press,1959
- Gouldner,A.(ed.):Studies in Leadership,Harper,New York,1954

इकाई–10

संचार : एक परिचय

Communication : an Introduction

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1परिचय
10.2 संचार की परिभाषा
10.3 संचार का महत्व
 10.3.1 नियोजन एवं संचार
 10.3.2 संगठन एवं संचार
 10.3.3 उत्प्रेरण एवं संचार
 10.3.4 समन्वय एवं संचार
 10.3.5 नियन्त्रण एंव संचार
 10.3.6 निर्णयन एवं संचार
 10.3.7 प्रभावशीलता
 10.3.8 न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन
10.4 संचार में चरण
10.5 संचार के ढंग
10.6 संचार में कारक
10.7 संचार–प्रक्रिया एवं तत्व
10.8 संचार नेटवर्क
10.9 संचार, सोच–विचार करने की प्रक्रिया के रूप में
10.10 संचार प्रेषण के रूप में
10.11 संचार एक सांस्कृतिक उत्पादक के रूप में
10.12 प्रभावी संचार की विशेषतायें
10.13 स्व–मूल्यांकन हेतु प्रश्न रिक्त स्थान, विकल्पीय, एक शब्द, अति लघु
10.14 सार संक्षेप
10.15 पारिभाषिक शब्दावली
 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. संचार की अवधारणा एवं परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
2. संचार के महत्व एवं ढंगों को लिख सकेंगे।
3. संचार के कारकों को समझ सकेंगे।
4. संचार की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
5. संचार के तत्वों को समझ सकेंगे।
6. संचार नेटवर्क का जान सकेंगे।
7. संचार की विशेषताओं को लिख सकेंगे।

10.1 परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और संचार करना उसकी प्रकृति है । अपने भावों व विचारों का अदान–प्रदान करना उसकी जन्मजात प्रकृति है । ऐसा माना जा सकता है कि मानव के अस्तित्व में आने के साथ ही संचार की आवश्यकता का अनुभव हो गया हो गया होगा । जोकि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता हो गया। संचार किसी भी समाज के लिए अति आवश्यक है । जो स्थान शरीर के लिये भोजन का है, वही समाज व्यवस्था में संचार का है । मानव का शारीरिक एवं मानसिक विकास पूरी तरह से संचार–प्रक्रिया से जुड़ा रहता है । जन्म से मृत्यु तक मनुष्य एक दूसरे से बातचीत के माध्यम से सम्बद्ध रहता है, एक दूसरे को जनता है, समझता है तथा परिपक्व होता है। संचार को मानव सम्बन्धों की नींव कहा जा सकता है । समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि किसी भी परिवार, समूह, समुदाय तथा समाज में यदि मनुष्यों के बीच परस्पर वार्तालाप बन्द हो जाये तो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी एवं मानसिक विकृतियाँ जन्म लेने लगेंगी।

10.2 संचार की परिभाषा

कम्युनिकेशन (Communication) शब्द लैटिन भाषा के कम्युनिस (Communis) से बना है जिसका अर्थ है to impart, make common । मन के विचारों व भावों का आदान–प्रदान करना अथवा विचारों को सर्वसामान्य बनाकर दूसरों के साथ बाँटना ही संचार है ।

संचार शब्द, अंग्रेजी भाषा के शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है । जिसका विकास Commune शब्द से हुआ है । जिसका अर्थ है अदान–प्रदान करना अर्थात बाँटना ।

संचार एक आधुनिक विषय है । मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, समाज कार्य जैसे विषयों से इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है । विभिन्न विचारकों ने इसकी परिभाषा को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है ।

चेरी के अनुसार संचार उत्प्रेरक का अदान प्रदान है ।

शेनन ने संचार को परिभाषित करते हुए कहा है कि एक मस्तिक का दूसरे मस्तिक पर प्रभाव है ।

मिलेन ने संचार को प्रशासनिक दृष्टिकोण से परिभाषित किया है । आपके अनुसार, संचाार प्रशासनिक संगठन की जीवन–रेखा है ।

डा. श्यामारचरण दूबे के शब्दों में :–संचार सामाजीकरण का प्रमुख माध्यम है । संचार द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती है । सामाजीकरण की प्रत्येक स्थिति और उसका हर रूप संचार पर आश्रित है । मनुष्य जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी तब बनता है, जब वह संचार द्वारा सांस्कृतिक अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार–प्रकारों को आत्मसात कर लेता है।

बीबर के अनुसार, वे सभी तरीके जिनके द्वारा एक मानव दूसरे को प्रभावित कर सकता है, संचार के अन्तर्गत आते है ।

न्यूमैन एवं समर के दृष्टिकोण में, संचार दा या दो से अधिक व्यक्तियों के तथ्यों, विचारों तथा भावनाओं का पारस्परिक अदान–प्रदान है ।

विल्वर के अनुसार संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्रोत से श्रोता तक सन्देश पहुँचता है ।

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संचार एक प्रकार की साझेदारी है, जिसमें ज्ञान, विचारों, अनुभूतियों और सूचनाओं का अर्थ समझते हुए पारस्परिक आदान–प्रदान किया जाता है । यह साझेदारी प्रेषक और प्राप्तिकर्ता के मध्य होती है। संचार में निहित संवाद का प्रभावकारी और अर्थपूर्ण होना आवश्यक है । संचार हमें एक सूत्र में बाँधता है। संचार को समाज–निर्माण की धुरी भी कहा जा सकता है, जिसे जीवन से परित्याग करने से मनुष्य की भावनात्मक हानि हो सकती है।

10.3 संचार का महत्व

संचार एक द्वि–मार्गीय प्रक्रिया है जहाँ पर विचारों का आदान–प्रदान होता है । बिना संचार के मानवीय संसाधनों को गतिमान किया जाना असंभव है । संचार को प्रेषित करने के अनेक माध्यम है । संचार को तभी सफल माना जा सकता है जब प्रेषित सन्देश को प्राप्तकर्ता अर्थनिरूपण कर उसकी प्रतिपुष्टि करें । मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं में संचार का अत्याधिक महत्व है । संचार को व्यावहारिक तत्व भी माना जा सकता है क्योंकि एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है । प्रशासन एवं संगठन में संचार केन्द्रीय स्तर पर रहता है जो मानवीय एवं संगठन की गतिविधियों को संचालित करता है । सचांर की गतिविधियों को संचालित करता है । संचार के महत्व के सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता कि विश्व की सभी समस्याओं का कारण एवं समाधान है । प्रभावी संचार के अभाव में प्रबन्ध को कल्पना तक नहीं की ला सकती । प्रशासन में संचार के महत्व को स्वीकारते हुए एल्विन डाड लिखते है कि ''संचार प्रबन्ध की मुख्य समस्या है ।'' थियो हैमेन का कहना है कि ''प्रबन्धकीय कार्यो की सफलता कुशल संचार पर निर्भर करती है। टेरी के शब्दों में'' संचार उस चिकने पदार्थ का कार्य करता है जिससे प्रबन्ध प्रक्रिया सुगम हो जाती है। सुओजानिन के अनुसार' अच्छा संचार प्रबन्ध के एकीकृत दृष्टिकोण हेतु बहुत महत्वपूर्ण है। संचार के महत्व को निम्न बिन्दुओं के सन्दर्भ में भली प्रकार समझा जा सकता है–

1. **नियोजन एवं संचार** – नियोजन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक कार्य है लक्ष्य की प्राप्ति कुशल नियोजन के प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। संचार योजना के निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन दोनों के लिये अनिवार्य ह। कुशल नियोजन हेतु अनेक प्रकर की आवश्यक एवं उपयोगी सूचनाओं, तथ्यों एवं आँकड़ों और कुशल क्रियान्वयन हेतु आदेश, निर्देश एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है ।
2. **संगठन एवं संचार** –अधिकार एवं दायित्वों का निर्धारण एवं प्रत्यायोजन करना और कर्मचारियों को उनसे अवगत कराना संगठन के क्षेत्र में आते है ये कार्य भी बिना संचार के असम्भव है। बर्नाड के शब्दों में'' संचार की एक सुनिश्चित प्रणाली की आवश्यकता संगठनकर्ता का प्रथम कार्य है।''
3. **अभिप्रेरणा एवं संचार**– प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जाता है, जिसके लिए संचार की आवश्यकता पड़ती है। ड्रकर के शब्दों में'' सूचनायें प्रबन्ध का एक विशेष अस्त्र है प्रबन्धक व्यक्तियों को हॉकने का कार्य नहीं करता वरन वह

उनको अभिप्रेरित, निर्देशित और संगठित करता है। ये सभी कार्य करने हेतु मौखिक अथव लिखित शब्द अथवा अंकों की भाषा ही उसका एकमात्र औजार होती है ।''

4. **समन्वय एवं संचार** – समन्वय एक समूह द्वारा किये जाने वाले प्रयासों को एक निश्चित दिशा प्रदान करने हेतु आवश्यक होता है । न्यूमैन के अनुसार'' अच्छा संचार समन्यव में सहायक होता है।'' कुशिग नाइलस लिखती है कि समन्वय हेतु अच्छा संचार अनिवार्यता है । बर्नार्ड के शब्दों में '' संचार वह साधन है जिसके द्वारा किसी संगठन में व्यक्तियों को एक समान–उद्देश्य की प्राप्ति हेतु परस्पर संयोजित किया जा सकता है'' ।
5. **नियन्त्रण एंव संचार** – नियन्त्रण द्वारा कुशल प्रबंधन यह जानने प्रयास करता है कि कार्य पूर्व निश्चित योजनानुसार हो रहा है अथवा नही ? इसके अतिरिक्त वह त्रुटियों एवं विचलनों को ज्ञात कर यथाशीध्र ठीक करने और उनकी पुनरावृत्ति को रोकने का प्रयास करता है । ये सभी कार्य बिना कुशल संचार प्रणाली के सम्भव नहीं होता है ।
6. **निर्णयन एवं संचार** – सही निर्णयन लेने हेतु प्रबंन्धकों को सही समय पर सही एवं पर्याप्त सूचनाओं, तथ्यों एवं आंकड़ों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है । यह कार्य भी बिना प्रभावी संचार प्रणाली के सम्भव नही होता है ।
7. **प्रभावशीलता** – प्रभावी सेवाएं उपलबध करने के लिये जरूरी है कि स्टाफ के सदस्यों के बीच विचारों एवं मुक्त अदान–प्रदान बना रहे है । किसी संगठन की प्रभावशीलता इसी बात पर निर्भर होती है कि वहां के कर्मचारी आपस में विचारों को कितना आदान–प्रदान करते है और वे एक दूसरे की बात कितनी समझते हैं
8. **न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन**– समस्त विवेकशील प्रबंधकों का लक्ष्य अधिकतम, श्रेष्ठतम् व सस्ता उत्पादन करना होता है। उत्पादकता बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि संगठन में मतभेद न हो, परस्पर सद्भाव हो , जिसमें संचार' बहुत सहायक सिद्ध हुआ है ।

10.4 संचार में चरण

संचार प्रक्रिया में चरणों को चार मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

प्रथम चरण:– प्रेषक संदेश को कूटसंकेत करता है एवं भेजने के लिये उपयुक्त माध्यम का चयन करता है । प्रेषित किये जाने सन्देश का प्रेषक मौखिक, अमौखिक अथवा लिखित रूप में उचित माध्यम से भेजना है ।

द्वितीय चरण:–प्रेषक दूसरे चरण में सन्देश को भेजता है तथा यह प्रयास करता है कि सन्देश प्रेषित करते समय किसी भी प्रकार का व्यवधान न उत्पन्न हो तथा प्राप्तकर्ता बिना किसी व्यवधान के संदेश को समझ सकें ।

तृतीय चरण:– प्राप्तकर्ता प्राप्त सन्देश का अर्थ निरूपण करता है तथा आवश्यकता के अनुसार उसकी प्रतिपुष्टि करने का प्रयास करता है ।

चर्तुथ चरण:– प्रतिपुष्टि चरण में प्राप्तकर्ता प्राप्त सन्देश का अर्थनिरूपण करने के पश्चात् प्रेषक के पास प्रतिपुष्टि करता है ।

10.5 संचार के ढंग

वर्तमान समय में संचार की अनेक ढंगों का उपयोग किया जा रहा है जो कि निम्नवत् है

1. **ज्ञापन** :– ज्ञापन विधि का प्रयोग अधिकतर आन्तरिक संचार के लिये किया जाता है जहाँ पर सदस्यों तथा सदस्यों से सम्बन्धित फर्म के मध्य संक्षिप्त रूप में सूचना का अदान–प्रदान होता है।
2. **पत्र** :–वाहय संचार के अधिकतर पत्रों के माध्यमों से सूचना अथवा सन्देश का आदान–प्रदान किया जाता है । यथा–आदेश, व्यापार से सम्बन्धित अभिलेख इत्यादि।
3. **फैक्स** :– फैक्स भी संचार की विधि है जिसके द्वारा त्वरित संन्देश प्राप्तकर्ता तक पहुँचता है ।
4. **ई–मेल** :– सूचनाओं को हस्तांतरित करके के लिये ई–मेल के द्वारा त्वरित एवं सुविधाजनक रूप में सन्देश को प्रेषित किया जाता है ।
5. **सूचना** :– सूचना भी संचार की एक प्रविधि है । उदाहरण के लिये किसी संगठन में कर्मचारियों को उनसे सम्बन्धित रोजगार, सुरक्षा, स्वास्थ्य, नियम, कानून तथा कल्याणकारी सुविधायें सूचनाओं द्वारा प्रदान की जाती है ।
6. **सारांश** :– सारांश प्रविधिका प्रयोग संचार के लिये अधिकतर मीटिंग में किया गया जाता है।
7. **प्रतिवेदन** :– प्रतिवेदन भी संचार की एक प्रविधि है यथा वित्तीय प्रतिवेदन, समितियों की सिफारिशें, प्रौधोगिकी प्रतिवेदन इत्यादि ।
8. **दूरभाष** :– मौखिक संचार के लिये दूरभाष का प्रयोग किया जाता है । दूरभाष प्रविधि का प्रयोग वहाँ पर अधिक किया जाता है जहाँ पर आमने–सामने सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है ।
9. **साक्षात्कार** :– साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग कर्मचारियों के चयन उनकी प्रोन्नति तथा व्यक्तिगत विचार विमर्श के लिये किया जाता है ।
10. **रेडियो** :– एक निश्चित आवृत्ति पर रेडियो के द्वारा संचार को प्रेषित किया जाता है ।
11. **टी0वी0** :– टी0वी0 का भी प्रयोग संचार के लिये किया जाता है । जिसे एक उचित नेटवर्क के द्वारा देखा व सुना जाता है ।
12. **वीडियों कान्फ्रेन्सिंग** :– वर्तमान समय में वीडियो कान्फ्रेन्सिंग एक महत्वपूर्ण विधि है । जिसमें फोन के तार के द्वारा वीडियों के साथ आवाज को सुना जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त योजना, चित्र, नक्शा, चार्ट, ग्राफ आदि ऐसे ढंग है जिससे संचार को प्रेषित किया जाता है ।

10.6 संचार में कारक

संचार में कारकों को मुख्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । एक वे कारक जो संचार को प्रभावी बनाने में सहायक होते है दूसरे जैसे कारक जो कि संचार व्यवस्था में नकारात्मक भूमिका निभाते है। संचार को **प्रोत्साहित** करने वाले कारक निम्न हैं :–

1. **विषय का ज्ञानः** – संचारक को संचारित किये जाने वाले विषय की पूरी जानकारी होनी आवश्यक है। विषय के गहन अध्ययन के अभाव में संचार सफल नहीं हो सकता है।
2. **संचार कौशलः** – संचार प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण पहलू है संकेतीकरण एवं संकेत को समझना। संकेतीकरण के अन्तर्गत लेखन एवं वाक्शक्ति आते है तथा संकेत के अर्थनिरूपण में पठन एवं श्रवण जैसी विधाए शामिल है । इसके अतिरिक्त सोचना तथा तर्क करना सफल संचार के लिये आवश्यक है ।
3. **संचार माध्यमों का ज्ञानः** – संचार कार्य विन्नि माध्यमों से सम्पन्न होता है । संचार माध्यमों की प्रकृति, प्रयोज्यता एवं उपयोग की विधि के विषय में संचारक को ज्ञान होना चाहिए ।
4. **रूचिः** – किसी भी कार्य के सफल क्रियान्वयन के लिये आवश्यक है कि कार्यकर्ता अपने कार्य में रूचि ले तथा पूरी तन्मयता के साथ उसका निर्वाह करें । रूचिपूर्वक कार्य सम्पादित करके संचारक न केवल अपनी उन्नति के द्वार खोलना है बल्कि दूसरों की प्रगति का मार्गदर्शक भी बनता है ।
5. **अभिवृत्ति** – हर व्यक्ति की अपने कार्य, स्थल तथा सहकर्मियों के प्रति कुछ अभिवृत्तियाँ होती है । ये अभिवृत्तियाँ व्यक्ति की कार्य–सम्पादन शैली को प्रभावित करती है । यदि संचारक अपने कार्य, कार्य–स्थल, सहकर्मियों तथा संचार ग्रहणकर्ता के प्रति आस्थावान हो और सामान्य सौहार्दपूर्ण अभिवृत्ति रखता हो तो वह निश्चित रूप में अपने कार्य में सफल होगा ।
6. **विश्वसनीयता** – विश्वसनीयता संचारक का अति महत्वपूर्ण गुण है । संचारक के प्रति विश्वसनीयता सन्देश ग्राह्यता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । संचारक के प्रति ग्रहणकर्ताओं में जितना ही अटूट विश्वास होगा, ग्रहणकर्ता उतनी ही तत्परता, तन्मयता तथा सम्पूर्णता के साथ सन्देश को ग्रहण करेगें ।
7. **अच्छा व्यवहार** – संचारक की भूमिका एक मार्ग–दर्शक की होती है । ग्रहणकर्ता के साथ उसका अच्छा व्यवहार सफल संचार–सम्बन्ध को स्थापित कर सकता है ।
8. संदेश स्पष्ट एवं सरल होने चाहिये ।

संचार व्यवस्था में **नकारात्मक** भूमिका को निभाने वाले कारक निम्न है :–

1. उपयुक्त एवं उचित संचार प्रक्रिया का आभाव
2. वैधानिक सीमायें एवं अनुपयुक्त संचार नीति
3. अनुपयुक्त वातावरण
4. उचित रणनीति का आभाव
5. सरल एवं स्पष्ट भाषा का आभाव
6. प्रेरणा का आभाव
7. संचार कुशलता का आभाव

10.7 संचार–प्रक्रिया एवं तत्व

संचार एक द्विमार्गीय प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक लोगों के बीच विचारों, अनुभवों, तथ्यों तथा प्रभावों का प्रेषण होता है । संचार प्रक्रिया में प्रथम व्यक्ति संदेश स्रोत (Source) या प्रेषक (Sender) होता है । दूसरा व्यक्ति संदेश को ग्रहण करने वाला अर्थात प्राप्तकर्ता या ग्रहणकर्ता होता है । इन दो व्यक्तियों के मध्य संवाद या संदेश होता

है जिसे प्रेषित एवं ग्रहण किया जाता है प्रेषित किये शब्दों से तात्पर्य 'अर्थ' से होता है तथा ग्रहणकर्ता शब्दों के पीछे छिपे 'अर्थ' को समझने के पश्चात् प्रतिक्रियों व्यक्त करता है। सामान्यतः संचार की प्रक्रिया तीन तत्वों क्रमशः प्रेषक (Sender) सन्देश (Message) तथा प्राप्तकर्ता (Reciver) के माध्यम से सम्पन्न होती है। किन्तु इसके अतिरिक्त सन्देश प्रेषक को किसी माध्यम की भी आवश्यकता होती है जिसकी सहायता से वह अपने विचारों को प्राप्तिकर्ता तक पहुंचाता है।

अतः कहा जा सकता है कि संचार प्रक्रिया में अर्थों का स्थानान्तरण होता है । जिसे अन्तः मानव संचार व्यवस्था भी कह सकते है।

एक आदर्श संचार–प्रक्रिया के प्रारूप को निम्नवत् समझा जा सकता है :–

1 **स्रोत/प्रेषक** - संचार प्रक्रिया की शुरूआत एक विशेष स्रोत से होता है जहां से सूचनार्थ कुछ बाते कही जाती है। स्रोत से सूचना की उत्पत्ति होती है और स्रोत एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह भी हो सकता है। इसी को संप्रेषक कहा जाता है ।

2 **सन्देश** - प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व सूचना सन्देश है। सन्देश से तात्पर्य उस उद्दीपन से होता है जिसे स्रोत या संप्रेषक दूसरे व्यक्ति अर्थात सूचना प्राप्तकर्ता को देता है। प्रायः सन्देश लिखित या मौखिक शब्दों के माध्यम से अन्तरित होता है । परन्तु अन्य सन्देश कुछ अशाब्दिक संकेत जैसे हाव–भाव, शारीरिक मुद्रा, शारीरिक भाषा आदि के माध्यम से भी दिया जाता है ।

3 **कूट संकेतन** - कूट संकेतन संचार प्रक्रिया की तीसरा महत्वपूर्ण तथ्य है जसमें दी गयी सूचनाओं को समझने योग्य संकेत में बदला जाता है । कूट संकेतन की प्रक्रिया सरल भी हो सकती है तथा जटिल भी । घर में नौकर को चाय बनाने की आज्ञा देना एक सरल कूट संकेतन का उदाहरण है लेकिन मूली खाकर उसके स्वाद के विषय में बतलाना एक कठिन कूट संकेतन का उदाहरण है क्योंकि इस परिस्थिति में संभव है कि व्यक्ति (स्रोत) अपने भाव को उपयुक्त शब्दों में बदलने में असमर्थ पाता है।

4 **माध्यम** - माध्यम संचार प्रक्रिया का चौथा तत्व है । माध्यम से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा सूचनाये स्रोत से निकलकर प्राप्तकर्ता तक पहुँचती है । आमने सामने का विनियम संचार प्रक्रिया का सबसे प्राथमिक माध्यम है । परन्तु इसके अलावा संचार के अन्य माध्यम जिन्हें जन माध्यम भी कहा जाता है, भी है । इनमें दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म, समाचारपत्र, मैगजीन आदि प्रमुख है ।

5 **प्राप्तिकर्ता** - प्राप्तकर्ता से तात्पर्य उस व्यक्ति से होता है । जो सन्देश को प्राप्त करता है । दूसरे शब्दों में स्रोत से निकलने वाले सूचना को जो व्यक्ति ग्रहण करता है, उसे प्राप्तकर्ता कहा जाता है । प्राप्तकर्ता की यह जिम्मेदारी होती है कि वह सन्देश का सही –सही अर्थ ज्ञात करके उसके अनुरूप कार्य करे ।

6 **अर्थपरिवर्तन** - अर्थपरिवर्तन संचार प्रक्रिया का छठा महत्वपूर्ण पहलू है । अर्थपरिर्वन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सूचना में व्याप्त संकेतों के अर्थ

की व्याख्या प्राप्तकर्ता द्वारा की जाती है । अधिकतर परिस्थिति में संकेतों का साधारण ढंग से व्याख्या करके प्राप्तकर्ता अर्थपरिवर्तन कर लेता है परन्तु कुछ परिस्थिति में जहां संकेत का सीधे–सीधे अर्थ लगाना कठिन है । अर्थ परिवर्तन एक जटिल एवं कठिन कार्य होता है ।

7 **प्रतिपुष्टि** - संचार का सातवाँ तत्व है । प्रतिपुष्टि एक तरह की सूचना होती है जो प्राप्तिकर्ता की ओर से स्रोत या संप्रेषक को प्राप्त स्रोत है। जब स्रोत को प्राप्तकर्ता से प्रतिपुष्टि परिणाम ज्ञान की प्राप्ति होती है । तो वह अपने द्वारा संचरित सूचना के महत्व या प्रभावशीलता को समझ पाता है । प्रतिपुष्टि के ही आधार पर स्रोत यह भी निर्णय कर पाता है कि क्या उसके द्वारा दी गयी सूचना में किसी प्रकार का परिमार्जन की जरूरत है यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि केवल द्विमार्गी संचार में प्रतिपुष्टि तत्व पाया जाता है ।

8 **आवाज** – संचार प्रक्रिया में आवाज भी एकतत्व है यहॉ आवाज से तात्पर्य उन बाधाओं से होता है जिसके कारण स्रोत द्वारा दी गयी सूचना को प्राप्तकर्ता ठीक ढ़ग से ग्रहण नहीं कर पाता है या प्राप्तकर्ता द्वारा प्रदत्त पुनर्निवेशत सूचना के स्रोत ठीक ढ़ग से ग्रहण नहीं कर पाता है । अक्सर देखा गया है कि स्रोत द्वारा दी गई सूचना को व्यक्ति या प्राप्तकर्ता अनावश्यक शोरगुल या अन्य कारणों से ठीक ढ़ग से ग्रहण नहीं कर पाता है । इससे संचार की प्रभावशाली कम हो जाती है ।

उपरोक्त सभी तत्व एक निश्चित क्रम में क्रियाशील होते है और उस क्रम को संचार का एक मौलिक प्रारूप कहा जात है जिसे चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है ।

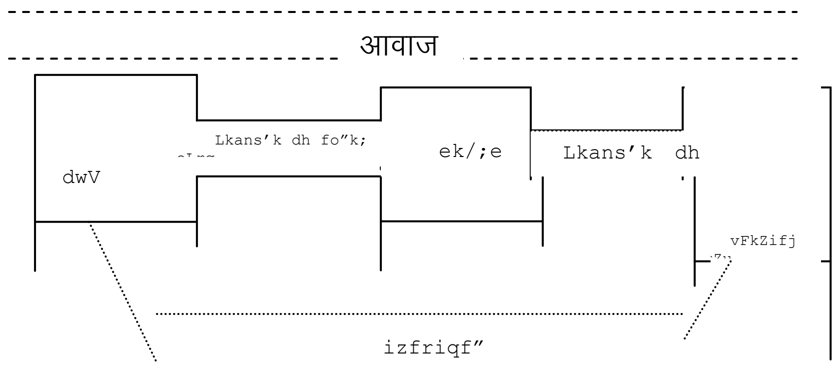

10.8 संचार नेटवर्क

संचार नेटवर्क – संचार नेटवर्क से तात्पर्य किसी समूह के सदस्यों के बीच विभिन्न पैटर्न से होती है । संचार नेटवक्र का अध्ययन लिमिट्ट, तथा शॉ द्वारा किया गया है । लिमिट्ट तथा शॉ द्वारा किये अध्ययन के आधार पर पाँच तरह के संचार नेटवर्क को पहचान की गयी है । संचार नेट वर्क इस प्रकार है ।

1. **चक्र नेटवर्क** (Wheel Network)- इस तरह के नेटवर्क में समूह में एक व्यक्ति ऐसा होता है जिसकी स्थिति अधिक केन्द्रित होती है । उसे लोग समूह के नेता के रूप में प्रत्यक्षण करते है ।

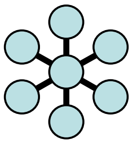

3. **श्रंखला नेटवर्क** (Chain Network)- श्रंखला नेटवर्क में समूह का प्रत्येक सदस्य अपने निकटमत सदस्य के साथ ही कुछ संचार कर सकता हे । इस तरह के नेटवर्क में सूचना ऊपरी तथा निचली किसी भी दिशा में प्रवाहित हो सकती है।

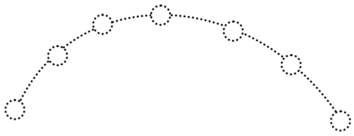

4. **वृत्त नेटवर्क** (Circle Network)- इस तरह के नेटवर्क में समूह का कोई सदस्य केन्द्रित स्थिति में नहीं होता तथा संचार सभी दशाओं में प्रवाहित होता है।

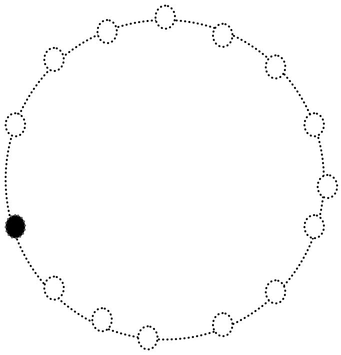

4. **वाई नेटवर्क (Y Network)-** वाई नेटवर्क एक केन्द्रित नेटवर्क होता है जिसमें व्यक्ति ऐसा होता है जो अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है।

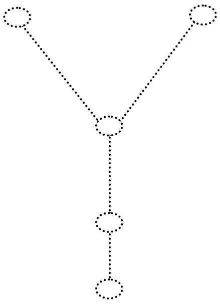

5. **कमकन नेटवर्क** (Comcon Network) –कमकन नेटवर्क एक तरह का खुला संचार होता है जसमें समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य से सीधे संचार स्थापित कर सकता है ।

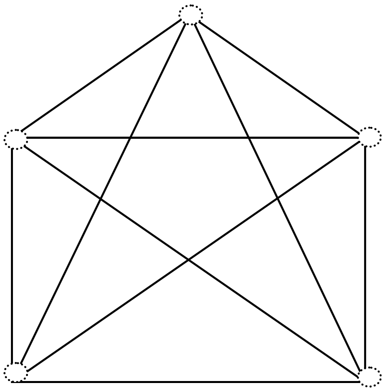

10.9 संचार, सोच–विचार करने की प्रक्रिया के रूप में

संचार की प्रक्रिया संचारक, सन्देश, संचार माध्यम, प्राप्तकर्ता तत्वों से मिलकर पूर्ण होती है। संचार प्रक्रिया में संचारक महत्वपूर्ण बिन्दु होता है जिसे प्रारम्भ बिन्दु भी कहा जा सकता है। किसी तथ्य या सत्य को प्रस्तुत करना और लोगों को उसके द्वारा प्रभावित करना अत्यन्त चुनौती भरा तथा दायित्वपूर्ण कृत्य है। संचारक का कर्तव्य सामाजिक जिम्मेदारियों से परिपूर्ण होता है उसकी प्रस्तुति मात्र तथ्यों, विचारों, सूचनाओं को प्रेषित ही नहीं करती वरन् लोगों को परिवर्तन की ओर अग्रसर होने को उत्प्रेरित करती है। अतः संचारक को सोच–विचार के कार्य करना पड़ता है संचारक को संतुलित व्यक्तित्व का होना चाहिए, उसे अपने विषय का विस्तृत, विविध संचार माध्यमों का ज्ञान, विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता तथा अपने काम के प्रति रूचि व ईमानदारी होनी चाहिये।

संचार एक सुनियोजित एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है। जिसके लिए सोच–विचार से परिपूर्ण पूर्व नियोजित कार्यक्रम महत्वपूर्ण हैं। संचारक विषय का जन्मदाता होने कारण संचार प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व उसे कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते है जो कि निम्नलिखित है :–

1) सन्देश का चयन
2) सन्देश की विवेचना
3) संचार माध्यम का चयन
4) प्राप्तकर्ता का चयन

संचार प्रक्रिया में संचारक का प्रथम कार्य संदेश या उसकी विषय वस्तु का चयन करना होता है। यह कार्य प्रायः मानसिक धरातल पर प्रारम्भ होता है एतदर्थ गहन

सोच–विचार आवश्यक है। सन्देश की विषय–वस्तु महत्वपूर्ण, उपयोगी, समसामयिक तथा सर्वानुकूल होने के साथ रूचिकर भी होनी चाहिए।

विषय–वस्तु के चयन के पश्चात् विषय–वस्तु की विवेचना अर्थात् उसकी प्रस्तुति तथा उसका प्रतिपादन महत्वपूर्ण चरण होता है। प्रस्तुति सदैव सजीव एवं आकर्षक होनी चाहिये जो लोगों को सहज आकर्षित कर सके। संचारक को अपनी बात नपे तुले शब्दों में प्रस्तुत करनी चाहिए। विषयवस्तु के विभिन्न पक्षों को बताने के पश्चात् सभी बिन्दुओं को समेटते हुए संदेश का समापन करना चाहिये जिससे पूरी प्रस्तुति एक सूत्र में बँध जाये। साथ ही, संचार मे प्रतिपुष्टि के महत्व को देखते हुए, संचारक को प्राप्तकर्ता के विचार या जिज्ञासा को आमन्त्रित करना चाहिये।

संचार माध्यम में लोकमाध्यम जैसे– लोकगीत, लोकनाटक, लोक नृत्य, कठपुतली इत्यादि तथा आधुनिक माध्यम में रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र पत्रिकायें, फिल्म पोस्टर, विज्ञापन, इत्यादि का चयन संचारक के लिए महत्वपूर्ण होता है। सफल संचार–प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि संचारक संचार के माध्यमों का चयन सोच–विचार के करे।

संचार को प्राप्त करने वाले प्रायः संचार माध्यम से सम्बद्ध होते है। सन्देश प्रेषण के लिए सन्देश की भाषा और जानकारियों का स्तर सामान्य होना चाहिये। यदि सन्देश स्तरीय हो तो सन्देश माध्यम के द्वारा ज्ञानवान प्राप्तकर्ताओं का चयन किया जाना चाहिये।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संचारक ही वह मुख्य केन्द्र बिन्दु होता है जो संचार प्रक्रिया को सफल बना सकता है। संचारक द्वारा सोच–विचार कर किया गया संचार तार्किक एवं व्यवस्थित होता है। अतः संचार प्रक्रिया में तार्किक सोच–विचार बिंदु सफल संचार का द्योतक है।

10.10 संचार प्रेषण के रूप में

संचार एक द्विमार्गीय प्रक्रिया है जिसमें प्रेषक सूचना को प्रात्तकर्ता के पास भेजता है तथा प्राप्तकर्ता प्राप्त सूचना की प्रतिपुष्टि करता है। संचार प्रक्रिया में प्रेषण महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें प्रेषक द्वारा भेजी गयी सूचना माध्यमों से प्रेषित होकर प्राप्तकर्ता को प्राप्त होती है। संचार और प्रेषण को यदि अलग–अलग रूप में परिभाषित किया जाये तो संचार संकेतो के द्वारा प्रेषित होकर प्राप्त की जाती है जबकि प्रेषण में सूचना को केवल भेजा जाता है उसकी प्रतिपुष्टि नहीं हो पाती है। इसलिए प्रेषण को एक मार्गीय क्रिया माना जाता है। उदाहरण के लिए मोबाइल, फोन के द्वारा संचार की प्रक्रिया द्विमार्गीय होती है जिसमें संचारक तथा प्राप्तकर्ता दोनों सूचना का आदान–प्रदान करते हैं। जबकि रेडियों, टेलीविजन, जनसंचार के ऐसे माध्यम है, जिससे सूचना को प्रेषित किया जाता है परन्तु उसकी प्रतिपुष्टि नहीं हो पाती है।

संचार प्रक्रिया में प्रेषण के लिए उपयुक्त माध्यम की आवश्यकता होती है जिससे कि प्राप्तकर्ता बिना किसी अवरोध के सन्देश को प्राप्त कर सके। यह तभी सम्भव है जब संचारक उचित माध्यम का चयन करे। प्रेषण के लिए आवश्यक है कि संचारक आमने–सामने के सम्बन्ध के द्वारा या पत्र द्वारा या टेलीफोन द्वारा या फैक्स के द्वारा संचार करें। एक शिक्षक लिए आवश्यक है कि वह अच्छा लिखे बल्कि यह भी जरूरी है कि

मौखिक संचार तथा उसके हाव–भाव सभी एक साथ मिलकर के पढ़ाई को अत्यधिक प्रभावी बना सकते हैं।

10.11 संचार एक सांस्कृतिक उत्पादक के रूप में

संचार एक सुनियोजित प्रक्रिया है। इसके निमित सूझ–बूझ से परिपूर्ण पूर्व नियोजित कार्यक्रम महत्वपूर्ण है। संचारक या प्रेषक इस प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। संचार को प्रारम्भ करने से पूर्व कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं जो संचार को प्रभावी बनाता है।

प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक बन्धनों और सांस्कृतिक रीति–रिवाजों, विश्वास के दायरे में बंधा रहता है। ये सब उसके जीवन में आदत का रूप धारण कर लेते हैं। संचारक का यह कर्तव्य होता है कि जब कोई सन्देश प्रेषित करे तो व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्वासों का किसी प्रकार से हनन न हो। सन्देशों में सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति अनुरूपता होनी चाहिये। किसी भी सांस्कृतिक मान्यता को स्पष्ट रूप से गलत या बुरा कहना संचार प्रक्रिया में बाधक हो सकता है। इनमें यदि परिवर्तन लाना हो तो परोक्ष तरीकों को अपनाया जाना चाहिये। संस्कृति ही एक ऐसा माध्यम होती है जो हमें नैतिकता का ज्ञान कराती है। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर हस्तांतरित होती रहती है। संस्कृति के द्वारा ही मनुष्य मूल्यवान होता है। सांस्कृतिक अवमूल्यन की स्थिति में हस्तांतरण की प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती है। सांस्कृतिक हस्तांतरण के लिये एक उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होती है। वाचक अथवा लिखित प्रारूप के द्वारा संस्कृति निरन्तर आगे बढ़ती है। जिसके लिए एक उचित संचार माध्यम की आवश्यकता पड़ती है।

संचारक द्वारा प्रेषित किया जाने वाला सन्देश जन सामान्य अथवा समाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है अतः ऐसा प्रयास होना चाहिये कि जिससे सांस्कृतिक मान्यतायें एवं विश्वास प्रभावित न हों। संचार सामाजिक, परिवर्तन के लिए आवश्यक है। संचार प्रक्रिया में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच विचारों, अनुभूतियों, ज्ञान, विश्वासों, मूल्यों, भावनाओं का प्रभावकारी आदान–प्रदान है। संचार में निहित संवाद का प्रभावकारी और अर्थपूर्ण होना आवश्यक है। प्रेषक जिस भावार्थ के साथ सन्देश प्रेषित किया जाता है ग्रहणकर्ता द्वारा उस शब्द को उसी भावार्थ के साथ ग्रहण किये जाने पर संचार सफल होता है। लोग संचार के माध्यम से दूसरों के विचारों, मान्यताओं और व्यवहार में परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं।

पारस्परिक प्रक्रियायें लोगों को एक–दूसरे को समीप लाती है तथा एक दूसरे को समझने में सहायता प्रदान करती है। मानवीय संबंधों, मानवीय मूल्यों, मानवीय विश्वासों को सुरक्षा प्रदान करने तथा संस्थापित करने में संचार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों, विश्वासों, परम्पराओं तथा संस्कृति के बिना जीवन की परिकल्पना नहीं की जा सकती है, ठीक उसी प्रकार संचार जीवन के साथ प्रारंभ होता है तथा जीवन की समाप्ति के साथ समाप्त होता जाता है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में तथा उसे यथोचित स्थान दिलाने में जो स्थान संस्कृति का है वहीं स्थान संचार का है। सच माना जाए तो सभ्यता एवं संस्कृति का उद्भव एवं विकास वास्तव में संचार का उद्भव एवं विकास है। हमारी सामाजिक मान्यतायें, आस्था एवं विश्वास, रीति–रिवाज जैसी धरोहरें संचार के माध्यम से ही निरन्तरता बनाये हुए हैं। तात्पर्य यह है कि संचार में अपना

अस्तित्व बनाये रखने के लिए मनुष्य को संचार का आधार प्राप्त है और संचार के अभाव में मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

10.12 प्रभावी संचार की विशेषतायें

प्रभावी संचार की विशेषतायें निम्नवत् है –

1- संचार का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए

2- संचार की भाषा बोधगम्य, सरल व आसानी से समझ में आने वाली होनी चाहिये ।

3- संचार यथा सम्भव स्पष्ट एवं सभी आवश्यक बातों से युक्त होना चाहिए ।

4- संचार प्राप्तकर्ता की प्रत्याशा के अनुरूप होने चाहिए ।

5- संचार यथासमय अर्थात् सही समय पर होना चाहिये ।

6- संचार प्रेषित करने के पूर्व सम्बन्धित विषय में पूर्ण जानकारी का ज्ञान होना आवश्यक है ।

7- संचार करने से पूर्व परस्पर विश्वास स्थापित करना आवश्यक है ।

8- संचाार में लोचशीलता होनी चाहिये अर्थात् आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन किया जा सके ।

9- संचार को प्रभावी बनाने के लिये उदाहरणों तथा श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

10- विलम्बकारी प्रवृत्तियों अथवा प्रतिक्रियाओं को व्यवहार में नहीं लाना चाहिए । संचार सन्देशों की एक निरन्तर श्रंखला होनी चाहिये ।

11- एक मार्गीगीय संचार की अपेक्षा द्विमार्गीय संचार श्रेष्ठ होता है ।

12- सन्देश प्रेषित करते समय ऐसा प्रयास किया जाना चाहिये कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्वासों पर किसी प्रकार का कुठाराघात न हो ।

13- संचार हमेशा लाभप्रद होना चाहिये क्योकि मनुष्य का स्वभाव है कि किसी भी बात में लाभप्रद सम्भावनाओं को देखता है ।

14- संचार में प्रयोग की जाने वाली विधियाँ या कार्य खर्चीले नही होने चाहिये अर्थात मितव्यियता के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए ।

15- संचार में विभाज्यता का गुण होना चाहिये क्योंकि प्रेषित सन्देश का उदे्श्य पूरे समुदाय या वर्ग के कल्याण में निहित होता है ।

16- संचार बहुहितकारी होना चाहिये अर्थात बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना होनी चाहिये ।

10.13 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में संचार की अवधारणा, अर्थ, परिभाषा तथा विशेषताओं के अतिरिक्त संचार की प्रक्रिया, संचार नेटवर्क, संचार के कारक तथा संचार के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसी इकाई में संचार के चरणों, ढंगों तथा तत्व के विषय में जानकारी प्रदान की

गयी है। इस इकाई में संचार किस प्रकार से कार्य करता है तथा उसकी क्या उपयोगिता है, को समझाया गया है।

10.14 अभ्यास प्रश्न

1. संचार की अवधारणा क्या है?
2. संचार की परिभाषा को लिखिए।
3. संचार की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।
4. संचार के तत्वों को समझाइये।
5. संचार की विशेषताओं को लिखिए।
6. संचार के महत्व पर प्रकाश डालिए।
7. संचार के नेटवर्क को समझाइये।
8. संचार के कारकों को लिखिए।

10.15 पारिभाषिक शब्दावली

संचार	Communication	सूचना	Information
सामाजीकरण	Socializtion	प्रतिवेदन	Reporting
संस्कृति	Culture	वीडियों कान्फ्रेन्सिंग	Video Confrencing
नियोजन	Planning	स्रोत / प्रेषक	Source / Sender
संगठन	Organiztion	सन्देश	Message
अभिप्रेरणा	Motivation	कूट संकेतन	Encoding
समन्वय	Coordination	माध्यम	Channel
नियन्त्रण	Controlling	प्राप्तिकर्ता	Reciver
निर्णयन	Decision Making	अर्थपरिवर्तन	Decoding
प्रभावशीलता	Effectiveness	प्रतिपुष्टि	Feedback
ज्ञापन	Memo	आवाज	Noise
पत्र	Letter	लोचशीलता	Flexbility

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
3. मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
4. मीडिया लेखन, आर.सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

bdkbZ&11

संचार की अभिरचना एवं प्रकार

Design and Types of Communication

bdkbZ dh :ijs[kk

11.0 उद्देश्य
11.1 परिचय
11.2 औपचारिक संचार
11.3 औपचारिक संचार के लाभ
11.4 औपचारिक संचार के दोष
11.5 अनौपचारिक संचार
11.6 अनौपचारिक संचार के लाभ
11.7 अनौपचारिक संचार के दोष
11.8 लिखित संचार
11.9 लिखित संचार के लाभ
11.10 लिखित संचार के दोष
11.11 मौखिक संचार
11.12 मौखिक संचार के लाभ
11.13 मौखिक संचार के दोष
11.14 अमौखिक संचार
11.15 अमौखिक संचार के लाभ
11.16 अन्तर्वैयक्तिक संचार
11.17 अन्तर्वैयक्तिक संचार लाभ
11.18 जन–संचार
11.19 संचार के सिद्धान्त
11.20 सार संक्षेप
11.21 अभ्यास प्रश्न
11.22 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- संचार के प्रकारों को जान सकेंगे।
- औपचारिक तथा अनौपचारिक संचार को लिख सकेंगे।
- लिखित संचार को समझ सकेंगे।
- मौखिक संचार को जान सकेंगे।
- अन्तर्वैयक्तिक संचार एवं जन संचार में अन्तर स्थापित कर सकेंगे।
- संचार के प्रकारों के लाभ तथा दोषों को जान सकेंगे।

- संचार के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

11.1 परिचय

संचार का मानवीय जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, संचार के बिना जीवन की परिकल्पना करना व्यर्थ है। संचार के द्वारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सदैव निरन्तरता बनी रहती है। संचार हमारे जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है जिसे उद्देश्यों के आधार पर इसे कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यहाँ पर संचार के कुछ प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया गया है जो संचार की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं–

1. औपचारिक एवं अनौपचारिक संचार
2. अन्तर्वैयक्तिक एवं जन–संचार
3. मौखिक संचार
4. लिखित संचार
5. अमौखिक संचार

11.2 औपचारिक संचार

औपचारिक संचार किसी संस्था में विचारपूर्वक स्थापित की जाती है। किस व्यक्ति को किसको और किस अन्तराल में सूचना देनी चाहिए, यह किसी संस्था में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत् व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट करने में सहायक होता है। औपचारिक सन्देशवाहन के निर्माण व प्रेषण में अनेक औपचारिक सम्वाद अधिकांशतः लिखित होते हैं। यथा–संस्था का प्रधानाचार्य अपने उप प्रधानाचार्य को कुछ निर्देश प्रदान करता है, तो वह औपचारिक प्रकृति का ही समझा जायेगा क्योंकि एक उच्चाधिकारी अपने नीचे रहने वाले अधिकारियों या कर्मचारियों को निर्देश देने की ही स्थिति में बाध्य होता है। औपचारिक सन्देशवाहन के अन्य उदाहरण, आदेश, बुलेटिन आदि।

11.3 औपचारिक संचार के लाभ

औपचारिक संचार के लाभ निम्नवत् है–

1. औपचारिक संचार अधिकृत संचारकर्ता के द्वारा सही सूचना प्रदान की जाती है।
2- यह संचार लिखित रूप में होता है।
3- इस संचार के द्वारा संचार की प्रतिपुष्टि होती है।
4- यह संचार व्यवस्थित एवं उचित तरीके से किया जाता है।
5- यह संचार करते समय संचार के स्तरों के क्रमों का विशेष ध्यान रखा जाता है।
6- इस संचार के माध्यम से संचारक की स्थिति का पता सरलता से लगाया जा सकता है।
7- इस संचार के द्वारा व्यावसायिक मामलों को आसानी से नियंत्रित एवं व्यवस्थित किया जा सकता है।
8- इस संचार के द्वारा दूर स्थापित लोगों से सम्बन्ध आसानी से स्थापित किये जा सकते हैं।

11.4 औपचारिक संचार के दोष

औपचारिक संचार के दोष निम्नलिखित हैः–इस संचार की गति धीमी होती है।

1- समान्यतया इस संचार में उच्च अधिकृत लोगों का अधिभार ज्यादा होता है।
2- इस संचार में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से संचार की आलोचना नहीं की जा सकती है।
3- इस संचार में नियमों का शक्ति से पालन किया जाता है जिसंके कारण संचार में लोचशीलता के अभाव के कारण बाधा उत्पन्न होने की संभावना हमेशा विद्यमान रहती हैं।

11.5 अनौपचारिक संचार

अनौपचारिक सन्देश वाहनों में किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं बरती जाती। ऐसे सन्देशवाहन मुख्यतः पक्षकारों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों पर निर्भर करते हैं। अनौपचारिक सन्देशवाहन के कुछ उदाहरण है – नेत्रों से किये जाने वाले इशारे, सिर हिलाना, मुस्कराना, क्रोधित होना आदि। ऐसे संचार का दोष यह होता है कि सावधानी के अभाव में कभी–कभी अफवाहों को फैलाने में सहायक हो जाते हैं।

11.6 अनौपचारिक संचार के लाभ

अनौपचारिक संचार के लाभ निम्नवत् है–

1. इस संचार के द्वारा सौहार्द सम्बन्धी एवं संभावनाओं का आदान प्रदान होता है।
2. इस संचार के द्वारा संचार की गति अत्यधिक तेज होती है।
3. इस संचार में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है।
4. इस संचार के माध्यम से सम्बन्धों में व्याप्त तनाव में कमी आती है तथा लोगों के मध्य सांवेगिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

11.7 अनौपचारिक संचार के दोष

अनौपचारिक संचार के दोष निम्नलिखित हैः–

1. इस संचार के द्वारा अविश्वसनीय तथा अपर्याप्त सूचना प्राप्त होती है।
2. इस संचार में सूचना प्रदान करने का उत्तरदायित्व निश्चित नहीं होता है तथा सूचना किस स्तर से तथा कहाँ से प्राप्त हुई है, का पता लगाना आसान नहीं होता है।
3. इस प्रकार का संचार ज्यादातर किसी भी संगठन में समस्या को उत्पन्न कर सकता है।
4. इस संचार में सूचना किस स्तर से तथा कहाँ से प्राप्त हो रही है का स्रोत निश्चित नहीं होता है जिसके कारण सूचना के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा उसका अर्थ निरूपण करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

11.8 लिखित संचार

लिखित संचार एक प्रकार औपचारिक संचार है जिसमें सूचनाओं का आदान–प्रदान लिखित रूप में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को प्रेषित किया जाता है इस संचार के द्वारा संचारक को लिखित रूप में प्रेषित किये गये संदेश का अभिलेख रखने में आसानी होती है। लिखित संचार के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि आवश्यक सूचना प्रत्येक व्यक्ति को

समान रूप से प्रदान की गई है। एक लिखित संचार सही, सक्षिप्त, पूर्ण तथा स्पष्ट होता है।

लिखित संचार के साधन–बुलेटिन, हैंडबुक्स व डायरियां, समाचार पत्र, मैगजीन, सुझाव –योजनायें, व्यावहारिक पत्रिकायें, संगठन–पुस्तिकायें संगठन–अनुसूचियाँ, नीति– पुस्तिकायें कार्यविधि पुस्तिकायें, प्रतिवेदन, अध्यादेश आदि।

11.9 लिखित संचार के लाभ

लिखित संचार के लाभ निम्नलिखित हैः–

1. लिखित सम्प्रेषण की दशा में दोनों पक्षों की उपस्थिति आवश्यक नहीं है
2. विस्तृत एवं जटिल सूचनाओं के सम्प्रेषण के लिए यह अधिक उपयुक्त है।
3. यह साधन मितव्ययी भी है क्योंकि डाक द्वारा समाचार योजना, दूरभाष पर बात करने की उपेक्षा सस्ता होता है।
4. लिखित संवाद प्रमाण का काम करता है तथा भावी संदर्भों के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

11.10 लिखित संचार के दोष

लिखित संचार के दोष निम्नलिखित हैः–

1. लिखित संचार की दशा में प्रत्येक सूचना को चाहे वह छोटी हो अथवा बड़ी, लिखित रूप में ही प्रस्तुत करना पड़ता है जिनमें स्वभावतः बहुत अधिक समय व धन का अपव्यय होता है।
2. प्रत्येक छोटी–बड़ी बात हो हमेशा लिखित रूप में ही प्रस्तुत करना सम्भव नहीं होता।
3. लिखित संचार में गोपनीयता नहीं रखी जा सकती।
4. लिखित संचार का एक दोष यह भी है कि इससे लालफीताशाही का बढ़ावा मिलता है।
5. अशिक्षित व्यक्तियों के लिए लिखित स्म्प्रेषण कोई अर्थ नहीं रखता।

मौखिक अथवा लिखित संचार के अपेक्षाकृत श्रेष्ठ कौन है, इसका निर्णय करना एक कठिन समस्या है। वास्तव में इसका उत्तर प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

11.11 मौखिक संचार

मौखिक संचार से तात्पर्य संचारक द्वारा किसी सूचना अथवा संवाद का मुख से उच्चारण कर संवाद प्राप्तकर्ता को प्रेरित करने से है। दूसरे शब्दों में, जो सूचनायें या संदेश लिखित न हो वरन् जुबानी कहें या निर्गमित किये गये हो उन्हें मौखिक संचार कहते हैं। इस विधि के अन्तर्गत संदेश देने वाला तथा संदेश पाने वाले दोनों एक–दूसरे के सामने होते है इस पद्धति में व्यक्तिगत पहुँच सम्भव होती है।

लारेन्स एप्पले के अनुसार, "मौखिक शब्दों द्वारा पारस्परिक संचार सन्देशवाहन की सर्वश्रेष्ठ कला है।

मौखिक संचार के साधन – आमने सामने दिये गये आदेश, रेडियो द्वारा संचार, दूरदर्शन, दूरभाष, सम्मेलन या साभाएँ, संयुक्त विचार–विमर्श, साक्षात्कार, उद्घोषणाएँ आदि।

11.12 मौखिक संचार के लाभ

मौखिक संचार के लाभ निम्नलिखित हैः–

1. इस पद्धति से समय व धन दोनों की बचत होती है।

2. इसे आसानी से समझा जा सकता है।
3. संकटकालीन अवधि में कार्य में गति लाने के लिए मौखिक पद्धति एक मात्र विधि होती है।
4. मौखिक संचार लिखित संचार की तुलना में अधिक लचीला होता है।
5. मौखिक संचार पारस्परिक सद्भाव व सद्विश्वास में वृद्धि करता है।

11.13 मौखिक संचार के दोष

मौखिक संचार के दोष निम्नलिखित हैः–

1. मौखिक वार्ता को बातचीत के उपरान्त पुनः प्रस्तुत करने का प्रश्न ही नहीं उठता।
2. मौखिक वार्ता भावी संदर्भ के लिए अनुपयुक्त है।
3. मौखिक सन्देशवाहन में सूचनाकर्ता को सोचने का अधिक मौका नहीं मिलता।
4. खर्चीला
5. तैयारी की आवश्यकता।
6. अपूर्ण।

11.14 अमौखिक संचार

यह संचार का प्रकार है जो न मौखिक होता है और न ही लिखित। इस संचार में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अमौखिक रूप से सूचना को प्रदान करता है, उदाहरण के रूप में–शारीरिक हाव–भाव के द्वारा। इस संचार में शारीरिक भाव–भंगिमा के माध्यम से संचार को प्रेषित किया जाता है। जिसे प्राप्तकर्ता अमौखिक रूप से सरलता से समझ जाता है, जैसे–चेहरे का भाव, आंखों तथा हाथ का इधर–उधर घूमना आदि के द्वारा भावनाओं, संवेगों, मनोवृत्तियों इत्यादि को असानी से समझ सकता है।

11.15 अमौखिक संचार के लाभ

अमौखिक संचार के लाभ निम्नलिखित है–

1. इस संचार के द्वारा भावनाओं, संवेगों, मनोवृत्ति इत्यादि को कम समय में प्रेषित किया जा सकता है।
2. इस संचार को एक प्रकार से मौखिक संचार का प्रारूप माना जा सकता है जिसमें मौखिक संचार के लाभों एवं दोषों को शामिल किया जा सकता है।
3. इस संचार के द्वारा लोगों को प्रेरित, प्रभावित तथा एकाग्रचित किया जा सकता है।

11.16 अन्तर्वैयक्तिक संचार

अर्न्तवैयक्तिक संचार का एक प्रकार हैं जिसमें संचारकर्ता तथा प्राप्तकर्ता एक–दूसरे के आमने–सामने होते हैं। अर्न्तवैयक्तिक संचार लिखित अथवा मौखिक दोनों रूप में हो सकते हैं, अर्न्तवैयक्तिक संचार के अन्तर्गत लिखित रूप में यथा पत्र, डायरी इत्यादि को शामिल किया जा सकता है जबकि मौखिक संचार में टेलिफोन, आमने–सामने की बातचीत इत्यादि को शामिल कर सकते हैं।

11.17 अन्तर्वैयक्तिक संचार लाभ

अन्तर्वैयक्तिक संचार के लाभ निम्नवत् है–

1. इस संचार के द्वारा संचारक तथा प्राप्तकर्ता के मध्य सामने–सामने के सम्बन्ध होते हैं। जिसके कारण मौखिक संदेश की गोपनीयता बनी रहती हैं।
2. इस संचार में संचारक तथा प्राप्तकर्ता ही होते हैं जिसके कारण सूचना अन्य लोगों के पास नहीं जा पाती है।

11.18 जन–संचार

जन–संचार संचार का एक माध्यम हैं जिसके द्वारा कोई भी संदेश अनेक माध्यमों के द्वारा जन–समुदाय तक पहुंचाया जाता है। वर्तमान समय में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो जन–संचार माध्यम से न जुड़ा हो। सच पूछा जाय तो आज के मनुष्य का विकास जन–संचार के माध्यमों द्वारा ही हो रहा है। जन–समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में जन–संचार माध्यमों की बड़ी भूमिका होती है। जो कि सभी वर्ग, सभी कार्य क्षेत्र से जुड़े लोगों तथा सभी उम्र के लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में सहायता प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में जन–संचार के अनेक माध्यम हैं, जैसे–समाचार पत्र/पत्रिकायें, रेडियों, टेलीविजन, इंटरनेट इत्यादि।

11.19 संचार के सिद्धान्त

संचार की प्रक्रिया विभिन्न अध्ययनों के पश्चात् स्पष्ट होता है कि संचार को आधार प्रदान करने के लिए सिद्धान्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। संचार के सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

1. **उद्देश्यों के स्पष्ट होने का सिद्धान्त**–संचार की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि संचार के उद्देश्य विशिष्ट एवं स्पष्ट हों जिससे की प्राप्तकर्ता संचार के विषय को सार्थक रूप से समझ सके।
2. **श्रोताओं के स्पष्ट ज्ञान का सिद्धान्त**–संचार की सफलता के लिए आवश्यक है कि संचारक को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि श्रोतागण कैसे हैं जिससे प्रेषित किये जाने वाले विषय को श्रोता के ज्ञान एवं उनकी इच्छा के अनुसार सारगर्भित रूप में प्रेषित किया जा सके। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि संचार को श्रोतागण आसानी से समझ सके।
3. **विश्वसनीयता बनाये रखने का सिद्धान्त**–संचारक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह समुदाय में अपनी स्थिति प्रास्थिति को बनाये रखे क्योंकि संचारक के द्वारा प्रेषित किये जाने वाला संचार संचारक के सामर्थ्य पर निर्भर करता है यदि समुदाय के लोगों को इस बात का विश्वास होता है कि संचारक समुदाय के हित के लिए संदेश को प्रेषित करेगा।
4. **स्पष्टता का सिद्धान्त**–संचार में प्रयोग की जाने वाली भाषा एवं प्रेषित किये जाने वाला विषय सरल एवं समरूप होना चाहिए जिससे कि संचार को लोग आसानी से समझ सके। संचार करते समय यदि क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाता है तो संचार की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो सकती है।
5. **शब्दों को सोच–विचार कर प्रेषित एवं संगठित करने का सिद्धान्त**–संचारक के लिए आवश्यक होता है कि संचार में प्रयोग किये जाने वाले शब्दों का चयन उचित प्रकार से किया जाये तथा विचारों में तारतम्यता निहित हो। यदि संचार करते समय शब्दों का चयन कुछ सोच–समझकर नहीं किया जाता है और शब्दों के मध्य तारतम्यता तथा एकरूपता नहीं होता है तो प्राप्तकर्ता संचार के उद्देश्यों को समझ नही पाता है।
6. **सूचना की पर्याप्तता का सिद्धान्त**–संचारक के लिए यह आवश्यक होता है कि संचार करते समय सूचना पर्याप्त रूप में प्रेषित की जाये इसके लिए यह भी आवश्यक होता है कि सूचना किस स्तर पर प्रेषित की जा रही है। सूचना की अपर्याप्तता के कारण

प्राप्तकर्ता संचार के उद्देश्यों का अर्थ निरूपण विपरित लगा सकता है जिसके कारण संचार के असफल होने की संभावना उत्पन्न हो जाती है।

7. **सूचना के प्रसार का सिद्धान्त** –संचार की सफलता के लिए आवश्यक होता है कि सूचना का प्रसार सही समय पर, सही परिप्रेक्ष्य में, सही व्यक्ति को उचित कारण के संदर्भ में प्रेषित की जाये तथा सूचना प्रसारित करते समय इस तथ्य का भी ध्यान रखा जाय कि सूचना प्राप्तकर्ता कौन है यदि संचारक सूचना प्रेषित करते समय, परिप्रेक्ष्य, उचित व्यक्ति तथा स्पष्ट उद्देश्य का ध्यान नहीं रखता है तो संचार असफल हो जाता है।
8. **सघनता एवं सम्बद्धता का सिद्धान्त**–सफल संचार के लिए आवश्यक है कि सूचना में सघनता एवं सम्बद्धता का तत्व विद्यमान हो, सूचना को प्रदान किये जाने का क्रम 666 क्रियान्वित किया जा सके।
9. **एकाग्रता का सिद्धान्त**–संचार की सफलता के लिए आवश्यक है कि संचारक एवं प्राप्तकर्ता दोनों एकाग्रचित्त होकर कार्य करे। संचारक के लिए आवश्यक है कि संचार प्रेषित करते समय अपनी एकाग्रता को भंग न होने दे तथा प्राप्तकर्ता के लिए भी यह आवश्यक होता है कि वह एकाग्रचित होकर के प्रेषित संचार का अर्थ निरूपण करे।
10. **समयबद्धता का सिद्धान्त**–संचार तभी सफल हो सकता है जब वह उचित तथा निश्चित समय पर किया जाये। संचार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संचार करते समय संचार के उद्देश्यों की प्राप्ति सही समय पर हो पायेगी अथवा नहीं।
11. **पुर्ननिर्देशन का सिद्धान्त**–संचार की प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है जब प्राप्तकर्ता प्रेषित संदेश का सही एवं उचित अर्थ निरूपण करके संचारक को प्रतिपुष्टि प्रदान करें क्योंकि प्रतिपुष्टि के द्वारा संचारक को इस बात का ज्ञान होता है कि जिस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संदेश को प्रेषित किया गया है वह सफल हुआ है अथवा नहीं।

11.20 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में संचार के प्रकारों, उससे होने वाले लाभों तथा दोषों एवं संचार के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। संचार के प्रकारों में विशेषकर औपचारिक एवं अनौपचारिक संचार, मौखिक, अमौखिक एवं लिखित संचार तथा अन्तर्वैयक्तिक एवं जन संचार के विषय में बताया गया है।

11.21 अभ्यास प्रश्न

1. संचार के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. औपचारिक एवं अनौपचारिक को स्पष्ट कीजिए।
3. लिखित, मौखिक एवं अमौखिक संचार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. संचार के लाभों एवं दोषों को इंगित कीजिए।
5. अन्तर्वैयक्तिक एवं जन संचार को समझाइये।
6. संचार के सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

11.22 पारिभाषिक शब्दावली

परिचय	Inroduction	अन्तर्वैयक्तिक	Interpersonal
औपचारिक	Formal	जन संचार	Mass Communication

अनौपचारिक	Informal	अभिलेख	Document
लिखित	Written	साक्षात्कार	Interview
मौखिक	Verbal	श्रोता	Audience
अमौखिक	Non-verbal	ज्ञान	Knowledge

संदर्भ ग्रन्थ सूची

5. लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
6. प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
7. मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
8. मीडिया लेखन, आर. सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

इकाई–12

संचार निर्देशन
Directions of Communication

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 परिचय
12.2 उर्ध्वाधर संचार
12.3 क्षैतिज संचार
12-4 भारत में माध्यम परिदृश्य
12.5 परम्परागत माध्यम
12.6 आधुनिक जनसंचार माध्यम
12.7 मुद्रण
12.8 श्रव्य
12.9 दृश्य
12.10 दृश्य–श्रव्य
12.11 माध्यमों के लिए प्रभावी लेखन
12.12 मुद्रण माध्यम
12.13 श्रव्य संचार माध्यम
12.14 दृश्य–श्रव्य माध्यम के लिए लेखन
12.15 प्रेस
12.16 विशेष समारोह का खाका
12.17 वृत्तचित्र
12.18 प्रेस सम्मेलन
12.19 प्रेस विज्ञप्ति
12.20 सार संक्षेप
12.21 अभ्यास प्रश्न
12.22 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- क्षैतिज तथा उर्ध्वाधर संचार को जान सकेंगे।
- भारत में माध्यम परिदृश्य को समझ सकेंगे।
- आधुनिक संचार के साधनों को लिख सकेंगे।
- परम्परागत संचार के माध्यमों को जान सकेंगे।
- संचार के माध्यमों के प्रभावी लेखन को समझ सकेंगे।
- आधुनिक संचार के विभिन्न माध्यमों को जान सकेंगे।

12.1 परिचय

निर्देशन के आधार पर संचार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उर्ध्वाधर या लम्बवत् (Vertical)
2. क्षैतिज (Laterally)

12.2 उर्ध्वाधर संचार

उर्ध्वाधर संचार को पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

अ) नीचे की ओर अथवा ऊपर से नीचे की ओर

ब) ऊपर की ओर अथवा नीचे से ऊपर की ओर

अ) नीचे की ओर संचार

नीचे की ओर संचार का प्रयोग अधिकतर संगठनों में उच्च स्तर से निचले स्तर पर कार्यरत् अधीनस्थों के लिये किया जाता है। नीचे की ओर संचार का प्रयोग प्रबन्धकों द्वारा अपने अधीनस्थों को आदेश को क्रियान्वित करने के लिये, नीतियों को लागू करने, कार्य के विषय में सूचित करने इत्यादि के लिये किया जाता है। नीचे की ओर संचार करने के लिये मौखिक रूप से या सम्पर्क में रहना आवश्यक नहीं है। नीचे से संचार के माध्यम से वरिष्ठ अपने अधीनस्थों को सलाह देते हैं, दिशा–निर्देश देते हैं और नियन्त्रित करते हैं।

ब) ऊपर की ओर संचार

नीचे से ऊपर की ओर संचार प्रक्रिया में अधीनस्थ अपने वरिष्ठों को सन्देश अथवा सूचना की ओर संचार एक प्रकार से उच्च स्तर पर प्रबन्धकों को प्रतिपुष्टि देता है कि कार्य की प्रगति और उसका निष्पादन कैसा है। नीचे से ऊपर की ओर संचार उच्च स्तर पर प्रबन्धकों को इस योग्य बनाता है कि वे संगठन के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु

आवश्यकतानुसार पूर्व में दिये गये दिशा–निर्देश में सुधार कर सके। संगठन की कार्य निष्पादन की प्रक्रिया का मूल्यांकन के लिये आवश्यक है कि वरिष्ठ अपने अधीनस्थों को प्रेरित करे और समय–समय पर सही सन्देश प्रेषित करते रहे।

12.3 क्षैतिज संचार

जब संचार एक ही स्तर पर कार्य समूह के सदस्यों के मध्य, एक ही स्तर पर प्रबन्धकों के बीच या किसी क्षैतिज समकक्ष कर्मियों अथवा विभागों के बीच में होता है तो उसे समानान्तर अथवा क्षैतिज संचार कहते हैं। क्षैतिज संचार के द्वारा समय की बचत होती है औश्र समन्वय के लिये अति आवश्यक है क्षैतिज संचार के द्वारा विभागीय समस्याओं का समाधान किया जाता है। क्षैतिज संचार उर्ध्व संचार के दबाव को कम करता है। एक विभाग के कर्मचारी कुशल हो, अपने कार्य में निशेषज्ञता हासिल करे तथा संगठन अत्यधिक विकसित हो, क्षैतिज संचार के बिना सम्भव नहीं है।

12.4 भारत में माध्यम परिदृश्य

माध्यम अर्थात् Media अर्थात् दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला साधन। संचार माध्यम के द्वारा सम्प्रेषक और स्रोता के बीच सूचनाओं का परस्पर आदान–प्रदान होता है। हैराल्ड लाज्वेज (Harrold Laswel) संचार माध्यमों के निम्नलिखित उद्देश्य बतायें है ।

(1) सूचना का संग्रहण करना

(2) सूचना का विश्लेषण करना
(3) सामाजिक मूल्यों व ज्ञान का संचरण अर्थात नैतिक व शैक्षिक ज्ञान
(4) सूचना का प्रसार करना, तथा
(5) मजोरंजन

जनसंचार माध्यमों के दों विभाग हैं–

(क) परम्परागत माध्यम
(ख) आधुनिक माध्यम

12.5 परम्परागत माध्यम

सृष्टि के प्रारम्भ से मानव दूसरों से सम्पर्क करता रहा है तथा आवश्यकता के अनुसार माध्यम चुनता व खोजता रहा है। परमपरागत संचार माध्यमों से तात्पर्य उन्हीं माध्यमों से है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी विकसित होते हैं तथा जिनकी प्रासंगिता व महत्व आज भी है। इन माध्यमों का सांस्कृतिक महत्व भी है।

परम्परागत संचार माध्यमों के निम्न प्रकार हैं –

(1) वार्ताएँ, कथाएँ
(2) मेले, उत्सव, पर्व
(3) लोकगीत
(4) लोकनाट्य (रासलीला, रामलीला, कठपुतली, तमाशा, नौटंकी आदि)
(5) शिलालेख
(6) लोककलाएँ (ब्रज की सांझी, बिहार मधुबनी, कांगड़ा शैली)
(7) मूर्तिकला (अजन्ता, एलोरा आदि)
(8) वास्तुकला (खजुराहो तथा कोणार्क)
(9) ललित कलाएँ (संगीत व चित्रकला)
(10) सन्देश प्रेषण हेतु पक्षियों का प्रयोग

12.6 आधुनिक जनसंचार माध्यम

संचार अनेक माध्यमों द्वारा संभव है । जिन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **श्रव्य** (Audio) अर्थात सुनना :– इस माध्यम के उदाहरण है – सम्मेलन समितियां, साक्षात्कार टेलीफोन रेडियो प्रसार, जनसभाएं आदि ।
2. **दृश्य** (Visual) अर्थात देखना– इस माध्यम के अन्तर्गत लिखित संचार यथा–परिपत्र पुस्तिकायें प्रतिवेदन विवरणिका, ग्राफ स्लाइड्स आदि सम्मिलित है।
3. **दृश्य–श्रव्य** (Audio&Visual) – अर्थात देखना एवं सुनना इस माध्यम के उदाहरण है । बोलते चित्र, दूरदर्शन, व्यक्तिगत प्रदर्शन आदि है।

उपर्युक्त तीनों में से प्रत्येक माध्यम के अपने गुण है तथा अपनी–अपनी सीमाये है। यह संचारक पर निर्भर है कि वह इस बात का निर्णय करे कि कब कौन सा संचार माध्यम उपयुक्त होगा ।

12.7 मुद्रण

मुद्रण संचार की एक अद्वितीय विधि है। सर्वप्रथम मुद्रण कला का आविष्कार चीन में 868 ई. में हुआ था। यद्यपि चीन में मुद्रण–कला 0वीं शताब्दी में विकसित हुई परन्तु आधुनिक छापेखाने की नींव 15वीं शताब्दी में जर्मनी के योहाल गुटेनबर्ग ने डाली। मुद्रण

कला के विकास ने समाचार–पत्रों की स्थापना की। भारत में पत्रकारिता की शुरूआत 1780 ई. में ए. हिक्की के 'बंगाल गजेट' से होती है। यह एक राजनीतिक एवं व्यापारिक अखबार था। आधुनिक जनसंचार के माध्यमों में मुद्रित माध्यम सबसे पुराना है। इनमें समसामयिक तथा दैनिक समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, परिपत्र, सूचना–पत्र, विज्ञप्ति इत्यादि सम्मिलित है। आधुनिक जीवन में मुद्रित माध्यम अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सभी प्रकार के समाचार पत्रों के अतिरिक्त, विविध विषयक लेख, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, कहानियाँ, कविताएं, संस्मरण, व्यंग्य, साक्षात्कार, ज्योतिष विचार, बाजार–भाव, खेल समाचार, धर्म चर्चा इत्यादि सम्बन्धित मुद्रित समाग्रियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय जीवन का समाज को प्रभावित करती हैं।

12.8 श्रव्य

संचार के श्रव्य माध्यमों में रेडियो, टेलीफोन, मोबाइल फोन, पेजिंग, टेलिप्रिन्टर, ट्रांसमीटर आदि का प्रयोग किया जाता है। रेडियो विद्युत तरंगों के माध्यम से कार्य करता है। रेडियो के प्रसारण के लिये 150 हजार हर्ट्ज से 30 हजार मैगा हर्ट्ज की तरंगों की आवश्यकता होती है। उन तरंगों को तीन भागों में बांटा जाता है। मीडियम वेव, शार्ट वेव तथा अल्ट्राशार्ट वेव। अल्ट्राशार्ट वेव की आवृत्ति अधिक तथा मीडियम वेव की न्यूनतम होती है। इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों में रेडियो अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम है। जिसके द्वारा सूचना, शिक्षा व मनोरंजन सभी एक साथ किया जाता है।

12.9 दृश्य

दृश्य संचार में फैक्स तथा कम्प्यूटर को सम्मिलित किया जाता है।

12.10 दृश्य–श्रव्य

दृश्य श्रव्य संचार माध्यमों में टेलीविजन (दूरदर्शन), फिल्म, वृत्तचित्र इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। जनसंचार माध्यमों में टेलीविजन अत्यन्त महत्वपूर्ण, शक्तिशाली और लोकप्रिय है। चलती फिरती तस्वीरों, चित्रमय समाचारों और चलचित्रों को घर बैठे ही देखने का अपना आनन्द है। टेलीविजन कार्यक्रमों का नियमित प्रसारण बी.बी.सी. द्वारा ब्रिटेन में सन् 1936 में हुआ। भारत में 15 सितम्बर, 1959 को दिल्ली में टेलीविजन प्रसारण की शुरूआत यूनेस्को की सहायता से हुई।

फिल्में जनसंचार का अत्यन्त सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम है। ये ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर मुख्य रूप से आधारित होती हैं किन्तु इनका मुख्य उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में, समाज में व्याप्त कुरीतियों और अन्धविश्वासों को दूर करने में, नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में फिल्मों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किन्तु इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि आजकल के जीवन में बढ़े अपराध–स्तर के लिये काफी हद तक फिल्में ही जिम्मेदार हैं।

12.11 माध्यमों के लिए प्रभावी लेखन

जन समुदाय तक कोई भी संदेश अनेक माध्यमों के द्वारा पहुँचाया जाता है। वर्तमान समय में शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो किसी न किसी माध्यम से जुड़ा न हो। जनसंचार माध्यमों के लेखन सृजनात्मक लेखन से कुछ अलग नहीं होता बल्कि इस अन्तर के साथ

कि माध्यम विशेष मांग को ध्यान में रखते हुए ही लिखा जाये तथा किस श्रोता अथवा दर्शक वर्ग के लिए लिख रहे हैं, उसके प्रति सचेत रहें।

12.12 मुद्रण माध्यम

मुद्रित शब्द का मन पर स्थायी प्रभाव रहता है। समाचार पत्र जन–जन की आवाज बनता है साथ ही साहित्य सृजन का प्रेरक भी माना जाता है। मुद्रित माध्यमों का प्रयोग भारत में सर्वप्रथम 1550 में पुर्तगालियों द्वारा गोवा में धार्मिक सामग्री के प्रचार–प्रसार प्रारम्भ होता है। भारत में प्रेस की स्थापना सन 1956 में हुई थी। आज तो इलेक्ट्रानिक प्रिटिंग का प्रयोग होने लगा है। मुद्रित लेखन के लिये आवश्यक है कि सरल एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया जाये तथा ऐसा लेख हो जो लोगों को आकर्षित करे।

12.13 श्रवय संचार माध्यम

आधुनिक संचार माध्यमों में श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियों का बहुत महत्व है। रेडिया का माध्यम ध्वनि तरंगों से जुड़ा होता है, जिसमें समय और दूरी की कोई सीमा नहीं होती भारत में सन 1927 में मुम्बई में रेडियो कार्यक्रम का प्रसारण प्रारम्भ हुआ था। सस्ता साधन होने के साथ रेडियो की एक विशेषता यह है कि निरक्षर व्यक्ति भी इसके द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को सुन व समझ सकता है।

रेडियो का श्रोता प्रत्येक वर्ग, जाति, स्थान का व्यक्ति शिक्षित–निरक्षर, कोई भी हो सकता है। विभिन्न श्रोताओं को ध्यान में रखकर ही इस विधा का लेखन करना चाहिये। रेडियो के लिये लेखन करते समय श्रोताओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है तथा ऐसा कार्यक्रम बनाए जाने की आवश्यकता है जो श्रोताओं के लिए बोरिंग, भारीभरकम न हो, अपितु मनोरंजनात्मक भी हो। रेडिया के लिए लिखते हुए वर्णन एवं विवरण दोनो का होना आवश्यक है।

रेडियो प्रसारण को दुबारा नहीं सुना जा सकता अतः जो भी लिखा जाये, उसका मन्तव्य पूरी तरह से स्पष्ट होना चाहिये। रेडियो के लिए लेखन करते समय निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिये :–

- वाक्य साधारण हो, लम्बे व घुमावदार या Complex न हों।
- कृतवाच्य में लिखा जाए ताकि बात सीधे श्रोता से सम्पर्क करे।
- युग्म व तत्सम शब्दावली से बचना चाहिए। ऐसे शब्द उच्चारण में भी कठिनाई ला सकते हैं। चुटीली व व्यंजनात्मक शैली का प्रयोग करें।
- संस्कृतनिष्ठ शब्दों की अपेक्षा स्थानीय बोलचाल के शब्दों को प्रयोग में लाएं।
- प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग श्रोता का हृदय स्पर्श करता है।
- सम्बोधन शब्दों की अपेक्षा लेखन को आत्मीय बनाता है अतः ऐसे ही सम्बोधन शब्दों का प्रयोग करें।

12.14 दृश्य–श्रव्य माध्यम के लिए लेखन

टेलीविजन अर्थात 'टेली' तथा 'विजन' जिसका अर्थ है – 'टेली' यानि 'दूर' 'विजन' अर्थात 'देखना दूर से जिसका दर्शन किया जा सके' वही 'दूरदर्शन या टेलीविजन कहलाता है। दर्शन या देखने की प्रक्रिया आँखों द्वारा सम्भव है। मूक सिनेमा का युग अब रहा नहीं। आज यह दृश्य–श्रव्य माध्यम हैं रेडियो केवल श्रव्य माध्यम है। दृश्यात्मक होने के कारण यह माध्यम अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि देखते हुए हमारा ध्यान इधर–उधर भटकता

नहीं। दर्शक पर्दे पर चलते–फिरते सजीव पात्रों से सीधा सम्पर्क करता है। यहां तक कि पर्दे पर दिखता समाचार वाचक भी सीधा आपके कमरे में बैठा दिखता है, मानो आपसे रू–ब–रू हो।

दूरदर्शन का माध्यम अत्यन्त लोकप्रिय है। इसकी लोकसम्मत विधाएं हैं–धारावाहिक, नाटक, फैंटेसी कथाएं, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन–विचार चर्चा, साहित्यिक कार्यक्रम, समाचार, खेल समाचार, कृषि दर्शन, वृत्तचित्र आदि। दृश्य–श्रव्य इस माध्यम के लिए लेखन अत्यन्त चैलेंजिंग है क्योंकि दृश्यात्मकता जो नहीं कह पाती उसे ही कम पंक्तियों में अभिव्यक्त करना होता है। लेखक को दृश्य के अनुसार पटकथा लिखने के अतिरिक्त सभी दिशा–निर्देश, मंच निर्देश व अन्य सूचनाएं भी देनी होंगी। दूरदर्शन के लिए लेखन करते हुए निम्नलिखित तथ्यों की जानकारी आवश्यक है :–

1. कार्यक्रम की समय–सीमा क्या है?
2. वह रंगीन है या श्वेत–श्याम है।
3. किस कार्यक्रम के लिए लिखना है–मनोरंजक, सूचनात्मक, साहित्यिक, ज्ञान–विज्ञान आदि।
4. दर्शक किस वर्ग का है अर्थात कार्यक्रम कहां दिखाया जाना है–विदेशों के लिए, ग्रामीण जन के लिए, किसानों के लिए, युवाओं व बच्चों के लिए अथवा महिलाओं के लिए आदि।
5. दूरदर्शन के लेखक को उसके उपकरणों की जानकारी भी होनी चाहिए।
6. पात्रों के क्रियाकलापों तथा भावों की अभिव्यक्ति की ओर भी ध्यान देना चाहिए।
7. दूरदर्शन के लिए लेखन का मुख्य गुण है– बिम्बधर्मिता अर्थात् बिम्बों और दृश्यों में हर स्थिति को ढालना।
8. टीमवर्क होने के कारण लेखक को अभिनेता, कैमरामैंन, निर्माता, निर्देशक, रूपसज्जाकार तथा पृष्ठभूमि सभी का ध्यान रखना होता है अतः इनका थोड़ा बहुत ज्ञान होना आवश्यक है।
9. दूरदर्शन के लिए लेखन करते हुए भाषा का तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस माध्यम में शब्दों के अतिरिक्त चेहरे ही नहीं बोलते, मौन भी, संगीत भी और पृष्ठभूमि भी बोलती है।

12.15 प्रेस

प्रेस एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा शासकीय, अर्द्धशासकीय स्वादत्त, सार्वजनिक तथा अन्य संस्थाओं से संबधित सूचनाए प्रेषित की जाती है । ये जानकारिया प्रेस रिलिज, फीचर, लेख, संपादक के नाम पत्र तथा विज्ञापन आदि के रूप में होती है । प्रेस एक ऐसा यंत्र है, जिसके द्वारा किसी चीज को दबाया या कसा जाता है । परन्तु अंग्रेजी में प्रेस शब्द से तात्पर्य समाचार पत्र से लिया जाता है । लोकतंत्र में समाचार पत्रों का महत्वपूर्ण स्थान होता है । समाचार पत्रों के द्वारा लोगों को देश–विदेश की गतिविधियों से परिचित कराया जाता है । प्रेस को चौथा स्तम्भ माना जाता है, जो कि जनमत को प्रकट करने का सर्वोत्कृष्ट श्रोत है । प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में जहां बहुमत दल सभी अधिकारों को अपने पास रखता है, वहाँ पर प्रेस की स्वतंत्रता आवश्यक हो जाती है ।

संचार के लिए प्रेषित यूनेस्को प्रतिवेदन में कहा गया है कि समाचार पत्र का महत्व सत्ता के समकक्ष है, समाचार पत्रोंने जनमत को हमेशा प्रभावित किया है । समाचार पत्रों

के संवाददाता समाचार की तलाश में विभिन्न संस्थाओं में आते है । समाचार प्राप्त करने का सबसे अच्छा श्रोत किसी भी संस्था का जनसंपर्क अधिकारी होता है। संपर्क अधिकारी के साथ मधुर एवम सौहार्द संबन्ध के द्वारा संवाददाता को सही सूचना प्राप्त होती है । यदि दोनों के बीच संबध सौहार्दपूर्ण नहीं है, तो प्रतिकूल सूचना मिलने की संभावना बनी रहती है । प्रेस की स्वतन्त्रता एक विकसित समाज में स्वभाविक आवश्यक समझी जाती है । यही कारण है, कि किसी भी देश भी स्वतन्त्रता और उस देश की प्रगतिशीलता को नापने के लिए समाचार पत्रों को एक अचूक एवं अच्छा मानदण्ड माना जाता है ।

12.16 विशेष समारोह का खाका

एक विशेष समारोह इवेंट का आयोजन एक निश्चित समय पर किसी विशेष अवसर अथवा महत्वपूर्ण अवसर पर किया जाता है। विशेष समारोह का आयोजन निश्चित किये गये उद्देश्य क्रमशः नौकरी हेतु, पुस्तक विमोचन हेतु, पुरस्कार विवरण हेतु इत्यादि, की पूर्ति हेतु किया जाता है चूंकि विशेष समारोह अन्य कार्यक्रमों से अलग होता है अतः इसकी उपयोगिता ज्यादा बढ़ जाती है। निर्धारित तिथि पर आयोजित होने वाले समारोह के लिये आवश्यक है कि आयोजन को निर्धारित समय से पूर्व समारोह स्थल पर पहुंच जाना चाहिए । समय से पूर्व समारोह में यदि वक्ता पहुंच जाते है तो उन्हें कार्य–विवरण के विषय में संक्षिप्त रूप से बता देना चाहिए तथा पूछने योग्य सम्भावित प्रश्न को पहले से लिख लेना चाहिए। निश्चित समय पर समारोह के प्रारम्भ होने पर कार्य विविरण पर संक्षिप्त रूप से विचार'–विमर्श करना चाहिये ह। यह भी आवश्यक है कि आयोजन समारोह में शामिल होने वाले सभी प्रतिभागियों का परिचय करा दें। प्रश्नोत्तर के पश्चात अधिकारिक रूप से प्रेस सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा की जानी चाहिए। प्रेस सम्मेलन के पश्चात् प्रसे विज्ञप्ति उन लोगों को जारी करनी चाहिये जिन्होंने प्रेस सम्मेलन न में भाग नहीं लिया है। एक सफल विशेष समारोह के लिए आवश्यक है कि निम्नलिखित दिशा–निर्देशों का पालन किया जाये–

- सफलता के लिए रणनीतियों को विकसित करना,
- विशेष समारोह के उद्देश्य को स्पष्ट करना,
- समय का विशेष ध्यान रखना,
- सही एवं उचित तरीके से समारोह का प्रचार–प्रसार एवं मूल्यांकन करना,
- चेक लिस्ट का निर्माण करना,
- बजट का निर्धारण करना,
- समानान्तर कई कार्य किये जाते है जिसके लिये आवश्यक यथा लोगों के बीच समन्वय, परिवहन तथा अन्य प्रकार की सुविधायें पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए,
- प्रचार–प्रसार की योजना का निर्माण करना, तथा
- समारोह का मूल्यांकन करना

12.17 वृत्तचित्र

दूरदर्शन की विभिन्न विधाओं में वृत्तचित्र एक महत्वपूर्ण विधा है । वृत्तचित्र अंग्रेजी शब्द डाक्यूमेन्ट्री का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका अर्थ है शिलालेख, विशिष्ट घटना या कार्य की जानकारी के लिये दिखया जाने वाला सिनेमा चित्र। डाक्यूमेन्ट्री तथा वृत्तचित्र में यदि समानता देखी जाये तो अलग प्रतीत होते है लेकिन गम्भीरता से विश्लेषण करने के

उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि दोनों में एक तत्व समान है वह है प्रमाण और सत्यता। अतः यह कहा जा सकता है कि वृत्तचित्र वह विधा है जो कि किसी सत्य घटना, तथ्य ,सूचना, व्यक्तित्व और परिस्थिति पर आधारित होती है। तथा जिसका उद्देश्य मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा और सूचना देने अधिक होता है। जब यह कार्य दृश्यों द्वारा किया जाय तो यह प्रक्रिया फिल्म अथवा टेलीविजन डाक्यूमेन्ट्री कहलाती है। जब यह कार्य ध्वनि माध्यम द्वारा किया जाये तो रेडियो डाक्यूमेन्ट्री कहलाती है।

डाक्यूमेन्ट्री में सत्यता का पहलू अनिवार्य होता है अतः आवश्यक है कि सम्बन्धित विषय, अवधि, तथ्यों का संकलन सावधानी पूर्वक किया जाये। तथ्य एकत्रित करने के उपरान्त उन्हें एक आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए है।

प्रचलन एवं तकनीकी के आधार पर वृत्तचित्र के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते है। वृत्तचित्र के कुछ प्रकार निम्मलिखित है :–

1. सूचनात्मक वृत्तचित्र
2. कहानी वृत्तचित्र
3. न्यूज वृत्तचित्र
4. यात्रा वृन्तान्त वृत्तचित्र
5. सामाजिक वृत्तचित्र
6. शोधपरक वृत्तचित्र
7. ऐतिहासिक वृत्तचित्र

12.18 प्रेस सम्मेलन

प्रेस सम्मेलन या प्रेस कान्फ्रेंस जनसम्पर्क का सर्वोत्तम माध्यम है । इसके द्वारा समाचार पत्र के प्रतिनिधियों से सीधे वार्तालाप और सम्प्रेषण का अवसर उपलब्ध होता है । प्रत्युत्तर में जनता के समक्ष संस्था या संस्थान का सही रूप उनक माध्यम (समाचार पत्र, मुद्रित माध्यम) में प्रतिबिम्ब होता है । प्रेस वार्ता तभी आयोजित की जाती है जब शासकीय कार्यालय या संस्थान में कोई विशेष प्रयोजन हो या कोई विशेष कारण हो । लेकिन जब तक कोई विशेष कार्य न हो तब प्रेस वार्ता का आयोजन नहीं किया जाना चाहिए । शासन या संस्थान द्वारा कोई नई नीति, जनता की भलाई के लिए तथा कोई घोषणा आदि कार्यों की घोषणा की जाती हो तो उसके दोनों पक्षों को लेकर प्रेसवार्ता का आयोजन किया जा सकता है । ऐसे समय जनसम्पर्ककर्ता को अपने संस्थान की पूरी जानकारियाँ आँकड़े, सूचनाएँ आदि उसके मस्तिष्क में या उसके पास होनी चाहिए । तभी वह समय पर सही प्रत्युत्तर दे पाएगा । छोटी–छोटी बातों पर या मामूली बातों पर प्रेसवार्ता का आयोजन उपयुक्त नहीं । इसका आयोजन तभी किया जाए जब कोई विशेष समाचार या सूचना दी जाती है । इसके आयोजन की आवश्यकता की जानकारी भी संपादकों, पत्रकारों या संवाददाताओं बता देना चाहिए और यह भी देना उपयुक्त होगा कि जनता के लिए यह जानकारी क्यों आवश्यक है?

सार्वजनिक या निजी संस्थाओं द्वारा आयोजित की गई प्रेसवार्ता में उन्ही पत्रकारों को आमंत्रित करना चाहिए जो उनकी संस्था विशेष में रूचि रखते हैं । इस कार्य के लिए इस प्रकार के संवाददाताओं की स्तरीय सूची तैयार कर रखनी चाहिए । लेकिन इस कार्य में पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए कि संवाददाता या पत्रकार का नाम ठीक और सही लिखा गया हो, अन्यथा समाचार पत्रों के प्रमुख संपादक या प्रमुख रिर्पोटर के नाम से आमंत्रण

भेज देना चाहिए जो किसी जिम्मेदार व्यक्ति को प्रेसवार्ता के लिए नियुक्त कर सकें । ऐसे आयोजन में यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि कार्यालय के कम–से–कम व्यक्ति रहें और जनसम्पर्ककर्ता स्वयं कार्यालय या संस्थान के प्रमुख व्यक्ति के साथ उपस्थित हों ।

प्रेसवार्ता के लिए निमंत्रण सूचना पूर्व से ही भेज देना चाहिए ताकि पत्रकार पूर्व से ही अपना कार्यक्रम बनाते समय संस्थान की वार्ता को भी अपने कार्य में सम्मिलित कर लें । निमंत्रण में समय, तिथि और वार्ता के स्थान का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए । साथ ही उसमें प्रेसवार्ता देने वाले व्यक्ति का नाम, और स्थिति भी होना चाहिए है । प्रेसवार्ता का समय प्रायः 11 बजे के आसपास या दोपहर तीन बजे के पूर्व हो तो उपयुक्त होता है क्योंकि इससे डाक संस्करण के समाचार पत्रों में समाचार जा सकते हैं । सायंकालीन या रात्रि समय में भी प्रेसवार्ता को समचार पत्रों में उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिल पाता है । ऐसी स्थिति में पत्रकारों तथा संवाददाताओं से यह आग्रह करना चाहिए कि वे अगले दिन वार्ता के समाचारों को प्रकाशित करें । ज्यादातर आगन्तुक इसके लिए सहमति दे देते हैं । प्रेसवार्ता का समाचार, समाचार पत्रों में आए लेकिन उसका प्रस्तुतिकरण उपयुक्त हो तो और भी अच्छा होता है । अतः ऐसी व्यवस्था कर लेना चाहिए कि छायाचित्र भी पत्रकारों को तुरन्त उपलब्ध कराया जा सके ।

12.19 प्रेस विज्ञप्ति

प्रेस विज्ञप्ति तैयार करना जनसम्पर्क शाखा का प्रमुख कार्य होता है, तथा संस्थान या संगठन से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्र करना, उन्हें तैयार करना और उनमें यदि कोई कमी है तो उस जानकारी को जोड़कर सम्पूर्ण प्रकाशन योग्य सामग्री बनाना । इसके बाद में ये जानकारियाँ प्रेस प्रतिनिधियों को या रिपोटर्स को अथवा प्रेस को प्रकाशन के लिए भेजी जाती हैं । जनसम्पर्क अधिकारी का यह कार्य होता है कि संगठन या संस्थान की गतिविधियों की नियमित और सिलसिलेवार प्रकाशन सामग्री प्रेस विज्ञप्ति आदि प्रेस को प्रकाशन के लिए उपलब्ध कराता रहे । वर्तमान समय में मीडिया एक जटिल रूप लेता जा रहा है । जो संस्था, संगठन या प्रोडक्ट मीडिया में है उसी का अस्तित्व हैं लोगों को उसी की जानकारी रहती हैं । लम्बे अन्तराल के बाद मीडिया या समाचार पत्र में आना अर्थात अपनी स्वयं की पहचान खो देना, और उस पहचान को फिर से स्थापित करना एक कठिन ही नहीं दुष्कर कार्य भी है । अतः जनसम्पर्क अधिकारी को यह बात ध्यान में रखना चाहिए ।

प्रेस नोट तैयार करते समय कुछ बातें ध्यान में रखना आवश्यक है । प्रेस विज्ञप्ति की भाषा सरल, बोधगम्य हो जिसे साधारण जनता आसानी से समझ सके। वाक्य छोटे–छोटे और सारगर्भित हों। यदि इसमें तकनीकी शब्द है तो उन्हें भी सरल रूप दें। विज्ञिप्त सारगर्भित हो उसे अनावश्यक विस्तार न दें। छोटी विज्ञप्तियों को आकाशवाणी और समाचार पत्रों में आसानी से स्थान मिल जाता है । इसका स्वर सूचनात्मक होना चाहिए ।

दूसरी महत्वपूर्ण बात सामयिकता की है । जो भी प्रेस विज्ञप्ति जारी की जाए वह समयानुकूल हो, पुरानी जानकारियों का समावेश इसमें ने हो। उसमें सूचना है जिसे निश्चित समय के पश्चात जारी होना है तो निर्देश में स्पष्ट रूप से ‘‘इम्बारगो’’ कर देना चाहिए।

प्रेस नोट आवश्यक और तुरन्त विषयों से सम्बन्धित है तो उस पर तुरन्त (इमीडिएट) अंकित कर देना चाहिए । इससे प्रेस में प्रकाशन के समय इस प्रकार के प्रेस नोट को वरीयता प्रदान की जाती है । यदि प्रेस नोट के छायाचित्र है तो उसके पीछे टाइप कराकर केपसन्श चिपकाकर प्रेरित कर देना चाहिए ।

12..20 अभ्यास प्रश्न

1. उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज संचार से आप क्या समझते हैं?
2. जन संचार के माध्यमों का उल्लेख कीजिए।
3. मुद्रण माध्यम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. प्रेस पर प्रकाश डालिए।
5. प्रेस सम्मेलन को समझाइये।
6. प्रेस विज्ञप्ति को स्पष्ट कीजिए।

12..21 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज संचार को समझाया गया है, इसी इकाई में संचार के आधुनिक एवं परम्परागत माध्यमों का उल्लेख करते हुए उसके विभिन्न साधनों को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में प्रेस, प्रेस विज्ञप्ति, प्रेस सम्मेलन इत्यादि को भी इंगित किया गया है।

12.22 पारिभाषिक शब्दावली

उर्ध्वाधर संचार Vertical Communication क्षैतिज संचार Horizintal Communication
माध्यम परिदृश्य Media Scene परम्परागत माध्यम Tradditional Medium
मुद्रण Print श्रव्य Audio
दृश्य Visual दृश्य–श्रव्य Audio &Visual
प्रभावी लेखन Effective Writting मुद्रण माध्यम Printing Medium
प्रेस Press विशेष समारोह का खाका Preparation of Event
वृत्तचित्र Documentary प्रेस सम्मेलन Press Conference
प्रेस विज्ञप्ति Press Note ऊपर की ओर संचार Upward Communication
नीचे की ओर संचार Downward Communication

संदर्भ ग्रन्थ सूची

9. लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
10. प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
11. मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
12. मीडिया लेखन, आर.सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

bdkbZ& 13

संचार के अवरोधक या बाधाएं

Barriers of Communication and Crises Management

bdkbZ dh :ijs[kk

13.0 उद्देश्य
13.1 परिचय
13.2 संगठनात्मक संरचना के अवरोध
13.3 व्यक्तिगत अथवा मनोसामाजिक अवरोध
13.4 भौतिक अवरोध
13.5 तकनीकी अवरोध
13.6 भाषायी अथवा शब्दार्थ अवरोध
13.7 संचार को सुनने व समझने की निपुणता में अवरोध
13.8 संचार के अवरोधों को दूर करने के ढंग
13.9 संचार को प्रभावी बनाने के मापन
13.10 निर्मित संचार को अधिक प्रभावी बनाना
13.11 संकट में मीडिया की भूमिका
13.12 जनसम्पर्क अभियान में संचार प्रबन्धन
13.13 संकट रोकथाम में संचार प्रबन्धन
13.14 कठपुतली
13.15 लोकगीत
13.16 लोक साहित्य
13.17 नुक्कड नाटक
13.18 पोस्टर
13.19 लोगो
13.20 सार संक्षेप
13.21 अभ्यास प्रश्न
13.22 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संचार के अवरोधों को जान सकेंगे।
- संचार के अवरोधों को दूर करने के उपाय को समझ सकेंगे।
- संचार को सुनने एवं समझने की निपुणता को जान सकेंगे।
- संचार को कैसे प्रभावी बनाया जायेगा, को समझ सकेंगे।
- संचार के मापन को लिख सकेंगे।
- संचार प्रबन्धन को समझ सकेंगे।
- मीडिया प्रबन्धन को जान सकेंगे।
- कठपुतली, पोस्टर, लोगो, लोक साहित्य, लोक संगीत आदि को जान सकेंगे।

13.1 परिचय

एक अप्रभावी संचार जीवन के प्रत्येक स्तर पर विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करता है। जबकि दूसरी ओर संचार की कुशल व्यवस्था सभी प्रकार की समस्याओं को समाधान कर सकती है। इसके द्वारा किसी संगठन को बनया अथवा नष्ट किया जा सकता है। इसके द्वारा किसी संगठन के कर्मचारियों को समीप लाया जा सकता है अथवा दूर। संचार किसी भी संगठन की प्रबन्धकीय प्रक्रिया को सरलता से गतिमान करता है। संचार के द्वारा प्रेषित संदेश किसी संगठन में प्रभावी रूप से हस्तांतरित अथवा प्राप्त नहीं होता है तो कई प्रकार की रूकावटे, बाधायें, अवरोधक, समस्यायें उत्पन्न होती है जो प्रभावी संचार व्यवस्था को प्रभावित करती है, जिसे संचार–अवरोध के रूप में जाना जा सकता है। टेरी ने शब्दों को दो भागों में विभाजित करते हुए बताया है जो कि विस्तारमूलक और अभिप्रायमूलक हो सकते है। विस्तारक मूलक शब्द जैसे व्यक्ति, स्थान तथ सामग्री, को सरलता से समझा जा सकता है। इसके विपरीत अभिप्रायमूलक शब्द किसी ऐसी वस्तु को प्रकट नहीं करते है जिसकी ओर संकेत किया जा सके। यथा एक ही भाषा के शब्दों, वाक्यांशों तथा कहावतों के विभिन्न अर्थ होते है। भारत जैसे देश में शासकीय मान्यता प्राप्त अनेक भाषाएं तथा अनेक बोलियां है यह समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। जो स्वयं संचार में एक अवरोध है।

पिफ्नर ने सैद्धान्तिक बाधाओं के विषय को स्पष्ट किया है। पृष्ठभूमि, शिक्षा तथा प्रत्याशा में अन्तर होने से सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों में अन्तर आ जाता है। सम्भवतः प्रभावशाली संचार में ये सबसे बड़ी बाधाएं जिसे दूर कर पाना कठिन कार्य है।

आधार तथा दूरी को कुछ विद्वानों ने संचार की बाधा माना है। संगठन जितना बड़ा होगा, कर्मचारियों की जितनी संख्या अधिक होगी संचार उतना ही कठिन होगा। दूरी की समस्या भी ऐसे अभिकरण के सम्बन्ध में पैदा होती है जिसे संगठन की क्षेत्रीय शाखाएं दूर व्याप्त होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है विभिन्न के अवरोध संचार में बाधा उत्पन्न करते है और लोगों के मध्य असंतोष तथा नसमझी उत्पन्न करते है। इसलिये संचारक के लिये आवश्यक हे कि वह जल्दी से जल्दी संचार की बाधाओं को दूर करने का प्रयास करें। संचार अवरोधों को मुख्यतः निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है : –

- संगठनात्मक संरचना के कारण अवरोध
- व्यक्तिगत अथवा मनोसामाजिक अवरोध
- भौतिक अवरोध
- तकनीक अवरोध
- भाषायी अथवा शब्दार्थ अवरोध
- संचार को सुनने व समझने की निपुणता में अवरोध

13.2 संगठनात्मक संरचना के कारण अवरोध

किसी बड़े संगठन में कई पदसोपान और स्तर होते है जिसके कारण प्रेषित सूचना के प्रारूप में परिवर्तन हो सकता है। यदि किसी सूचना को उच्च स्तर से नीचे को प्रेषित किया जाता है तो यह सम्भावना बनी रहती है कि प्रत्येक स्तर पर स्थिति व्यक्ति अपनी रूचि व पसंद से कोई दूसरा रूप देने का प्रयास करे। वास्तव में, उच्च तथा निम्न स्तर के

मध्य सूचना का स्वरूप बदल जाता है तथा उसे नया रंग देने की कोशिश की जाती है। उच्च स्तर बैठा अधिकारी यह जानने का प्रयास नहीं करता है कि प्रचलनात्मक स्तर पर वास्तव में कौन सी समस्याये है, लोग क्या महसूस करते है, उनके विचार क्या है उनका दृष्टिकोण कैसा है। प्रभावी संचार के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर सूचना को उचित रूप में प्रेषित किया जाये।

13.3 व्यक्तिगत अथवा मनोसामाजिक अवरोध

सामान्यतः यह देखा जाता है कि व्यक्तिगत अथवा मनो–सामाजिक कारणों कारण संचार को प्रभावित करते है। सामाजिक मूल्य, हीन भावना, पूर्वाग्रह, संवेग, मनोवृत्ति इत्यादि संचार की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। एक व्यक्ति के प्रेरक संवेग, भावना मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होते है। सन्देश को कूट संकेत देना अथवा उसका अर्थ निरूपण भी भावनाओं, विचारों से प्रेरित होते हैं इसके अतिरिक्त आत्मविश्वास की कमी, भय तनाव, इत्यादि स्वतंन्त्र विचारों में बाधा उत्पन्न करते है।

व्यक्ति की स्थिति, अहम तथा प्रस्थिति भी संचार को प्रभावित करती है। यह पाया जाता है कि संचार की आवृत्ति निम्न स्तर की अपेक्षा उच्च स्तर पर कम होती है। जब कर्मचारी अपने वरिष्ठों के पास जाते हैं तो उनकी प्रस्थिति, अहम् तथा प्राधिकार संचार में बाधा उत्पन्न करते है।

13.4 भौतिक अवरोध

कभी–कभी यह भी देखा गया है कि पर्यावरणीय कारक संचार को प्रभावित करते है तथा भेजे एवं प्राप्त किये गये सन्देश की गुणवत्ता का कम करते है। दूरी भी संचार में बाधा उत्पन्न करती है। शोरगुल, खराब मौसम, इत्यादि भी संचार का प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

13.5 तकनीकी अवरोध

यह माना जाता है कि संचार में आने वाली सभी प्रकार की समस्यायें तकनीकी दोष के कारण उत्पन्न होती हे संचार में प्रयोग किये जाने वाले उपकरण यथा–टेलीफोन, इण्टरकॉम, पी. बी. एक्स. तथा अन्य संचार के माध्यमों में तकनीकी दोष उत्पन्न होने के कारण संचार की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

13.6 भाषायी अथवा शब्दार्थ अवरोध

शब्दार्थ, अर्थ का विज्ञान है। उस शब्द कोई अर्थ नहीं है जिसकी कोई उपयोगिता न हो। सूचक के विभिन्न अर्थ हो सकते है। सूचक को भाषा, चित्र अथवा क्रिया में वर्गीकृत किया जा सकता है।

भाषा या शब्द, संचार के मुख्य उपकरण है। भाषा या शब्द को न समझ पाना संचार में अवरोध उत्पन्न होता है। क्योंकि एक ही शब्द के कई अर्थ निकाले जा सकते है।

13.7 संचार को सुनने व समझने की निपुणता में अवरोध

प्रभावी संचार तथा गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि उसे उचित ढंग स प्रेषित किया जाये। निर्देशित किये गये सन्देश को यदि लोग सावधानी पूर्वक सुनते व समझते नहीं है तो संचार बाधित होता है। प्रभावी संचार के लिये आवश्यक है कि सन्देश उपयुक्त एवं पर्याप्त हो जिससे संचार के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

13.8 संचार के अवरोधों को दूर करने के ढंग

संचार की प्रक्रिया में संचारक द्वारा विभिन्न अवरोधों का सामना करना पड़ता है, यदि प्रेषक के द्वारा भेजे गए संदेश को प्राप्तकर्ता अर्थनिरूपित नहीं कर पाता है, तो संचार टूट जाता है, इसके लिए आवश्यक है, कि संचार को पूर्ण करने के लिए उसके अवरोधों को दूर किया जाए तथा प्रभावशाली संचार व्यवस्था की स्थापना की जाए संचार व्यवस्था में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए, निम्नलिखित ढंगों का प्रयोग किया जा सकता है, जिसे संचार को प्रभावी बनाया जा सकता है ।

1. **समझने के ढंगों में व्याप्त अन्तर को दूर करना**–संगठन को यह सुनिश्चत करना चाहिए की संचार व्यवस्था को तभी बेहतर बनाया जा सकता है, जब सही कार्य के लिए सही व्यक्ति का चयन है । साक्षात्कारकर्ता का यह उत्तरदायित्व है, कि वह यह सुनिश्चत करे कि उत्तरदाता को भाषा को लिखिने एवं समझने की योग्यता है। इसके लिए आवश्यक हे, कि एक ऐसी नीति का चयन किया जाए, जिसके द्वारा उचित प्रशिक्षण एवम आगमन कार्यक्रम के माध्यम से कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाए।
2. **सरल भाषा का प्रयोग** – संचार की बाधाओं को दूर करने के लिए सरल भाषा एक अनिवार्य शर्त है । संचार प्रक्रिया के दौरान सरल एवम स्पष्ट शब्दों एवम भ्रम उत्पन्न करने वाले शब्दों का प्रयोग नही किया जाना चाहिए।
3. **तत्परता से सुनना**– प्रभावी संचार के लिए आवश्यक है कि प्रेषित किए गए संदेश को सावधानी पूर्वक तथा एकाग्रचित होकर सुना जाए। सुनना एवम सुनवाई के बीच अन्तर होता है, सक्रियता के साथ सुनने से तात्पर्य है, कि प्राप्तकर्ता द्वारा जो भी संदेश सुना गया है, उसे उचित तरीके से समझा जाए। यदि किसी से द्वारा को प्रश्न पूछा जाता है, तथा उसका तात्पर्य प्राप्तकर्ता के द्वारा गलत समझा जाता है, तो प्रश्न का प्रतिउत्तर अर्थ विहीन हो सकता है। अतः सक्रियता के साथ सुनना संचार की बाधा को समाप्त कर सकता है ।
4. **स्पष्ट भावना** – संचार के दौरान के प्रेषक के लिए आवश्यक है कि वह शारीरिक भाषा का प्रभावी उपयोग करे। यदि संचार प्रक्रिया के दौरान प्राप्तिकर्ता के द्वारा प्रेषक की भावनाओं को नही समझा जाता है, तो संचार तंत्र टूट सकती है। यथा प्रेषक का मूड अच्छा नहीं है तो ऐसी स्थिति में प्राप्तकर्ता यह अर्थ लगा सकता है, कि प्रेषक द्वारा भेजा गया संदेश ठीक नहीं है ।
5. **सरल संगठनात्मक ढांचा** –संचार प्रक्रिया के लिए आवश्यक है किसी भी संगठन की संरचना जटिल ना हो, संगठन क अर्न्तगत पदानुक्रम स्तरों की इष्टमत संख्या होनी चाहिए, जिससे कि संगठन को नियंत्रित किया जा सके है । ऐसे संगठन जिसकी संचरना सरल होती है, उनमें संचार प्रभावी होता है ।
6. **अधिभार सूचना से बचना** – संचारक यह अच्छी तरह से जानता है कि अपने काम की प्राथमिकता कैसे दे। उसको चाहिए कि कार्य का अतिरिक्त भार ना ले। संचारक के लिए आवश्यक है कि वह अपने अधिनस्थ के साथ गुणवत्ता युक्त समय व्यतीत करे और उनकी समस्याओं का समाधान प्रतिपुष्टि के द्वारा सक्रिया से करे ।
7. **रचनात्मक प्रतिपुष्टि**– संचारक के लिए आवश्यक है कि वह नकारात्मक प्रतिपुष्टि से बचे, सकरात्मक प्रतिक्रियो संचार को प्रभावी बना सकती है ।
8. **उचित माध्यम का चयन** –प्रेषक को संचार को उचित माध्यमों का चयन करना चाहिए। उचित माध्यम के द्वारा सरल भाषा में संदेश प्रेषित किया जाना चाहिए।

मिंटिग अथवा आमने–सामने मौखिक संचार महत्वपूर्ण होता है। यदि लिखित रूप में प्रेषक के द्वारा संदेश भेजा जाता है तो संचार जटिल होता है । अनुस्मारक संचार के लिए लिखित संचार बेहतर होता है ।

9. **लोचशीलता** –किसी भी संगठन में प्रभावी संचार के लिए आवश्यक है कि प्रेषक यह सुनिश्चित करे कि सही समय पर लक्ष्य को पूरा करेंगे, यदि निश्चित लक्ष्य सही समय पर पूरा नही होते है तो लोचशीलता के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है ।

13.9 संचार को प्रभावी बनाने के मापन

संचार अत्यधिक संवेदनशील पहलू है, यह दो धुरी शस्त्र के समान है। जिसका सही उपयोग न होने पर उपयोग करने वाले को हानि हो सकती है। किसी संगठन में संचार की बााधाओं को दूर करने के लिये संचारक के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह उचित व सही नीति का पालन करें। संगठन में वह विश्वास का वातावरण उत्पन्न करें । एक प्रभावी संचार व्यवस्था के मुख्य ढंग निम्न है –

1. **संचार नेटवर्क को सुदृढ़ करना** :– संचार नेटवर्क को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि संचार की प्रक्रिया को सरल बनाया जाये। संचार माध्यमों निहित स्तरों को कम से कम रखा जाए। प्राधिकार का हस्तांतरण व विकेन्द्रीकरण किया जाये तथा आयोजित होने वाले सम्मेलनों, मीटिंग में कर्मचारियों की पूर्णसहभागिता हो तथा मुद्दों पर बहस हो ।
2. **द्वि–मार्गीय संचार पर बल देना:–** एक अच्छा द्वि–मार्गीय व्यवस्था पर आधारित होने चाहिये अर्थात उच्च से निम्न तथा नीचे से ऊपर की ओर संचार सरलता से होना चाहिए। संचार व्यवस्था में प्रतिपुष्टि व्यवस्था पर घ्यान देना चाहिए जिससे यह ज्ञात हो सकता है कि दिये गये निर्देश का पालन हुआ है अथवा नहीं।
3. **सहभागी दृष्टिकोण को प्रोत्साहन:–** संचार में सहभागी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये जिससे किसे जाने वाले कार्यो को व्यवस्थित किया जा सके। निर्णय की जाने वाली प्रक्रियाओं में अधीनस्थों को शामिल किया जाना चाहिए। एक अच्छा संचार पारस्परिक विश्वास, पूर्ण सहभागिता, सामूहिक सौरदेबाजी, सहयोग एवं दलभावना पर निर्भर करता है।
4. **संचार के उचित माध्यम का चयन:–** एक संचार तभी सफल हो सकता है जब सही माध्यम का चयन किया जाये। सही सन्देश सही समय सही व्यक्ति द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के संचार के लिये आवश्यक है कि सभी निर्देशों अथवा संदेशों को लिपिबद्ध करते हुए उसका स्थायी रिकार्ड हो।
5. **सुनने पर बल देना:–** बहुत से व्यक्ति बहुत अच्छे श्रोता होते है। सफल संचार सुनने वाले के इच्छा व रूचि पर निर्भर करता है। संचार करते समय हमेशा इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये कि जो भी सन्देश प्रेषित किया जा रहा है उसे सुनने वाला आसानी से समझ सके। इसलिये आवश्यक है कि भेजा गया संदेश सही, संक्षिप्त तथा अर्थपूर्ण हो।
6. **अपूर्ण मूल्यांकान से बचना** :– प्राय: यह देखा गया है कि बहुत से लोग प्राप्त संदेश को बगैर सुने व समझे अपना प्रति उत्तर देते है ऐसे तरीको से बचना चाहिए क्योंकि इस प्रकार संचार अपने आप में अपूर्ण है। जोकि संचार में बाधा उत्पन्न

करता है। आवश्यक है कि भेजा गया सन्देश प्राप्तिकर्ता द्वारा धैर्य एवं सावधानी पूर्वक सुना व समझा जायें।

7. **भाव भंगिमा तथा सुर पर महत्व :–**भाव भंगिमा तथा सुर को शारीरिक भाषा' के रूप में अमौखिक संचार के रूप मे जाना जा सकता है। व्यक्ति की अन्तरवैयक्तिक क्रिया के द्वारा उसकी शारीरिक भाषा के माध्यम से किये जाने वाले संचार को समझा जा सकता है। यह एक तकनीकी है जिससे सम्पूर्ण शरीर का अंग हाव–भाव के द्वारा संचार प्रेषित करता है। चेहरे की अभिव्यक्ति, हाथ का हिलना इत्यादि प्रभावी संचार में एक सूचक का कार्य करते है।
8. **संचार को अभिव्यक्त करना न कि प्रभावित करनाः–** एक अच्छे संचार का आवश्यक नियम है कि हमेशा संचार की अभिव्यक्ति की जाये न कि उसे प्रभावित करने का प्रयास किया जाये। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण संचार, प्रेषक द्वारा अभिव्यक्त किये शब्दों, उसके विचारों तथा विषय वस्तु पर निर्भर करता है। यदि अभिव्यक्ति अच्छी है तो उसका प्रभाव अपने आप स्वयं आता है।
9. **संचार में अपनेपन की भावना विकास** :– एक अच्छे संचार के लिये आवश्यक है कि उसमें अपनापन हो। अपनेपन के अभाव में संचार प्रभावित होता है।

13.10 निर्मित संचार को अधिक प्रभावी बनाना

निर्मित संचार को और अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिये आवश्यक है कि निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया जाये –

1. उद्देश्य को जानना
2. विश्वसनीयता को बनाये रखना
3. जनसमूह के विषय में जानना
4. छोटे–छोटे रूप में लोगों को सूचना देना
5. स्पष्टता बनाये रखना
6. सोचना तथा शब्दों को संगठित करना
7. सही तथा उचित समय पर प्रसार करना
8. सही तथा पर्याप्त सूचना देना
9. सामंजस्य बनाये रखना
10. सतर्कता बनाये रखना
11. प्रतिपुष्टि करना

13.11 संकट में मीडिया की भूमिका

आज के युग में, संकट एक ऐसी अवधारणा है जो प्रत्येक संगठन में पाया जाता है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि संकट के अनेक प्रकार है जो संगठन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। संकट की स्थिति में मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। संकट का समाधान प्रभावशाली संचार के द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। जब किसी संगठन में संकट उत्पन्न होता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि मीडिया की भूमिका के द्वारा उसका समाधान किस प्रकार किया जाये। आज के समय, मीडिया संकट को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भमिका निभाता है। मीडिया का यह उत्तरदायित्व है कि जनता में जो अफवाह व्याप्त है उसे कैसे दूर करे तथा लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाये।

संकट को एक ऐसी घटना के रूप में परिभषित किया जा सकता है जहाँ व्यवसाय की छवि खतरे में होती है और की जाने वाली गतिविधियों में जोखिम की सम्भावना होती है। अध्ययन के आधार पर संकट को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः–

- प्रचलनात्मक संकट
- कपटपूर्ण क्रिया द्वारा उत्पन्न संकट
- प्राकृतिक आपदा द्वारा उत्पन्न संकट
- प्रसार समस्या द्वारा उत्पन्न संकट
- वैधानिक संकट

संकट के समय मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह लोगों को सूचित करे कि संकट की स्थिति कैसे उत्पन्न हुई है। संकट की समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि संकट की स्थिति व परिस्थिति को देखते हुए उचित माध्यम द्वारा एक उपयुक्त मीडिया योजना का निर्माण किया जाये। संकट अथवा आकस्मिकता के समय एक प्रबन्धक के पास विविध प्रकार मीडिया उपकरण उपलब्ध होते हैं। इन विविध उपकरणों में से उत्तम उपकरण अथवा माध्यम का चयन करते हुए जनसामान्य को यथास्थिति से अवगत कराया जाये। इसके लिए रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार पत्र महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित कर सकते हैं। संकट की स्थिति में यह भी आवश्यक है कि सम्बन्धित कहानी में जीवन्तता बनाये रखे जिससे कि पत्रकार सही समय पर सही सूचना प्रेषित कर सके। कहानी समाप्त हो जाने के पश्चात् यह आवश्यक है कि मीडिया के साथ अच्छे सम्बन्ध विकसित किये जाये। संकट की स्थिति में प्रबन्धक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह मीडिया की भूमिका के योगदान को कैसे उपयोग करे। इसके लिए जरूरी है कि–

- पूर्व में ही संकट के लिए योजना बनायें,
- संचार के उद्देश्यों को स्पष्ट करें,
- वक्ता का निर्धारण करे तथा उसकी कुशलता का पूर्व में ही परीक्षण कर लें,
- संचार के लिए उत्तम माध्यम का चयन,
- सन्देश का प्रमुख बिन्दु क्या होगा,
- तथ्यों से अवगत रहे तथा उसके प्रभाव का ज्ञान हो,
- मीडिया के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध को विकसित करे, तथा
- व्यवसायिक सहायता के लिए तैयार रहे।

13.12 जनसम्पर्क अभियान में संचार प्रबन्धन

जनसम्पर्क वह आधुनिक मानवीय विज्ञान है, जिसके द्वारा कुछ तकनीकों, और सम्प्रेषण के माध्यम से जन तक पहुँचा जा सकता है। विभिन्न विद्वानों का मानना है कि जनसम्पर्क जनता से सम्बन्ध स्थापित करने की जीवंत कला है। जन से तात्पर्य जनता तथा सम्पर्क से तात्पर्य है आदान–प्रदान। कटलिप ने जनसम्पर्क के तीन अर्थ बतायें हैं–

किसी संगठन के लोग जिसके द्वारा संगठन बना हैं उनसे सम्पर्क तथा उपकरण, जिसके द्वारा अपने पक्ष से सम्पर्क बनाया गया है, सम्पर्क की वह गुणवत्ता या प्रतिष्ठा।

इस प्रकार जन–सम्पर्क अभियान के माध्यम से संगठन अथवा संस्थायें अपने कार्यों की गतिविधियों की जानकारी जनता तक पहुँचाते है तथा इसके द्वारा अपने पास में जनमत तैयार करते हैं। जनसम्पर्क में सत्यता का होना परम आवश्यक है, यह जनसम्पर्क की प्रमुख विशेषता है। जनसम्पर्क एक दर्पण की भाँति होता है जो यह स्पष्ट करता है कि संगठन की छवि जनता में कैसी है।

जनसम्पर्क, जनसंचार का एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा संगठन योजनाबद्ध तथा सतत् प्रयास द्वारा जनता से अपने पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर जमानत की स्थापना हेतु सुव्यवस्थित एवं प्रभावशाली प्रयास करते है। अतः कह सकते हैं कि जनसम्पर्क एक द्विपक्षीय व्यवस्था है।

रौलमैन, ए.आर. ने जनसम्पर्क को द्विपक्षीय संचार माना है जिसमें सहमति का आधार सत्य, ज्ञान एवं पूर्ण सूचनायें होती है जिनसे तनाव कम और आपसी सौहार्द्र अधिक होता हैं।

जनसम्पर्क मूलतः वैज्ञानिक तत्वों पर आधारित व्यवस्था है। जनसम्पर्क अभियान के चार मूल तत्व क्रमशः द्विपक्षीय सम्प्रेषण, सुदृढ़ नीतियाँ, दर्शन की अभिव्यक्ति तथा प्रबंधकीय सामाजिक दर्शन एक साथ मिलकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

जनसम्पर्क का मुख्य तत्व संचार होता है जो जनता तथा संगठन को घनिष्ठ रूप से जोड़े रखता है। संगठन की नीतियों को जनता तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम जनसम्पर्क अभियान ही है, जो कि उचित एवं सही संचार प्रबन्धन पर निर्भर करता है। किसी भी संस्था में उचित संचार प्रबन्धन न होने पर जनसम्पर्क अभियान में रूकावटें उत्पन्न होती हैं। संचार प्रबन्धन एक व्यवस्थित योजना है जिसमें संचार के विभिन्न माध्यमों के द्वारा जनसम्पर्क अभियान से प्रेषित किये सन्देश को जनता तक पहुँचाना, उसका अनुश्रवण एवं पुनरावलोकन किया जाता है। जनसम्पर्क अभियान में संचार प्रबन्धन की विभिन्न विधियों, संचार की नई तकनीकियों, नेटवर्क इत्यादि को सम्मिलित करते हुए जनमत को अपने पक्ष में करने की चेष्टा की जाती है। संचार प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य संचार की रणनीति को विकसित करना, आन्तरिक एवं बाह्य संचार की दिशा–निर्देश की रूपरेखा तैयार करना तथा सूचना प्रवाह का प्रबन्धन करना है जिससे जनसम्पर्क अभियान सफल हो सकता है।

जनसम्पर्क का कार्यक्षेत्र जनता के बीच होता है जिसे दो प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है– बाह्य कार्यक्षेत्र जो कि संगठन के प्रचार–प्रसार, विज्ञापन इत्यादि तथा आन्तरिक कार्यक्षेत्र जो कि संगठन के अंदर समन्वय सम्पर्क इत्यादि से सम्बन्धित है। संचार के अनेक माध्यम है। जनता तक कौन सा माध्यम आसानी से पहुँचने योग्य है इसका सही चयन जनसम्पर्क कर्ता ही करता है। जनसम्पर्क अभियान के लिए आवश्यक है कि

- जनता को किस प्रकार की सूचना प्रदान की जाये तथा सूचना प्रवाह कैसा हो,
- लोग सूचना में क्या चाहते हैं

- सूचना का प्रवाह कब और कैसे किया जायेगा,
- सूचना प्रदान करने का प्रारूप कैसा होगा, तथा
- सूचना प्रेषित करने के लिए कौन उत्तरदायी होगी तथा किसे सूचना प्रदान की जाये।

जनसम्पर्क अभियान वस्तुतः संचार का ही एक प्रारूप है जिसमें तथ्यों, विचारों तथा दृष्टिकोणों को लोगों के साथ विनिमय किया जाता है। जनसम्पर्क अभियान में संचार के विविध माध्यमों का प्रयोग करके विचारों, नीतियों, योजनाओं को जनता तक प्रेषित करके तथा जनता की प्रतिक्रिया द्वारा पारस्परिक समझ उत्पन्न की जाती है।

जनसम्पर्क अभियान को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि संचार प्रबन्धन करके उद्देश्यों की प्राप्ति की जाये। उसके लिए जनसम्पर्ककर्ता को चाहिये कि वह अभियान की सूचना पूर्व में ही प्रदान करें, सूचना पर्याप्त दे तथा प्रेषित की गयी सूचना उपयुक्त हो। जनसम्पर्क कर्ता के लिए यह भी आवश्यक है कि वह सूचना प्राप्तिकर्ता की पहचान करें, संचार की योजना का निर्माण करें, सूचना का सही वितरण करे, सूचना प्राप्तकर्ता की प्रत्याशाओं को समझने का प्रयास करे तथा उसकी प्रतिपुष्टि प्राप्त करे।

वर्तमान समय में संचार प्रबन्धन तथा जनसम्पर्क अभियान एक दूसर के पूरक है। विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाये तो जनसम्पर्क साध्य है जो संचार साधन।

13.13 संकट रोकथाम में संचार प्रबन्धन

संकट रोकथाम या संकट प्रबन्धन एक विधा है जो किसी संगठन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को दूर करने की योजना है। बहुत से संगठन संकट की रोकथाम करने के लिए संकट प्रबन्धन योजना एवं दल को विकसित करते है जो संकट के समय सहायता प्रदान करते है। एक प्रबन्धक को हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिये के संकट किस प्रकार से व्यवसाय को प्रभावित कर सकता है तथा उसका वास्तविक परिणाम क्या होगा। इसके लिए प्रबन्धक को चाहिये कि वह पूर्व में ही संकट की स्थिति का आंकलन कर ले और समय पर उसकी रोकथाम कर सके।

प्रभावशाली संकट की रोकथाम के लिए आवश्यक है कि संचार व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाये। संकट की रोकथाम के लिए संचार प्रबन्धन का तीन स्तरों पर उपयोग किया जा सकता है–

1. संकट पूर्व स्तर पर
2. संकट के स्तर पर
3. संकट पश्चात् स्तर पर

संकट–पूर्व स्तर मुख्य रूप से रोकथाम के स्तर को स्पष्ट करती है जिसमें संचार माध्यमों से संकट की रोकथाम की जा सकती है। संकट उत्पन्न होने की स्थिति में वास्तविक योजना होनी चाहिये तथा संकट पश्चात् स्थिति में यह देखना चाहिये कि संकट की स्थिति पुनः न उत्पन्न हो और उससे सबक लेते हुए पूर्व रोकथाम की रणनीति बना ली जाये।

संकट की स्थिति में संचार माध्यमों यथा रेडियों, टेलीविजन एवं समाचार पत्रों का प्रयोग किया जाना चाहिये। संकट की रोकथाम के लिए पारम्परिक एवं आधुनिक जनसंचार माध्यमों का उपयोग किया जाना चाहिये। आधुनिक जनसंचार माध्यमों की अधिक उपयोगिता है। आज के समय, संकट की पूर्व रोकथाम के लिए इण्टरनेट पर वेबसाइट का निर्माण कर लेना चाहिये और जिसके माध्यम से जनसामान्य को संकट की स्थिति से अवगत करना चाहिये। उसके अतिरिक्त प्रभावित लोगों को सही समय पर सूचना प्रदान कर देनी चाहिए। एक प्रबन्धक संकट की स्थिति का सही आंकलन करते हुए सही तथ्यों को जनसम्पर्क के द्वारा जनसामान्य तक पहुँचायें, जनसंचार के सही माध्यम का चयन करें, सूचना का सही प्रकार एवं वितरण करें, संचार उद्देश्य को निरूपित करने के साथ संचार के लक्ष्य का निर्धारण करे तथा संकट के कारण खराब हुई छवि को सुधारने का प्रयास करें।

13.14 कठपुतली

लोक माध्यम का एक सशक्त माध्यम कठपुतली मनोरंजन एवं शिक्षा का एक लोकप्रिय माध्यम है । इस कला में सृजन, मंचन, संगीत तीनों का ही अनोखा सम्मिश्रण देखने को मिलता है । कठपुतली के मंचन से दर्शक का सहज ही तदात्म्य स्थापित हो जाता है । कथानक पात्रों से दर्शक का अनोखा भावात्मक सम्बन्ध निर्मित हो जाता है । कठपुतलियों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है, लेकिन इनके माध्यम से दिया गया संदेश अधिक प्रभावकारी सिद्ध होता है । इनकी भूमिकाओं का उल्लेख करते हुए जेम्स एस. मूर्ति लिखते हैं– कठपुतलियों को वास्तविक जीवन पात्रों की तुलना में संगठित करना सरल है । इसमें कम से कम लोगों की आवश्यकता पड़ती कठपुतलियों का हस्तकौशल एक आसानी से हासिल होने वाली कला है । यदि आवश्यक हुआ तो भूमिकाओं का पाठ स्थानीय लोगों द्वारा भी किया जा सकता है । कठपुतलियों एवं उनके लिए कथानकों की योजना सभी कलाओं एवं विविध प्रकार के विषयों के लिए की जा सकती है । उनका प्रयोग धार्मिक विषयों के लिए भी किया जा सकता है । कठपुतलियों विरूप चित्रण एवं अतिश्योक्ति पूर्ण प्रस्तुति के लिए विशेष रूप से प्रभावशाली होती है ।

कठपुतलियां अपने अभिनयों से काफी प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषण करती हैं, उन्हें बहुत कम प्रयास से किसी भाषा के अनुरूप ढाला जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार कल्याण कार्यक्रम, अशिक्षा, अस्वास्थ्य की रोकथाम में ये प्रभावशाली सिद्ध हो सकती हैं ।

वर्तमान में कठपुतली विद्या पूर्णतः विज्ञापन के स्वरूप में आ गई है । अब इस माध्यम का प्रयोग नशबंदी परिवार कल्याण, खाद का प्रचार, बैंकों की बचत, प्रौढ़ शिक्षा, अधिक अन्न उपजाओं आदि कार्यक्रमों में किया गया है। सम्बन्धित कम्पनियाँ या सरकारी उपक्रम के द्वारा कठपुतलियों की कहानियों की स्क्रिप्ट तैयार करके दे दी जाती हैं जिसके आधार पर कठपुतलियों के पात्रों की रचना और निर्माण किया जाता है । फिर कठपुतली नाटक इस कहानी की स्क्रिष्ट के आधार पर तैयार किया जाता है । प्रसिद्ध कठपुतली कलाकार श्री दिलीप भाई के शब्दों में कठपुतली चार प्रकार की होती है –

1. धागे वाली कठपुतली
2. छड़ी वाली कठपुतली
3. दस्ताने वाली कठपुतली
4. छाया कठपुतली

कठपुतली की जानकारी के अनुसार पहले ये लोग भारत के गौरवशाली इतिहास की झलक कठपुतलियों के माध्यम से प्रस्तुत किया करते थे यथा महाराणा प्रताप, अमर सिंह राठौर, झाँसी की रानी, कृष्ण–सुदामा मित्रता, पृथ्वीराज चौहान की गाथा आदि ।

13.15 लोकगीत

लोकमाध्यम का एक सशक्त माध्यम है लोकगीत है। लोकगीत अधिकाशतः सामूहिक होते है। जीवन की सरलता के समान ही सहज स्वर सरल धुनों तथा गीत के मुखणो एवम अन्तरों को दुहराये जाने की परम्परा है । जिनके द्वारा लोगों के लिए गाना–बजाना आसान हो गया है। लोकगीत का महत्व हमारे यहाँ पग–पग पर संस्कार के रूप में दिखायी देता है । चाहे जन्म उत्सव हो या विवाहोत्सव हो, का गायन विशिष्ट होता है । भक्ति, उपासना, कर्मकाण्ड के साथ–साथ अन्धविश्वासों की आधारशिला पर मानव शान्ति के लिए किए जाने वाले स्वर का प्रयोग धुन और गीत लोक गीतों के अंग बन गए है ।

अवधी, ब्रज, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, कुमॉअयनी, बुन्देलखण्डी, आसामी डोगरी, पंजाबी आदि भाषाओं में रचे गीतों में ग्राम्य जीवन की झलक देखने को मिलती है । लोकगीतों की रचना व्यक्ति नहीं करता है बल्कि समूह करता है । यदि किसी एक व्यक्ति के द्वारा लोकगीत की रचना की जाती है तो वह समूह के साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है ।

13.16 लोक साहित्य

लोकसाहित्य, लोकमाध्यम का एक महत्वपूर्ण अंग है । लोकसाहित्य परंपरागत रूप में समृद्ध विरासत का दर्शन कराते है । सुदूर ग्रामीण अंचलों में धार्मिक पर्व में, सामाजिक उत्सवों के अवसर पर इसका आभास किया जा सकता है । लोकसाहित्य अपनी सुदढ़ विषय वस्तु के कारण काफी प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हुए है । विभिन्न भाषाएं जातिगत विशेषताओं रीति–रिवाजों और भौगोलिक विस्तार के कारण भिन्न–भिन्न लोक साहित्य प्रचलित है । आदिम और लोक समाज में सामाजिक संस्तरण वैचारिक बन्धन धार्मिक प्रतिबद्धताओं के कारण ये साहित्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित होते हुए आज भी अपनी जीवन्तता बनाए हुए हैं। चूँकि इनका विस्तार परिवार और समुदाय तक है। इस कारण इसकी विशिष्टताएं विभिन्न स्वरूप लिए होती है ।

लोक साहित्य जन की सहज व स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। निश्छल उद्‌गार, उदान्त विचारधारा, आदर्श मूल्य, कल्पना, सांस्कृतिकता उसके आधार कहे जा सकते हैं। हम सभी इस बात से अवगत है कि लोक साहित्य का कथ्य एवं शिल्प जनसामान्य को अधिक प्रभावित करता है। लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं ने युग–युग में वैचारिक संचार का कार्य किया है और आज के कम्प्यूटरीकृत युग में भी यह अधिक लाभकारी हो सकता है। जरूरत इस बात की है कि इन विधाओं को आधुनिक संचार माध्यमों एवं विषयों से जोड़ा जाये। साहित्य, संगीत, कला इत्यादि अभिव्यक्ति के सर्वोत्तम माध्यम है, किन्तु शास्त्रीयता से परिपूर्ण माध्यम एक वर्ग विशेष तक सीमित रह जाते हैं। अगर हमे जनमानस के साथ जुड़ना है तो लोककला तथा कलाकारों को प्रश्रय देकर उनका उपयोग करना चाहिये।

13.17 नुक्कड नाटक

नाट्क शैली की एवं विशेष विधा है, जिसका प्रदर्शन एवम प्रस्तुति सार्वजनिक स्थलों पर किया जाता है। ये सार्वजनिक स्थल, पार्क, बाजार, मनोरंजन के केन्द्र, तथा किसी सड़क पर, कही भी हो सकता है। नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति का मुख्य आधार जन चेतना तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान, सामाजिक कुरितियों एवम अन्धविश्वास को दूर

करने इत्यादि के लिए किया जाता है। नुक्कड़ नाटक के अर्न्तगत आमतौर पर भाग लेने वाले प्रतिभागी प्राकृतिक रूप से मुखर होते है, क्योंकि भीड़ को आकृर्षित करने के लिए यह आवश्यक है । सार्वजनिक स्थलों पर बिना किसी रंगमंच के लोगों को मुख्य धारा में जोड़ने के लिए नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति की जाती है । नुक्कड़ नाटक एक बहुत लोकप्रिय शैली है, जिसके द्वारा कलाकार प्रदर्शन के माध्यम से लोगों के बीच विषय वस्तु को प्रस्तुत करते है, जिसे एकात्रित हुई भीड़ कुछ सीख सके तथा सामाजिक जीवन धार में लोगों को प्रेरित कर सके ।

13.18 पोस्टर

एक पोस्टर सूचना प्रदान करने का एक माध्यम है, जिसके द्वारा संक्षिप्त रूप में संबधित विषय के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । एक पोस्टर आमतौर पर एक घोषणपत्र होता है, जिसे सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शन किया जाता है, जो की आकर्षित एवं चित्रमय होता है ,

सामान्यतः पोस्टर का उपयोग उत्पादो के विज्ञापन के लिए, लोगों को जानकारी प्रदान करने के लिए, आन्दोंलन अथवा प्रदर्शन के विषय में निर्देश देने के लिए तथा विषयगत सूचना देने के लिए किया जाता है । साधारणतः एक पोस्टर में शाब्दिक, ग्राफिक तथा चित्रमय तत्वों को शमिल किया जाता जा सकता है । यथा विशेष घटनाओं को इंगित करने, फिल्मों के प्रचार प्रसार, शैक्षिक गतिविधियों के प्रोत्साहन करने, उत्पादों का विक्रय करने को प्रोत्साहित इत्यादि के लिए किया जा सकता है। एक पोस्टर मुद्रित पेपर का कोई भी टुकडा हो सकता है, जिसका खाका तैयार करने के पश्चात किसी दिवार अथवा उर्ध्व सतह पर लगाया जा सकता है ।

बहुत से लोग पोस्टर को एकत्रित एवम विक्रय करते है । कुछ पोस्टर के प्रकार निम्नलिखित है

- यात्रा पोस्टर
- प्रचार एवं राजनीतिक पोस्टर
- विज्ञापन पोस्टर
- फिल्म पोस्टर
- किताब पोस्टर
- शैक्षिक पोस्टर
- रेलवे पोस्टर

13.19 लोगो

लोगो एक ग्राफिक चिन्ह अथवा प्रतीक चिन्ह होता है । जिसका प्रयोग सामान्यतः वाणिज्यक, उद्योगो, संगठनों और यहां तक की व्यक्तिगत रूप में लोगों के बीच अपनी पहचान को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता है । लोगो विशुद्ध रूप से ग्राफिक अथवा प्रतीक चिन्ह होता है, जो कि अपने संगठन का प्रतिनिधित्व करता है, तथा संगठन से संबधित विचारों को प्रस्तुत करता है ।

यह एक विशिष्ट चित्र होता है, जिसके द्वारा जनसंचार सरलता से होता है, वर्तमान युग में लोगो का प्रयोग सन् 1950 से प्रारम्भ माना जाता है । आज विभिन्न निगमों, उत्पादों, सेवाओं और अन्य सस्थाओं द्वारा किसी ना किसी प्रकार का चिन्ह अथवा प्रतीक

चिन्ह उपयोग में लाया जा रहा है, जिसे लोगो की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। एक लोगो की अवधारणा विशिष्ट लक्षण लिए होती है जिसके द्वारा किसी संगठन अथवा संस्था की विशिष्ट पहचान बनती है ।

13.20 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में संचार के अवरोधों क्रमशः भौतिक अवरोध, भाषायी अवरोध, तकनीकी अवरोध, सामाजिक अवरोध आदि का उल्लेख किया गया है। इसी इकाई में संचार के मापन एवं ढंगों को भी समझाया गया है। संचार को किस प्रकार से प्रभावी बनाया जाय, को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त इसी इकाई में कठपुतली, पोस्टर, लोगो, लोक साहित्य, लोक संगीत आदि पर प्रकाश डाला गया है।

13.21 अभ्यास प्रश्न

1. संगठनात्मक संरचना के अवरोधों को स्पष्ट कीजिए।
2. भौतिक अवरोध पर टिप्पणी कीजिए।
3. मीडिया प्रबन्धन पर प्रकाश डालिए।
4. संचार प्रबन्धन को समझाइये।
5. संचार के मापन एवं ढंगों का उल्लेख कीजिए।
6. कठपुतली पर टिप्पणी लिखिए।
7. लोक साहित्य एवं लोक संगीत को समझाइये।
8. पोस्टर तथा लोगो पर टिप्पणी लिखिए।

13.22 पारिभाषिक शब्दावली

संगठनात्मक संरचना Organizational Structure अवरोध Barrier
भौतिक अवरोध Physical Barrier तकनीकी अवरोध Technical Barrier
निपुणता Skills ढंग Method
मापन Measurement संकट Crisis
जनसम्पर्क Public Relation प्रबन्धन Management
रोकथाम Prevention कठपुतली Puppets लोकगीत Folksong लोक साहित्य Folklore नुक्कड नाटक Street Play पोस्टर Posters
लोगो Logo वाणिज्यक Commercial
उद्योग Industry विज्ञापन Advertisement प्राकृतिक आपदा Natural Disaster

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
- मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
- मीडिया लेखन, आर.सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।